तुलसी-सूक्ति-सुधा

सम्पादक
वियोगी हरि

तुलसी-सूक्ति-सुधा

अर्थात्

गोस्वामी तुलसीदास के बारहों ग्रन्थों की चुनी हुई सूक्तियाँ

सम्पादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

साहित्य-सेवा-सदन,

बनारस सिटी।

प्रथम संस्करण] पौष, सं० १९८६ वि० [मूल्य २)

प्रकाशक—
गयाप्रसाद शुक्ल एम. ए., व्यवस्थापक
साहित्य-सेवा-सदन,
बनारस सिटी.

मुद्रक—
बी. एल्. पावगी,
हितचिन्तक प्रेस,
रामघाट, काशी.

विषय सूची

विषय	पृष्ठ

प्रस्तावना

प्रातःस्मरणीय भारती-भूषण गोसाईं तुलसीदासजी की अजर-अमर कृतियों को आज प्रस्तावना अथवा भूमिका की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। जो स्वयं ही प्रकाश रूप है उसे अन्य साधारण प्रकाश की आवश्यकता ही क्या है। सूर्य को दीपक दिखाना व्यर्थ है। तथापि उनकी पीयूष-वर्षिणी रुचिर रचनाओं पर अनेक कला-कुशल कवि-कोविदों ने बहुत कुछ लिखकर अपनी वाणी पवित्र की और कर रहे हैं—

तदपि कहे बिन रहा न कोई।

तुलसी की रुचिर रचनाओं के संबंध में कुछ लिखना वा कहना अनुभवी विद्वानों का ही काम है, मुझ-जैसे अल्पज्ञ का नहीं। यहाँ, मैं गोसाईंजी की स्वतः प्रस्तावित कृतियों पर नहीं, किन्तु उनकी सरस सूक्तियों के उस संक्षिप्त संकलन पर अपने कुछ अस्त-व्यस्त विचार प्रकट करूंगा, जो मैंने दुस्साहसपूर्वक प्रस्तुत पुस्तक में किया है।

राम-चरित-मानस, अर्थात् रामायण, को ही आज हम सबसे अधिक प्रकाश में देखते हैं। वास्तव में, रामायण का भारतवर्ष ही क्या संसारभर में आशातीत प्रचार हुआ और हो रहा है। इसके बाद, प्रचार की दृष्टि से, विनय-पत्रिका का नाम आता है। तदनन्तर कवितावली, गीतावली और दोहावली की ओर हमारी दृष्टि जाती है। यों तो बाईस ग्रन्थों तक का आज नामोल्लेख पाया जाता है, किन्तु गोसाईंजी के बारह ग्रन्थ ही प्रसिद्ध हैं, जिनमें ६ बड़े हैं और ६

छोटे; पर साधारणतः उपर्युक्त पाँच ग्रन्थ ही अधिक लोक-प्रसिद्ध हैं। बारह ग्रन्थों के नाम ये हैं—

बड़े	छोटे
१—राम-चरित-मानस	७—पार्वती मंगल
२—विनय-पत्रिका	८—जानकी मंगल
३—कवितावली (कवित्त रामायण)	९—बरवै रामायण
४—गीतावली	१०—रामलला नहछू
५—रामाज्ञा	११—कृष्ण-गीतावली
६—दोहावली	१२—वैराग्य संदीपनी

इन्हीं बारह ग्रन्थों में से कुछ सरस सूक्तियों का साधारण चयन करके 'तुलसी-सूक्ति-सुधा' नाम का यह ग्रन्थ आज मैं आप के प्रीत्यर्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ। मुझे यहाँ इतना ही कहना चाहिए, कि संकलन जैसा चाहिए वैसा सुन्दर नहीं हुआ है, अतः उसपर मुझे कोई अभिमान भी नहीं हो सकता। इस संपादन-कार्य में यत्किंचित् परिश्रम मैंने अवश्य किया है, जिसे आपलोग अपनी कृपा-दृष्टि से सफल करके मुझे कृतार्थ निस्सन्देह कर सकते हैं, यह मेरा विश्वास है।

सूक्तिसुधा—रूपी यह घट ग्यारह विन्दुओं से भरा गया है—

१—चरित-विन्दु	७—पुरुष-परीक्षा विन्दु
२—ध्यान-विन्दु	८—उद्बोध-विन्दु
३—विनय-विन्दु	९—व्यवहार-विन्दु
४—तीर्थ-विन्दु	१०—निज-निवेदन-विन्दु
५—अध्यात्म-विन्दु	११—विविध-सूक्ति-विन्दु
६—साधन-विन्दु	

इन विन्दुओं का संक्षिप्त विवरण नीचे क्रमशः दिया जाता है—

चरित-विन्दु—राम, कृष्ण और शिव-चरित-संबंधी सूक्तियों का इस विन्दु में संकलन किया गया है। सबसे बड़ा राम-चरित ही है। रामायण, जानकी मंगल, कवितावली, गीतावली और बरवै रामायण की कतिपय सूक्तियों का चरित के क्रम से इसमें समावेश किया गया है। रामचरितमानस का तो कहना ही क्या है, हिन्दी-साहित्य में वह अनुपम अद्वितीय ग्रन्थ है। गीतावली और कवितावली भी 'राम-चरित-वर्णन' में अपना एक विशेष स्थान रखती है। गीतावली में माधुर्य का जैसा परिपाक हुआ है, वैसा अन्यत्र नहीं। जिन प्रसंगों को गोसाईंजी ने रामायण में संक्षिप्त कर दिया अथवा छोड़ दिया है, उनका सुन्दर सांगोपांग वर्णन आपने गीतावली और कवितावली में बड़ी ही कुशलता और सफलता से किया है। कवितावली में लंका-दहन-वर्णन तो अभूतपूर्व है। बड़ा ही सजीव चित्रण है। गीतावली के बाल-लीला के पद सूरदासजी के वात्सल्य रसके पदों से किसी अंश में कम नहीं हैं। इस ललित ग्रन्थ की भाषा भी शुद्ध व्रज-भाषा है। वन-पथिक राम को लक्ष्य करके वन-वधूटियों के मुख से कविने जो सस्नेह सकरुण उद्गार प्रकट कराये हैं, उन्हें पढ़कर वाणी गद्गद हो जाती है। गीतावली के उत्तरकाण्ड में रामचन्द्रजी की दिन-चर्या, हिंडोला, होली आदि की सूक्तियाँ सूर की सूक्तियों में मिल जाती हैं। इन पदों के देखने से इसमें संदेह नहीं रह जाता, कि गोसाईंजी अपने सिद्धरस ऐश्वर्य के ही समान माधुर्य को भी विदग्धता के साथ अंकित कर सकते थे। रामचरित, असल में, रामायण, कवितावली और गीतावली इस ग्रन्थ-त्रयी की

त्रिवेणी में ही पूर्णतः तरङ्गित दिखाई देता है। इन तीनों ग्रन्थों का एक साथ परिशीलन करके ही रामचरित का पूर्ण आनन्दानुभव किया जा सकता है।

दशरथ-कुमार राम की ही तरह, किन्तु संक्षेप में, गोसाईं जी ने नन्द-नन्दन कृष्णचन्द्रजी की भी ललित लीला गाकर अपनी रसना पुनीत की है। कृष्ण-गीतावली की सूक्तियाँ किस कृष्ण-भक्त को हठात् अपनी ओर न खींच लेंगी ? व्रज-साहित्याकाश के सूर्य सूर के ललित पदों से मधुरिमा में कृष्ण-गीतावली के कई पद टक्कर लेते हैं। कृष्ण-गीतावली के अतिरिक्त कवित्त-रामायण के उत्तरकाण्ड में भी कविने 'भ्रमर-गीत,' अर्थात् उद्धव-गोपी-संवाद, पर तीन पद्य बड़े सुन्दर लिखे हैं।

शिव-चरित रामायण और पार्वती-मंगल से लिया गया है। पार्वती-मंगल की रचना बड़ी ही रुचिर हुई है। सोहर छन्द में, ठीक जानकी-मंगल की ही तरह, इस छोटे-से ग्रन्थ को कविने लिखा है। भाव-व्यञ्जना इसकी अति सुन्दर है। शिव-चरित में हास्य रस का भी अच्छा वर्णन आया है।

इस प्रकार चरित-विन्दु का संकलन किया गया है। हिन्दी साहित्य में, चरितावली के लिखने में, एकमात्र गोसाईंजी ही सिद्धहस्त कवि कहे जा सकते हैं। ऐसा सुसंगठित और क्रमानुगत प्रबन्ध काव्य सचमुच किसी अन्य कविने नहीं लिखा। गोसाईंजी के हृदय-घट से निस्सृत राम-चरित सुधा-विन्दु का पान करके ही आज यह मृतप्राय हिन्दू जाति जीवित और जागृत हो रही है।

ध्यान विन्दु—इस विन्दु में भगवान् राम, शिव और हनुमान्

के ध्यान की कुछ सूक्तियों का संग्रह किया गया है। रामायण, विनय-पत्रिका, गीतावली, दोहावली आदि में राम-ध्यान की अनेक सुन्दर सूक्तियाँ हैं। नख-शिख-वर्णन करने में गोसाईंजी महाकवि सूरदासजी के एक प्रकार से समकक्ष ही बैठते हैं। विनय-पत्रिका में भगवान् विन्दु-माधव के नख-शिख-संबंधी दो पद बड़े ही सुन्दर और कवित्वपूर्ण हैं। बाल राम का ध्यान, गीतावली के कई पदों में, सांगोपांग रूप में मिलता है। रामचरितमानस में भी कई स्थलों पर श्रीराम-ध्यान का विशद वर्णन किया गया है। इन वर्णनों में कविने माधुर्य को कूट-कूट कर भर दिया है। वास्तव में—

ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।

शिव-ध्यान भी खूब लिखा है। रामायण के अतिरिक्त कवितावली और विनय-पत्रिका में भी भगवान् आशुतोष का भव-भय-हारी ध्यान चित्रित किया गया है। विनय के एक पद में अर्द्धनारी नटेश्वर शिव-पार्वती का जो वर्णन, वन और वसन्त के रूपक में, किया गया है वह अद्वितीय है।

हनुमद्-ध्यान-संबंधी कवितावली का केवल एक छप्पय ही दिया गया है, जो ओज का एक अच्छा उदाहरण कहा जा सकता है।

विनय-विन्दु—मुख्यतः राम की तथा गौणतः सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान्, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य आदि की विनय-विषयक सूक्तियाँ इस विन्दु में मिलेंगी। विनय पर तो गोसाईंजी का अपना ख़ास अधिकार था। अन्य महात्माओं और कवियोंने भी विनय-संबंधी रचनाएँ की हैं, पर वह बात उन सब में कहाँ है, जो

तुलसी की विनय में है ? हृदय को हिला देनेवाले सच्चे करुणोद्गार तो तुलसी की ही विनय में मिलेंगे। विनय की सप्त भूमिकाओं का इस महात्मा एवं महाकविने बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। राम-चरित-मानस के विनय-संबंधी कई प्रसंग तो हृदय-ग्राही हैं ही, पर विनय-पत्रिका तो बस विनय-पत्रिका ही है। इस अनुपम अद्वितीय ग्रन्थ को पढ़ कर हठात् मुख से यह निकल पड़ता है, कि 'न भूतो न भविष्यति'। विनय-पत्रिका में से सूक्तियाँ चुनने में सचमुच मैंने अनधिकार चेष्टा ही की है। इस ग्रन्थ को तो ज्यों का त्यों पूरा ही सुक्ति-सुधा में रख देना चाहिए था। पर प्रस्तुत संकलित ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाने तथा संकलन–न्याय के अधीन होने के कारण मन की मन में ही रही। फिर भी यह सोचकर संग्रह-कर्त्ता संतोष कर लेता है, कि सुविज्ञ पाठकगण 'सूक्ति-सुधा' में आये हुए दस पाँच विनय-पदों को पढ़कर अवश्य ही संपूर्ण विनय-पत्रिका का पावन पारायण करनेमें अपना बहुमूल्य समय देंगे। विनय-पत्रिका के बाद कवितावली के उत्तरकाण्ड का नाम लिया जा सकता है। इस के अनेक पद्य विनय के विमल रस से परिपूर्ण हैं। स्वामी के आगे अपनी हीन दीनदशा को विनयी सेवकने हृदय खोलकर रख दिया है। सचमुच ही—

कागज़ पै रख दिया है कलेजा निकाल के !

इन कवित्तों में कविने अपने अनुभव की अनेक बातें लिखी हैं। पढ़ते-पढ़ते नेत्र साश्रु हो जाते हैं, कण्ठ गद्गद हो जाता है। यों तो प्रत्येक विषय पर गोसाईंजी ने सफलतापूर्वक रचना की है, पर उन का ख़ास विषय तो बस विनय ही था, ऐसा जान पड़ता है। अनन्यता

का पूर्ण निर्वाह करते हुए भी गोसाईंजी ने अन्य देवी देवताओं का भी सविनय यशोगान किया है। प्रार्थना करके अन्त में सब से प्रायः यही माँगा है, कि—

देहु कामरिपु, राम-चरन-रति तुलसिदास कहँ कृपानिधान;

तथैव—

देहि मा ! मोहि प्रन-प्रेम यह नेम निज राम घनश्याम तुलसी पपीहा।

इसे कहते हैं सच्चा अनन्य भाव। श्रीरामचंद्रजी के अनन्तर विस्तारपूर्वक भगवान् पार्वतीवल्लभ शिव की ही विनय की गई है। रामायण, विनय-पत्रिका और कवितावली इन तीनों ग्रन्थों में शिव-विनय की अनेक सरस सूक्तियाँ मिलती हैं।

तीर्थ-विन्दु—इस विन्दु में अयोध्या, चित्रकूट, काशी, रामेश्वर, गंगा, प्रयाग आदि तीर्थों की महिमामयी सूक्तियाँ संकलित की गई हैं। तीर्थों पर गोसाईंजी की अतुल श्रद्धा थी। अयोध्या, चित्रकूट, काशी और प्रयाग पर तो उनका अनुपम प्रेम था। रामायण, कवितावली, गीतावली और विनय-पत्रिका में चित्रकूट और काशी के बड़े ही विशद वर्णन हैं। गीतावली के "देखत चित्रकूट बन मन अति होत हुलास" आदि पद में कवि के प्रकृति-पर्यवेक्षण का अच्छा परिचय मिलता है। चित्रकूट का वर्णन तो गोसाईंजी ने, वास्तव में, बड़ा ही सुंदर और सांगोपांग किया है। काशी की वर्णना भी विनय-पत्रिका की एक अनूठी वस्तु है। मुक्ति-जन्म-भूमि काशी की महिमा और कदर्थना पर उन्होंने जो पद्य लिखे हैं, वे तुलसी-साहित्य के अलंकार हैं। अवध-वर्णन, जो राम-चरित-मानस में है, वह अनूठा है। अन्य तीर्थों का भी वर्णन अवलोकनीय है।

अध्यात्म-विन्दु—इस विमल विन्दु में ब्रह्म, माया, जीव, अवतार, विराट् आदि का निरूपण किया गया है। सगुण और निर्गुण में, ब्रह्म और पूर्णब्रह्म राम में, जीव और ईश्वर में क्या भेद है इस पर गोसाईंजी की कई सुलझी हुई सूक्तियों का संकलन हमने इस विन्दु में किया है। गोसाईंजी का दार्शनिक ज्ञान किस असाधारण कोटि का था, इस का पता उनकी प्रायः प्रत्येक रचना में मिलता है। अद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत आदि वेदान्त-मतों का प्रतिपादन कर चुकने पर भी सिवा गोसाईंजी के और किस दर्शन-शास्त्रीने यह अनुभव-गम्य सिद्धान्त लिखा है—

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै॥

रामचरित मानस और विनय-पत्रिका में अध्यात्मवाद का प्रचुरता के साथ निरूपण किया गया है। वैराग्य संदीपनी से भी इस विन्दु में कई सूक्तियाँ ली हैं। माया का निरूपण तो गोसाईंजी का इतने पते का है, कि कुछ पूछिए नहीं। अनेक प्रकार से आपने विश्व-वैचित्र्य, मोह-निदर्शन एवं भ्रमवाद का सरस दार्शनिक निरूपण किया है। माया-परिवार की कल्पना तो आपकी अनोखी ही है। मानस-रोगों की तालिका भी आपने अनूठी दी है।

साधन-विन्दु—साधन-धाम क्या है, मुक्ति-लाभके अन्य साधन क्या हैं, रामनाम-स्मरण क्यों अन्य सर्व साधनों से सुगम और श्रेष्ठ है, भक्ति, प्रेम-परा भक्ति, भक्ति और ज्ञान, शान्ति इत्यादि का अध्यात्मवाद में क्या स्थान है, इन सबका विवेचन तथा ज्ञान-दीपक एवं भगवत्कृपा का सुन्दर निरूपण जिन सूक्तियों के द्वारा गोसाईंजीने अपने महिमामय

ग्रंथों में किया है, उन्हीं का यथामति चयन इस विन्दु में मैंने किया है। रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, कवितावली और दोहावली की ही सूक्तियाँ इस विन्दु में मुख्यतः संकलित की गई हैं। सब से अधिक भगवत्कृपा और नाम-स्मरण पर ही गोसाईंजीने जोर दिया है। रामनाम की महिमा जैसी आपने गाई है वैसी कोई और क्या गायगा। रामायण में आपने राम-नाम का महत्त्व जिन कवित्वमय और प्रेमपूर्ण शब्दों में कहा है, उन पर कुछ लिखना सामर्थ्य के बाहर है। बड़ा ही विशद निरूपण है। वह वर्णन एकबार अश्रद्धालु के भी हृदय में पवित्र श्रद्धा का संचार कर सकता है। इसमें सन्देह नहीं, कि "कहउँ नाम बड़ राम तें निज बिचार अनुसार" इस निज सिद्धांत का उन्होंने वास्तविक अनुभव प्राप्त कर लिया था। रामायण में ही नहीं, कवितावली, दोहावली, बरवै रामायण और विनय-पत्रिका में भी श्रीराम-नाम की अनिर्वचनीय महिमा गोसाईं जी ने भक्ति और श्रद्धा-सहित गाई है। मुक्ति-लाभ का सर्वोपरि साधन उन्होंने कलि-कल्पतरु राम-नाम को ही माना है। भक्ति का भी ख़ासा अच्छा निरूपण किया गया है। रामायण की "तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा" आदि चौपाई का भाव अनुपम है। कई सूक्तियों में प्रेमानन्यता को प्राधान्य दिया गया है। चातक और मीन की अनन्यता पर दोहावली में कई सुन्दर दोहे देखने में आते हैं। प्रेम के तत्व को गोसाईंजी खूब पहचानते थे, इसमें सन्देह नहीं। ज्ञान-दीपक की कल्पना उनकी अपनी ही है और वह है भी बड़ी ही हृदय-ग्राहिणी। वैराग्य-संदीपनी में शान्ति का अति सुन्दर वर्णन है। तप की भी उसमें अतुल महिमा है। भगवत्-कृपा

का कहना ही क्या है ? केवल हरिकृपा-साध्या ही मुक्ति है, इस पर गोसाईंजी का वज्रवत् विश्वास है। कहते हैं—

ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य, झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरि-कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मनमाहीं॥

पुरुष-परीक्षा-विन्दु—संत, सत्संग, रागद्वेष-रहित, सहज, सफलजीवन, अधिकारी, भगवत्-प्रिय, सन्मित्र, विरक्त, अंगीकृत आदि तथा असंत, विफलजीवन, अनधिकारी, कुमित्र, पाखंडी आदि पर गोसाईंजी की जो सूक्तियाँ हैं, उन्हीं सब का संक्षिप्त समावेश इस विन्दुमें किया गया है। सन्त-असन्त का निरूपण रामायण में कई स्थलों पर आया है। सन्त और असन्त की परिभाषाएँ तो अवश्य ही पठनीय हैं। वैराग्य-संदीपनी की सन्त-सूक्तियाँ भी अत्यन्त सरस हैं। अधिकारी और भगवत्-प्रिय तथा अंगीकृत जीव के लक्षण बड़े ही महत्त्व के हैं। "तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै" विनय का यह पद अंगीकृत जीव के लक्षण-निरूपण में सचमुच अपना सानी नहीं रखता। गोसाईंजी महाराज को लोकवन्दनीय असन्तों का भी अच्छा परिचय था। उनका भी आपने सच्चा चित्र खींचकर रख दिया है। विफलजीवन को भी खूब धिक्कारा है। इस विषय के "तिन्हतें खर सूकर स्वान भले" आदि कवितावली के पद्य द्रष्टव्य हैं। कई सूक्तियों में क्रूरकलियुग के पाखंडियों की भी आपने महिमा गाई है। रामायण और दोहावली दोनों में ही इन महापुरुषों का यशोगान किया गया है। संत और असंत के भेदाभेद का गोसाईंजी ने यथार्थ निरूपण किया है। सिद्धान्ततः आप कहते हैं—

जड़-चेतन गुन-दोषमय विस्व कीन्ह करतार ।
संत-हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि-बिकार ॥

उद्‌बोध-विन्दु—वैराग्य-संबंधिनी सूक्तियों का ही इस विन्दु में संक्षिप्त संकलन किया गया है । संसार की असारता और अनित्यता का इस विन्दु में सचमुच आप सजीव चित्र देखेंगे । क्षण-भंगुरता को देखते हुए भी जो जड़ जीव नहीं जाग रहे हैं उन के विफल जीवन पर आप दो बूँद आँसू गिराकर अवश्य कह उठेंगे—

'करि हंस को बेष बड़ो सब सों तजि दे बकबायस की करनी ।'

सोते हुए जीव को जगाने के लिए जीती-जागती चेतावनी की अनेक सूक्तियाँ गोसाईंजी ने दोहावली, कवितावली, विनय-पत्रिका और रामायण में कही हैं । सबसे अधिक विनयपत्रिका की ही सूक्तियाँ इस विन्दु में ली गई हैं । ऐसी-ऐसी चेतावनियों को भी पढ़ या सुन कर हमारी आँख न खुली तो बस हमारा नाश ही निश्चित समझो—

जिन्ह भूपनि जग जीति, बाँधि जम अपनी बाँह बसायो ।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हें, तू गिनती कब आयो ?

व्यवहार-विन्दु—इस विन्दु में लोक-हित एवं समाज-चिंतन राज-धर्म एवं राजनीति, सुराज और कुराज, परोपकार, सेवा-धर्म, नारी-धर्म तथा साधारण नीति की सूक्तियाँ संग्रहीत की गई हैं । परमार्थ ज्ञान की भाँति व्यावहारिक ज्ञान भी गोसाईंजी का बढ़ा-चढ़ा था । रामचरित मानस और दोहावली की ही सूक्तियों से मुख्यतः इस विन्दु का निर्माण हुआ है । लोक-हित-सबंधी कवितावली में कई पद्य मिलते हैं । नीचे की इस पंक्ति को पढ़कर हृदय विदीर्ण हो जाता है—

दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीन-बन्धु
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी !

'दीन-दयाल ! दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप-तई है'

विनय का यह पद भी लोक-चिंतना से भरा हुआ है।

राजनीति पर राम-चरित-मानस में अनेक सार्थक सूक्तियाँ हैं, जिन्हें देखने से गोसांईजी के अगाध राजनीतिक ज्ञान का पता चलता है। दोहावली में भी इस विषय के कई दोहे हैं। सुराज और कुराज का भी बड़ा सुंदर वर्णन आया है। राजा और प्रजा का संबंध इससे बढ़कर और क्या हो सकता है—

मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान कों एक।
पालइ-पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥

साधारण नीति पर तो तुलसी की सैकड़ों सूक्तियाँ हैं, जिनका आज बात-बात में प्रमाण दिया जाता है। राम-चरित-मानस तो साधारणनीति की सूक्तियों से आदि से अन्ततक भरा हुआ है। दोहावली के भी पचासों दोहे नीति के प्रमाणों में लिये जाते हैं।

निज-निवेदन-विन्दु—इस विन्दु में गोसाइँ तुलसीदासजी का आत्मपरिचय मिलेगा। 'मैं विद्वान् नहीं हूँ, कवि-कोविद नहीं हूँ, सज्जन नहीं हूँ, भक्त नहीं हूँ' आदि शब्दों में अपनी हीनता और तुच्छता दिखाते हुए उन्होंने दैन्य प्रलापों के द्वारा अपने परिचय का जो आभास दिया है, उसमें प्रत्येक तुलसीभक्त के मनन करने के लिए प्रचुर सामग्री विद्यमान है। कवितावली में इस विषय के कई सुंदर पद्य हैं। उन्हीं से यह जान पड़ता है, कि गोसाइँजी के

बालकपन में ही इनके माता-पिता का देहान्त हो गया था, या उन्होंने इन्हें छोड़ दिया था। पहले इन्हें कोई पूछता भी नहीं था, पर पीछे जनता में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा हुई। जो भिखमंगे के घर में जन्मा था, जिसने जाति-कुजाति सभी के टुकड़े खाये थे, वह राम-नाम की महिमामयी कृपा से मुनियों के समान ख्यातनामा हो गया!

राम-नाम को प्रभाव पाउँ महिमा-प्रताप,
तुलसी को जग मानियत महामुनी सो!

विनय-पत्रिका के 'राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यौ राम'—इस पद में भी इनके आत्म-परिचय का आभास मिलता है।

विविध-सूक्ति-विन्दु--तुलसी-सूक्ति-सुधा का यह अंतिम विन्दु है। इसमें विविध विषयकी सूक्तियों का समावेश कर दिया गया है। रामायण का कलियुग-वर्णन, कवितावली की काशी-कदर्थना, भारत-भक्ति तथा वेद-महिमा, संतोष, मूर्ति-पूजा, द्रौपदी-साहाय्य आदि विषयों की विविध सूक्तियाँ मैंने इस विन्दु में संकलित की हैं। आरती का रूपक विनय-पत्रिका से लिया है, जो अवश्यही अवलोकनीय है। अन्त में, ज्योतिष-ज्ञान-संबंधी कुछ दोहे दोहावली से लेकर रख दिये हैं। सारांश यह, कि इस विन्दु में भिन्न-भिन्न विषय की कुछ सूक्तियाँ गोसाईंजी के विविध ग्रन्थों से लेकर संकलित कर दी गई हैं। 'सूक्ति-सुधा' के ग्यारह विन्दुओं का, संक्षेप में, यही दिग्दर्शन है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित तुलसी-ग्रंथावली के पाठ को ही मैंने अधिक शुद्ध माना है, अतएव उसी के अनुसार इस

सूक्ति-सुधा में सूक्तियाँ उद्धृत की गई हैं। कठिन शब्दों की पाद-टिप्पणियाँ भी, संक्षेप में, देदी हैं। आशा है, कि तुलसी-सूक्तियों का अर्थ समझने में ये संक्षिप्त टिप्पणियाँ पाठकों को थोड़ी-बहुत सहायता देंगी।

इस ग्रन्थ का संकलन मैंने आज से चार वर्ष पूर्व किया था। कई अनिवार्य कारणों के वश प्रकाशक महोदय इसे अब प्रकाशित कर रहे हैं। इधर दो-तीन महीने का विलम्ब तो मेरे प्रस्तावना न लिखने के ही कारण हुआ। पर प्रकाशकने मेरे आजन्म साथी आलस्य पर आज विजय प्राप्त कर ली; क्यों न उन्हें इस विजय पर मैं बधाई दूँ?

यह तो मैं कह ही चुका हूँ, कि यह सूक्ति-संकलन कुछ बहुत अच्छा नहीं हुआ। तुलसी की रुचिर रचनाओं के चारु चयन का मैं अधिकारी ही नहीं हूँ। एक-से-एक अमूल्य रत्न तुलसी-काव्य-महोदधि में भरे पड़े हैं। चयन करते समय किसे तो उठाऊँ और किसे छोड़ूँ! अंधे के हाथ में जो रत्न आ गया वही उस के लिए बहुमूल्य है। ठीक यही दशा मेरी है। फिर भी आशा है, कि इस विवेक-चक्षु-विहीन संकलन-कर्ता के परिश्रम को आप लोग सफल करेंगे।

काशी,
मार्गशीर्ष पूर्णिमा,
संवत् १९८६ वि०

विनीत
वियोगी हरि

तुलसी-सूक्ति-सुधा

श्रीजानकी-वल्लभाय नमः

तुलसी-सूक्ति-सुधा

चरित बिन्दु

श्रीराम-चरित

बालकाण्ड

सोरठा

बन्दउँ गुरु-पद-कंज, कृपासिंधु नररूप हरि ।
महा मोह-तम-पुंज, जासु बचन रवि-कर-निकर ॥ १ ॥

चौपाई

बन्दउँ गुरु-पद-पदुम-परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिय-मूरि-मय चूरन चारू । समन सकल भव-रुज-परिवारू ॥
सुकृत संभुतन बिमल बिभूती । मंजुल मंगल-मोद-प्रसूती ॥
जन-मन-मंजु-मुकुर मलहरनी । किये तिलक गुन-गन-बसकरनी ॥
श्री गुरु-पद-नख-मनि-गन-जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ॥

१—नररूप हरि = कहते हैं कि गुसाईंजी के गुरुका नाम नरहरिदास था; अथवा जो मनुष्य होते हुए भी हरि के समान हैं । रवि-कर = सूर्य की किरणें ।

दलन मोह-तम सो सुप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव-रजनी के॥
सूझहिं राम-चरित-मनि-मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

दोहा

जथा सुअंजन आँजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भूरि निधान॥ २॥

चौपाई

गुरु-पद-रज मृदु मंजुल अंजन। नयन-अमिय दृग-दोष-बिभंजन॥
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम-चरित भव-मोचन॥३॥

संभु-प्रसाद सुमति हिय हुलसी। राम-चरित-मानस कबि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥
सुमति भूमि-थल हृदय अगाधू। बेद-पुरान-उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम-सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल-हानी॥
प्रेम-भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥
सो जल सुकृत-सालि हित होई। रामभगतजन जीवन सोई॥
मेधा महिगत सो जल पावन। सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

दोहा

सुठि सुन्दर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥ ४॥

२—रुज = रोग। प्रसूती = उत्पन्न करनेवाली। मुकुर = दर्पण। ही = हृदय। भूरि = बहुत।

३—बिबेक = सत्यासत्य के निर्णय करने का ज्ञान।

४—बर बारी = श्रेष्ठ जल। सगुन = दिव्य-गुण-संयुक्त परमात्मा। सुकृत-सालि = पुण्यरूपी धान्य। मेधा = बुद्धि, समझ। थिराना = स्थिर हो गया।

चौपाई

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना । ग्यान-नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति-महिमा अगुन अबाधा । बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥
राम-सीय-जस सलिल सुधासम । उपमा बीचि-बिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई । जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई ॥
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरंग कमल-कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभाषा । सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥
सुकृत-पुंज मंजुल अलिमाला । ग्यान-बिराग-बिचार-मराला ॥
धुनि अवरेव कवित गुनजाती । मीन मनोहर ते बहु भाँती ॥
अरथ धरम कामादिक चारी । कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥
नवरस जप तप जोग बिरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना । ते बिचित्र जल-बिहँग समाना ॥
संत-सभा चहुँ दिसि अँवराई । श्रद्धा रितु बसन्त सम गाई ॥
भगति-निरूपन बिबिध बिधाना । छमा दया द्रुम लता बिताना ॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना । हरि-पद-रस बर बेद बखाना ॥
अवरउ कथा अनेक प्रसंगा । तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा ॥

दोहा

पुलक बाटिका बाग बन सुख-सुबिहंग-बिहारु ।
माली-सुमन सनेह-जल सींचत लोचन चारु ॥ ५ ॥

५—सोपान=सीढ़ी; काण्ड से तात्पर्य है। अगुन=निर्गुण, मायात्मक गुणों से रहित। बीचि=तरंग। पुरइनि=कमलिनी। सुबासा=सुगंध। अवरेव=उलटे पद जोड़ना वा कुपेच। नवरस=साहित्य के नौ रस—शांत, शृंगार, हास्य, करुण, वीभत्स, वीर, रौद्र, अद्भुत और भयानक। अँवराई=आमों की वाटिका। जम=यम, संयम। अवरउ=और भी। पिक=कोयल। पुलक=रोमांच। सु मन=शुद्ध मन।

जिन्ह हरि-कथा सुनी नहिं काना । स्रवन-रंध्र अहि-भवन समाना ॥
नयनन्हि संत-दरस नहिं देखा । लोचन मोर-पंख कर लेखा ॥
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला । जे न नमत हरि-गुरु-पद-मूला ॥
जिन्ह हरि-भगति हृदय नहिं आनी । जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥
जो नहिं करइ राम-गुन-गाना । जीह सो दादुर-जीह समाना ॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरि-चरित न जो हरषाती ॥६॥

दोहा

राम-कथा सुरधेनु सम सेवत सब सुखदानि ।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनइ अस जानि ॥ ७ ॥

चौपाई

राम-कथा सुन्दर करतारी । संसय-बिहँग उड़ावनहारी ॥
राम-कथा कलि-बिटप-कुठारी । सादर सुनु गिरिराज-कुमारी ॥८॥

दोहा

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भये अनुकूल ।
चर अरु अचर हरषजुत राम-जनम सुखमूल ॥ ९ ॥

चौपाई

नवमी तिथि मधुमास पुनीता । सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता ॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा । पावन काल लोक-बिस्रामा ॥
सीतल मन्द सुरभि बह बाऊ । हरषित उर संतन्ह-मन चाऊ ॥

६—रंध्र = छेद । लेखा = उपमा । सव = शव, मुर्दा । जीह = जीभ । दादुर = मेंढ़क । कुलिस = वज्र ।

८—तारी = ताली । गिरिराज-कुमारी = पार्वती; शिवजी पार्वतीजी को राम-कथा सुना रहे हैं ।

बन कुसुमित गिरिगन मनियारा । स्रवहिं सकल सरितामृत-धारा ॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा । बहु बिधि लावहिं निज निज सेवा ॥

दोहा

सुर-समूह बिनती करि पहुँचे निज-निज धाम ।
जग-निवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक-बिस्राम ॥ १० ॥
बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा-निर्मित तनु माया-गुन-गो-पार ॥ ११ ॥

चौपाई

सुनि सिसु-रुदन परम प्रिय बानी । संभ्रम चलि आईं सब रानी ॥
हरषित जहँ-तहँ धाईं दासी । आनँद-मगन सकल पुरबासी ॥
दसरथ पुत्र-जनम सुनि काना । मानहु ब्रह्मानन्द समाना ॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा । चाहत उठन करत मति धीरा ॥
जा कर नाम सुनत सुभ होई । मोरे गृह आवा प्रभु सोई ॥
ध्वज पताक तोरन पुर छावा । कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा ॥
बृन्द-बृन्द मिलि चली लोगाईं । सहज सिँगार किये उठि धाईं ॥
कनक-कलस मंगल भरि थारा । गावत पैठहिं भूप-दुआरा ॥
करि आरति निवछावरि करहीं । बार-बार सिसु-चरनन्हि परहीं ॥
मागध सूत बंदिगन गायक । पावन गुन गावहिं रघुनायक ॥
सरबस दान दीन्ह सब काहू । जेहि पावा राखा नहिं ताहू ॥
मृग-मद-चंदन-कुंकुम-कीचा । मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा ॥

१०—मधु = चैत्र । अभिजित = एक नक्षत्र । बाउर = वायु । चाउ = चाव, उत्साह ।
स्रवहिं = बहाते हैं । जग—निवास = जगद्व्यापी । अखिल = सर्व ।
११—गुन = सत्व, रज और तमोगुण । गो = इन्द्रिय । पार = परे ।

दोहा

गृह-गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमाकन्द ।
हरषवन्त सब जहँ तहँ, नगर-नारि-नर-बृन्द ॥ १२ ॥

[राम-चरित-मानस]

राग आसावरी

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई ।
रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भये आई ॥
अति पुनीत मधुमास लगन ग्रह बार जोग समुदाई ।
हरषवन्त चर अचर भूमिसुर तनरुह पुलक जनाई ॥
बरषहिं बिबुध-निकर कुसुमावलि नभ दुन्दुभी बजाई ।
कौसल्यादि मातु मन हरषित यह सुख बरनि न जाई ॥
सुनि दसरथ, सुत जन्म लिये सब गुरु जन बिप्र बोलाई ।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनन्द उर न समाई ॥
सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई ।
पुरबासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज निज संपदा लुटाई ॥
मनि, तोरन, बहु केतु पताकनि पुरी रुचिर करि छाई ।
मागध सूत द्वार बंदीजन जहँ-तहँ करत बड़ाई ॥
सहज सिंगार किये बनिता चलीं मंगल बिपुल बनाई ।
गावहिं देहिं असीस मुदित चिरजिवौ तनय सुखदाई ॥
बीथिन्ह कुंकुम कीच, अरगजा अगर अबीर उड़ाई ।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देह-दसा बिसराई ॥
अमित धेनु, गज, तुरग बसन मनि जातरूप अधिकाई ।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥

१२—तोरन = बंदनवार । कनक = सुवर्ण । मागध = मगध देश के बंदीजन । मृग-मद = कस्तूरी । कुंकुम = रोली । बीथी = गली । सुखमा = शोभा ।

सुखी भये सुर, संत, भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई।
सबइ सुमन बिगसत रवि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई॥
जो सुख-सिंधु-सुकृत-सीकर ते सिव बिरंचि प्रभुताई।
सोइ सुख अवध उमगि रह्यौ दस दिसि कौन जतन कहौं गाई॥
जे रघुबीर-चरन-चिंतक तिन्ह की गति प्रगट दिखाई॥
अविरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तब पाई॥१३॥

[गीतावली]

चौपाई

मुनि-धन जन-सरबस सिव-प्राना। बालकेलि-रस तेहि सुख माना॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननी तृन तोरी॥
चारिउ सील-रूप-गुन-धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥
कबहुँ उछंग कबहुं बर पलना। मातु दुलारहिं कहि प्रिय ललना॥
काम-कोटि-छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन-चरन-पंकज-नख-जोती। कमल-दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहै। नूपुर धुनि सुनि मुनि-मन मोहै॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गँभीर जान जिन्ह देखा॥
भुज बिसाल भूषन-जुत भूरी। हिय हरि-नख अति सोभा रूरी॥
उर मनि-हार-पदिक की सोभा। बिप्र-चरन देखत मन लोभा॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन-छबि छाई॥

१३—भूमिसुर = ब्राह्मण। तनरुह = रोम। निकर = समूह। विबुध = देवता। नभ = स्वर्ग। वेद-विहित क्रिया = वेदोक्त संस्कार। केतु = ध्वजा। विपुल = बहुत। अरगजा = खस, केसर, चन्दन, कपूर आदि का लेप। तुरग = घोड़ा। जातरूप = सुवर्ण। अनुरूप = यथायोग्य। सिद्धि = अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ। कुमुद = कुंई। सकृत = एक। सीकर = बूँद। चिंतक = ध्यान करनेवाले। अविरल = निरंतर, एकरस।

दुइ-दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनइ पारे॥
सुन्दर स्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥
पीत झँगुलिया तनु पहिराई। जानु-पानि-बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि स्रुति सेषा। सो जानहिं सपनेहुँ जिन्ह देखा॥
बाल-चरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कह दीन्हा॥
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥
भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बालसमाजा॥
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि-ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अन्त न पावा। ताहि धरइ जननी हठि धावा॥
धूसर धूरिभरे तनु आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

दोहा

भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥ १४॥

[राम-चरित-मानस]

सवैया

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये॥

१४—जोरी = जोड़ी; राम-लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्न। पलना = पालना। वारिद = मेघ। कुलिस ध्वज अंकुस = वज्र, ध्वजा आदि चिन्ह। किंकिनी = करधनी। भूरी = बहुत। हरि—नख = बाघ के नख। रूरी = सुंदर। विप्रचरन = भृगु मुनि के चरण-प्रहार के चिन्ह से अभिप्राय है। कंबु = शंख। मदन = कामदेव। कुंचित कच = घूंघरवारे बाल। गभुआरे = बचपन के, गर्भ के बाल। जानु-पानि-विचरनि = घुटनों और हाथों के बल चलना। सेषा = शेष नाग। चलहिं पराई = भाग जाते हैं। निगम = वेद। नेति = ऐसा नहीं। धरइ = पकड़ती है। ओदन = भात।

अरविंद सो आनन, रूप-मरंद अनंदित-लोचनभ्रंग पिये ॥
मन मों न बस्यौ अस बालक जो तुलसी जग में फल कौन जिये ॥१५॥
तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं ।
अति सुन्दर सोहत धूरिभरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं ॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल बिनोद करैं ॥
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर में बिहरैं ॥१६॥
कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं ॥
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर में बिहरैं ॥ १७ ॥
बरदंत की पंगति कुन्द-कली, अधराधर-पल्लव खोलन की ।
चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की ॥
घुँघरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुण्डल लोल कपोलन की ।
निवछावर प्रान करै तुलसी, बलि जाउँ लला ! इन बोलन की ॥१८॥

[कवितावली]

राग सोरठ

ह्वै हौ लाल, कबहिं बड़े बलि मैया ।
राम लखन भावते भरत रिपुदवन चारु चार्यौ भैया ॥
बाल-बिभूषन-बसन मनोहर अंगनि बिरचि बनैहौं ।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ वारने जैहौं ॥

१५–मंजु = सुंदर । कलेवर = शरीर । अरविंद = कमल । मरंद = पराग । भ्रंग = भौंरे । मों = में ।

१६–सरोरुह = कमल । अनंग = कामदेव । कल = सुंदर ।

१७–आरि = हठ । रिसिआइ = क्रोध करके । लागि = लिये । अरैं = अड़ जाते हैं, हठ करते हैं ।

१८–पंगति = पंक्ति । अधराधर = दोनों होंठ । पल्लव = नवीन कोपल । लोल = चंचल ।

झुगन-मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकु-ठुमुकु कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि 'माँ' मोहि बुलैहौ॥
पुरजन सचिव राव रानी सब सेवक सखा सहेली।
लैहैं लोचन-लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ-बेली॥
जा सुख की लालसा लटू सिव, सुक, सनकादि उदासी।
तुलसी तेहि सुख-सिंधु कौसला मगन, पै प्रेम-पियासी॥ १८॥

राग केदारा

चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे,
चिर रुचि तिलक गोरोचन को कियो है।
भ्रू पर अनूप मसिबिंदु, बारे बारे बार
बिलसत सीस पर हेरि हरै हियो है।
मोद-भरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि,
देव कहैं सब को सुकृत उपवियो है।
मातु पितु प्रिय परिजन, पुरजन धन्य,
पुन्यपुंज पेखि-पेखि प्रेम-रस पियो है॥
लोहित ललित लघु चरन-कमल चारु,
चाल चाहि सो छबि सुकबि जिय जियो है।
बालकेलि बातबस झलकि झलमलत
सोभा की दीयटि मानो रूप-दीप दियो है॥
राम सिसु सानुज चरित चारु गाइ सुनि,
सुजन सादर जनम-लाहु लियो है।

१९—भावते = प्यारे। रिपुदवन = शत्रुघ्न। लाइ = लगा कर। धैहौ = दौड़ोगे। कलबल = जो मन में आया वही। लाहु = लाभ। मनोरथ-बेली = मनस्कामना रूपी लता। लटू = लट्टू, मुग्ध। सुक = व्यास-पुत्र शुकदेव। उदासी = विरक्त।

तुलसी बिहाइ दसरथ दसचारि पुर,
ऐसे सुखजोग विधि बिरच्यौ न बियो है ॥ २० ॥

राग आसावरी

आजु अनरसे हैं भोंर के, पय पियत न नीके ।
रहत न बैठे ठाढ़े, पालने झुलावत हू, रोवत राम मेरो सो सोच सबही के ॥
देव, पितर, ग्रह पूजिये, तुला तौलिये घी के ।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब परति दृष्टि दुष्ट ती के ॥
बेगि बोलि कुल-गुरु छुयो माथे हाथ अमी के ।
सुनत आइ रिषि कुस हरे, नरसिंह मंत्र पढ़े जो सुमिरत भय भी के ॥
जासु नाम सर्बस सदाशिव पार्वती के ।
ताहि झरावति कौसिला, यह रीति प्रीति की हिय हुलसति तुलसीके२१

राग केदारा

ललन लोने लेरुआ, बलि मैया ।
सुख सोइए नींद-बिरिया भई चारु-चरित चारयौ मैया ॥
कहति मलहाइ लाइ उर छिन-छिन छगन छबीले छौटे छैया ।
मोद-कंद कुल-कुमुद-चंद मेरे रामचंद रघुरैया ॥

२०—उबटि = बटना लगा कर । मासिबिंदु = काजल का दिठौना । बारे बारे = झडूले बाल । ललति = दुलार करती है । सुकृत = पुण्य । उपवियो है = उदय हुआ है परिजन = कुटुम्बी । पेखि = देख कर । लोहित = लाल । बात = पवन । दीयटि = दीवट । दसचारि पुर = चौदह भवन । बियो = दूसरा ।

२१—अनरसे = नाराज़, खिन्न । पय = दूध । अरत = मचल जाते हैं । ती = स्त्री । रिषि = ऋषि; वशिष्ठ से तात्पर्य है । भी = डर । झरावति = मंत्र से झड़वाती है ।

रघुबर बाल-केलि संतन की सुभग सुभद सुरगैया ।
तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी धैया ॥ २२ ॥

राग बिलावल

झूलत राम पालने सोहैं ।
भूरि भाग जननी जन जोहैं ॥
तन मृदु मंजुल मेचकताई । झलकति बाल-बिभूषन-झाईं ॥
अधर पानि पद लोहित लोने । सर-सिंगार-भव सारस सोने ॥
किलकत निरखि बिलोल खिलौना । मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना ॥
रंजित अंजन कंज-विलोचन । भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
लस मसिबिंदु बदन-विधु नीको । चितवत चित-चकोर तुलसीको २३

राग कल्याण

राजत सिसुरूप राम सकल गुन-निकाय धाम,
कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानु-पानि-चारी ।
नील कंज जलद-पुंज मरकत मनि सरिस स्याम,
काम-कोटि-सोभा अँग अंग उपर वारी ॥
हाटक-मनि-रत्न-खचित रचित इन्द्र-मंदिराभ,
इन्दिरा-निवास सदन विधि रच्यो सवारी ।
विहरत नृप-अजिर अनुज सहित बाल-केलि-कुसल,
नील-जलज-लोचन हरि मोचन-भयभारी ॥

२२—लेरुआ = बच्छा, बछवा । बिरिया = समय । चारु-चरित = सुंदर लीला करने वाले । मल्हाइ = दुलार करके । छगन = दुलार का शब्द । सुभद = शुभ अर्थात् मंगल देनेवाली । सुरगैया = कामधेनु; सब कामनाओं को सफल करनेवाली । धैया = थन से निकलती हुई दूध की धार ।

२३—मेचकताई = श्यामता । झाईं = छाया । लोहित = लाल । पानि = हाथ । भव = उत्पन्न । छौना = बच्चा । रंजित = रंगा हुआ, शोभित । मसिबिंद = दिठौना ।

अरुन चरन अंकुस धुज कंज कुलिस चिन्ह रुचिर.
भ्राजत अति नूपुर बर मधुर मुखरकारी ।
किंकिनी विचित्र जाल, कंबुकंठ ललित माल,
उर बिसाल केहरिनख, कंकन कर धारी ॥
चारु चिबुक, नासिका, कपोल, भाल तिलक, भ्रकुटि,
स्रवन अधर सुंदर द्विज-छबि अनूप न्यारी ।
मनहुँ अरुन कंज- कोस मंजुल जुग पाँति प्रसव
कुंदकली. जुगल जुगल परम सुभ्र वारी ॥
चिक्कन चिकुरावली मनो षडंघ्रि-मंडली,
बनी, बिसेषि गुंजत जनु बालक किलकारी ।
इकटक प्रतिबिंब निरखि पुलकत हरि हरषि-हरषि
लै उछंग जननी रस भंग जिय बिचारी ॥
जा कहँ सनकादि संभु नारदादि सुक मुनीन्द्र
करत बिबिध जोग काम क्रोध लोभ जारी ॥
दसरथ-गृह सोइ उदार, भंजन संसार-भार,
लीला अवतार तुलसिदास त्रासहारी ॥ २४ ॥

राग केदार

नेकु विलोकि धौं रघुबरनि ।
चारि फल त्रिपुरारि तो को दिये कर नृप-घरनि ॥
बाल-भूषन-बसन, तन सुंदर रुचिर रजभरनि ।

२४—निकाय = समूह । जानु-पानि-चारी = घुटनों के बल चलनेवाले । मरकत = नीलम । हाटक = सुवर्ण । मंदिराभ = मंदिर के समान सुंदर और दिव्य । इंदिरा = लक्ष्मी । अजिर = आँगन । मोचन = छुड़ानेवाले । रुचिर = सुंदर । मुखर = शब्दायमान । कुशल = चतुर । कंबु = शंख । द्विज = दांत । प्रसव = उत्पन्न । सुभ्र = स्वच्छ, सुंदर । चिकुर = बाल । षडंघ्रि = भौंरा । प्रतिबिंब = छाया । रसभंग = रोष, रूठना, मचलना । जारी = जला कर ।

परसपर खेलनि अजिर उठि चलनि, गिरि गिरि परनि ॥
झुकनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि ।
तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहिनी मनहरनि ॥
सखि-वचन सुनि कौसिला लखि सुढर पाँसे ढरनि ।
लेति भरि-भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहुँ करनि ॥
चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि ।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भये चहै तरनि ॥ २५ ॥

राग विलावल

आँगन खेलत आनँदकंद । रघुकुल-कुमुद-सुखद चारु चंद ॥
सानुज भरत लषन सँग सोहैं । सिसु-भूषन-भूषित मन मोहैं ॥
तन-दुति मोरचंद जिमि झलकैं । मनहुँ उमँगि अँग अँग छबि छलकैं ॥
कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजैं । पंकज पानि पहुँचियाँ राजैं ॥
कठुला कंठ बघनहा नीके । नयन-सरोज मयन सरसीके ॥
लटकन लसत ललाट लटूरीं । दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं ॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुंदा । ललित बदन, बलि, बालमुकुंदा ॥
कुलही चित्र विचित्र झँगूली । निरखति मातु मुदित मन फूली ॥
गहि मनि-खंभ डिंभ डगि डोलत । कलबल बचन तोतरे बोलत ॥
किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि। देत परम सुख पितु अरु अंबनि ॥
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है । गावत प्रेम पुलकि तुलसी है ॥२६॥

(गीतावली)

२५–त्रिपुरारि = शिवजी । नृप-घरनि = कौशल्या से तात्पर्य है । अजिर = आँगन । नटनि = नाचना-कूदना । सुढर = अच्छी तरह से ढाले गये, सुंदर । सैंतति = संचय और रक्षा करती है । पैंत = दाँव में रखा हुआ द्रव्य । बिबुध = देवता । जलधर = मेघ । तरनि = सूर्य ।

२६–मोरचँद = चंद्राङ्कित मोरपंख । कठुला = कंठा । मयन = कामदेव । सरसी =

चौपाई

बाल-चरित अति सरस सुहाये। सारद सेष संभु स्रुति गाये॥
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किये बिधाता॥
विद्या-विनय-निपुन गुन-सीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला॥
करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होंहि सब लोग लुगाई॥
बंधु सखा सग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु-पिता-अग्या अनुसरहीं।
जेहि विधि सुखी होहिं पुर-लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ सँजोगा २७

(रामचरित मानस)

सवैया

पद-कंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं-सर पंकज पानि लिये।
लरिका संग खेलत डोलत हैं सरजू तट चौहट हाट हिये॥
तुलसी अस बालक सों नहिं नेह कहा जप जोग समाधि किये।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जगमें फल कौन जिये २८
सरजू बर तीरहि तीर फिरैं रघुबीर, सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फबै॥

तालाब। लटूरी = अलक। दँतुरिया = छोटे-छोटे दाँत। रूरी = सुंदर। मसिबुंदा = दिठौना। कुलही = टोपी। चित्र विचित्र = रंग बिरंगी। फूली = प्रसन्न हुई। डिंभ = बालक। हुलसी है = उल्लसित हुई है।

२७–सारद = शारदा, सरस्वती। राता = अनुरक्त हुआ। बंचित = विमुख, ठगे गये। बीथी = गली। मृगया = शिकार। अग्या = आज्ञा।

२८–पनही = जूतियाँ। सर = शर, वाण। पानि = हाथ। चौहट = चौराहा। हाट = बाजार। सूकर = सुअर।

तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि नौ, तीनि, इकीस सबै
मति-भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि, फिरी उपमा न पवै २६

[कवितावली]

राग नट

बिहरत अवध-बीथिन्ह राम ।
संग अनुज अनेक सिसु, नवनील नीरद स्याम ॥
तरुन अरुन सरोज-पद बनी कनकमय पदत्रान ।
पीतपट कटि तून बर, कर ललित लघु धनु बान ॥
लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर नर नारि ।
बसत तुलसीदास-उर अवधेस के सुत चारि ॥ ३० ॥

राग टोढ़ी

खेलि खेल सुखेलनहारे ।
उतरि-उतरि चुचुकारि तुरंगनि सादर जाइ जोहारे ॥
बंधु सखा सेवक सराहि सनमानि सनेह सँभारे ।

२९—निषंग = तरकस । दुकूल = वस्त्र । फबै = शोभित हो रहा है । लावनिता = लावण्य, सौन्दर्य । दस = रूप, सौन्दर्य, माधुर्य, यौवन, सौकुमार्य्य, सुगंध, सुवेश, उज्ज्वलता, स्वच्छता, भाग्य । चार = प्रताप के चार गुण वीर्य, तेज, बल, ऐश्वर्य । नौ गुण = वशीकरण, नियतात्मता, अदभ्रता, वाग्मित्व, सर्वज्ञता, संहनन, वदान्यता, स्थिरता । तीन = प्रकृति के तीन गुण—व्यापकता, सौम्यता, रमणता । इकीस = यश के इकीस गुण—सुशीलता, वात्सल्य, सुलभता, क्षमा, दया, गंभीरता, करुणा, आर्द्रता, उदारता, आर्जव, चातुर्य, सौहार्द, शरण्यत्व, प्रीति-या लव, ज्ञान, कृतज्ञता, लोकप्रियता, नीति, अनुराग, कुलीनता, निर्वहणता । भारति = सरस्वती = पंगु = लँगड़ी असमर्थ ।

३०—बीथिन्ह = गलियों में । नीरद = मेघ । पदत्रान = जूती । तून = तरकस । कनक = सुवर्ण ।

दिये बसन गज बाजि साजि सब साज सुभाँति सँवारे ॥
मुदित नयन-फल पाइ, गाइ गुन सुर सानंद सिधारे ।
सहित समाज राजमंदिर कहँ राम राउ पगु धारे ॥
भूप-भवन घर-घर घमंड, कल्यान कोलाहल भारे ।
निरषि हरषि आरती निछावरि करत सरीर बिसारे ॥
नित नए मंगल मोद अवध सब, सब बिधि लोग सुखारे ।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्ह के प्रभु तें प्रभु-चरित पियारे ॥३१॥

[गीतावली]

दोहा

सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहु बिधि देइ असीस ।
जननी-भवन गये प्रभु, चले नाइ पद सीस ॥ ३२ ॥

चौपाई

अरुन नयन उर बाहु बिसाला । नील जलज तनु स्याम तमाला ॥
कटि पट पीत कसे बर भाथा । रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । बिस्वामित्र महानिधि पाई ॥
चले जात मुनि दीन्ह दिखाई । सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥
एकेहि बान प्रान हरि लीन्हा । दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥
मारि असुर द्विज-निर्भय-कारी । अस्तुति करहिं देव-मुनि-झारी ॥
आश्रम एक दीख मग माहीं । खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं ॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी । सकल कथा मुनि कही बिसेखी ३३

[रामचरित मानस]

३१—चुचुकारि = पुचकार कर । जोहारे = प्रणाम किया । सराहि = प्रशंसा करके । वाजि = घोड़ा । राउ = राव, राजा । कल्याण = श्रेय, भलाई ।

३२—रिषि = ऋषि; विश्वामित्र से तात्पर्य है ।

३३—उर = छाती । तमाल = एक वृक्ष । भाथा = तरकस । चाप = धनुष । सायक = वाण । निजपद = वैष्णव-पद; साकेतधाम । झारी = समूह ।

राग कान्हरा

सोहत मग मुनि सँग दोउ भाई।

तरुन तमाल चारु चंपक छबि कबि सुभाय कहि जाई॥
भूषन बसन अनुहरत अंगनि, उमगति सुंदरताई।
बदन-मनोज सरोज लोचननि रही है लुभाइ लुनाई॥
अंसनि धनु, सर कर-कमलनि, कटि कसे हैं निषंग बनाई।
सकल-भुवन-सोभा-सरबसु लघु लागति निरखि निकाई॥
महि मृदु पथ, घन छाँह, सुमन सुर बरष, पवन सुखदाई।
जल-थल-रुह फल फूल सलिल सब करत प्रेम-पहुनाई॥
सकुच सभीत बिनीत साथ गुरु बोलनि चलनि सुहाई।
खग मृग चित्र बिलोकत बिच-बिच, लसति ललित लरिकाई॥
बिद्या दई जानि बिद्यानिधि, बिद्यहु लही बड़ाई।
ख्याल दली ताड़का, देखि ऋषि देत असीस अघाई॥
बूझत प्रभु सुरसरि-प्रसंग कहि निज-कुल-कथा सुनाई।
गाधि-सुवन-सनेह-सुख-संपति उर-आस्रम न समाई॥
बनबासी बटु जती जोगी जन साधु-सिद्ध-समुदाई।
पूजत पेखि प्रीति पुलकत तनु, नयन-लाभ लुटि पाई॥
मख राख्यौ खल-दल दलि भुजबल, बाजत बिबुध बधाई।
नित पथ-चरित सहित तुलसी-चित बसत लषनरघुराई॥३४॥

३४—तमाल = श्रीरामचंद्र से तमाल की उपमा दी गई है। चंपक = चंपा; लक्ष्मण जी से चंपा की उपमा दी गई है। मनोज = कामदेव। लुनाई = सुंदरता। अंसनि = कन्धों पर। निषंग = तरकस। निकाई = सुंदरता। जल-थल-रुह = पानी में के तथा जमीन पर के पेड़। चित्र = रंग बिरंगे। ख्याल = सहज में ही। सुरसरि = गंगा। निज......सुनाई = सूर्यवंशी महाराज सगर से लेकर महाराज भागीरथ तक की कथा सुना दी। गाधि-सुवन = गाधि-पुत्र विश्वामित्र।

राग सूहो

परत पद-पंकज रिषि-रवनी।
भई है प्रगट अति दिव्य देह धरि मनु त्रिभुवन-छवि-छवनी॥
देखि बड़ो आचरजु पुलकि तनु कहति मुदित मुनि-भवनी।
जो चलिहैं रघुनाथ पयादेहि सिला न रहिहि अवनी॥
परसि जो पाँय पुनीत सुरसरी सोहै तीन-गवनी।
तुलसिदास तेहि चरन-रेनु की महिमा कहै मति कवनी॥३५॥

[गीतावली]

मंगल छंद

गौतम-नारि उधारि पठै पति-धामहिं।
जनकनगर लै गयो महामुनि रामहिं॥ ३६॥

[जानकी-मंगल]

चौपाई

हरषि चले मुनि-बृंद-सहाया। बेगि बिदेह-नगर नियराया॥
पुर-रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेखी॥
बिस्वामित्र महामुनि आये। समाचार मिथिलापति पाये॥
कीन्ह प्रनाम चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥
कुसल-प्रश्न कहि बारहि बारा। बिस्वामित्र नृपहिं बैठारा॥

बटु = ब्रह्मचारी। जती = यति, संन्यासी। मख = यज्ञ। राख्यौ = रक्षा की।

३५--रिषि-रवनी = ऋषि-रमणी; गोतम ऋषि की स्त्री अहल्या। छवनी = छबिवाली, सुंदरी। भवनी = गृहिणी, स्त्री। अवनी = पृथ्वी। तीन-गवनी = तीन धाराओं से तीनों लोक में बहनेवाली गंगा। कवनी = कौन।

३७--बिदेह-नगर = जनकपुर। नियराया = समीप आ गया। रम्यता = शोभा। बयस = वयः, अवस्था। बिदेह = शरीर रहते भी जिसे शरीर की सुधि न हो।

तेहि अवसर आये दोउ भाई। गये रहे देखन फुलवाई॥
स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन-सुखद बिस्व-चित-चोरा॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेह बिदेह बिसेखी॥

दोहा

प्रेममगन मन जानि नृप करि बिबेक धरि धीर।
बोलेउ मुनि-पद नाइ सिर गदगद गिरा गँभीर॥ ३७॥

चौपाई

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुलतिलक कि नृपकुल-पालक॥
सहज बिरागरूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद-चकोरा॥
इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म-सुखहि मन त्यागा॥
कह मुनि बिहँसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका॥
ए प्रिय सबहि जहाँलगि प्रानी। मन मुसुकाहिं राम सुनि बानी॥
रघुकुल-मनि दसरथ के जाये। मम हित लागि नरेस पठाये॥

दोहा

राम लषन दोउ बंधु बर रूप-सील-बल-धाम।
मख राखेउ सब साखि जग जिते असुर संग्राम॥ ३८॥

[रामचरितमानस]

राग टोड़ी

ए कौन कहाँ तें आए?
नील पीत-पाथोज-बरन, मनहरन सुभाय सुहाए॥

गदगद = भरा हुआ गला। गिरा = वाणी से।

३८--तिलक = श्रेष्ठ। अलीका = असत्य। जाये = उत्पन्न; पुत्र। मख = यज्ञ। साखि = साक्षी, गवाह। जिते = जीत लिये।

३९--पाथोज = कमल। सुभाय = स्वभावतः, प्रकृति से। ललाये = प्यार किये हुए। इन्द्र-जयन्त = इन्द्र की उपमा राम से और जयन्त की उपमा लक्ष्मण से दी

मुनि-सुत किधौं भूप-बालक, किधौं ब्रह्म-जीव जग जाए।
रूप-जलधि के रतन सुछबि-तिय-लोचन ललित ललाए॥
इंद्र-जयंत, मदन रितुपति कैधौं हरिहर भेष बनाए।
किधौं आपने सुकृत सुरतरु के सुफल रावरेहि पाए॥
भए बिदेह बिदेह नेहबस देह-दसा बिसराए।
पुलक गात, न समात हरष हिय, सलिल सुलोचन छाए॥
जनक-बचन मृदु मंजु मधुभरे रुचिर कौसिकहि भाए।
तुलसी अति आनंद उमँगि उर राम-लषन-गुन गाए॥३९॥

कौसिक कृपालु हू को पुलकित तनु भो।
उमँगत अनुराग सभा के सराहे भाग,
देखि दसा जनक की कहिबे को मनु भो॥
प्रीति के न पातकी, दिये हूँ साप पाप बड़ो,
मख-मिस मेरो तब अवध गवनु भो।
प्रानहूँ तें प्यारे सुत माँगे दिये दसरथ,
सत्यसिंधु सोच सहे, सूनो सो भवनु भो॥
काकसिखा सिर, कर केलि-तून-धनु-सर,
बालक-बिनोद जातुधाननि सों रनु भो।
बूझत बिदेह अनुराग आचरज-बस,
रिषिराज-जाग भयो महाराज अनुभो॥
भूमिदेव, नरदेव, सचिव परसपर,
कहत हमहिं सुरतरु सिवधनु भो।

गई है। मदन = राम से उपमा दी गई है। रितुपति = वसन्त; लक्ष्मण से उपमा दी गई है। सलिल = जल; आँसू से तात्पर्य है। कौसिक = विश्वामित्र।

४०--प्रीति के न पातकी = यज्ञ विध्वंस करनेवाले पापी राक्षस प्रीति करनेयोग्य नहीं हैं। काकसिखा = काकपक्ष, सिर के पट्टे। तून = तरकस। जातु-

सुनत राजा की रीति, उपजी प्रतीति प्रीति,
भाग तुलसी के, भले साहेब को जनु भो ॥४०॥

[गीतावली]

मंगल छन्द

देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ ।
बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ ॥
प्रमुदित हृदय सराहत भल भव-सागर ।
जहँ उपजहिं अस मानिक, बिधि बड़ नागर ॥
" केहि सुकृती के कुँवर" कहिय मुनिनायक ।
" गौर स्याम छबिधाम धरे धनु-सायक ॥
बिषय-बिमुख मनमोर सेइ परमारथ ।
इन्हहिं देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ" ॥
कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि, "महिपालक !
ए परमारथरूप ब्रह्ममय बालक ॥
पूषन-बंस-बिभूषन दसरथ-नंदन ।
नाम राम अरु लषन सुरारि-निकंदन ॥"
रूप-सील-वय-बंस राम परिपूरन ।
समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन ॥४१॥

[जानकी मंगल]

धान = राक्षस । रनु = रण । जाग = यज्ञ । भूमिदेव = ब्राह्मण । नरदेव = राजा । साहेब = स्वामी ।

४१--बिराग बिरागेउ = विराग को भी विराग हो गया अर्थात् वैराग्य भूल गया, अनुराग हो गया । नागर = चतुर । सुकृती = पुण्यात्मा । परमारथ = मोक्ष-मार्ग । पूषन = सूर्य । सुरारि-निकन्दन = देवताओं के शत्रु राक्षसों के मारनेवाले । पन = प्रण, प्रतिज्ञा । लाग बिसूरन = मनही मन पछताने लगे ।

दोहा

जाइ देखि आवहु नगर, सुखनिधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन दिखाइ ॥ ४२ ॥

चौपाई

मुनि-पद-कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक-लोचन-सुख-दाता ॥
पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा ॥
तन अनुहरत सुचंदन-खोरी। स्यामल गात मनोहर जोरी ॥
चितवनि चारु भ्रकुटि बर बाँकी। तिलक-रेख-सोभा जनु चाँकी ॥

दोहा

रुचिर चौतनी सुभग सिर, मेचक कुंचित केस।
नख-सिख सुंदर बंधु दोउ, सोभा सकल सुदेस ॥ ४३ ॥

चौपाई

देखन नगर भूप-सुत आये। समाचार पुरबासिन्ह पाये ॥
धाये धाम-काम सब त्यागी। मनहुँ रंक-निधि लूटन लागी ॥
जुवती भवन-झरोखन्हि लागी। निरखहिं राम-रूप-अनुरागी ॥
कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती ॥
कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह अस रूप निहारी ॥
देखि राम-छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई ॥
जो सखि इनहिं देखि नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू ॥
जो बिधिबस अस बनइ सजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू ॥
सखि हमरे आरति अति ताते। कबहुँक ए आवहिं एहि नाते ॥
जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहि स्यामल बरु रचेउ बिचारी ॥

४३--परिकर = फेंटा। खोरी = तिलक।

४४--लूटन लागी = लुटने लगी। बरु = वर। अहई = है। नरनाहू = जनक। कृत-

तासु बचन सुनि सब हरषानी । ऐसेइ होउ कहहिं मृदुबानी ॥
पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई । जहँ धनु मख-हित भूमि बनाई ॥
पुर-बालक कहि-कहि मृदु बचना । सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना ॥

दोहा

सब सिसु एहि मिसु प्रेमबस परसि मनोहर गात ॥
तनु पुलकहिं अति हरषि हिय देखि-देखि दोउ भ्रात ॥ ४४ ॥

[रामचरित मानस]

राग टोड़ी

रंगभूमि आये दसरथ के किसोर हैं ।
पेखनो सो पेखन चले हैं पुर-नर-नारि,
बारे बूढ़े अंध पंगु करत निहोर हैं ॥
नील-पीत नीरज, कनक मरकत, घन-
दामिनि-बरन तनु, रूप के निचोर हैं ।
सहज सलोने राम लखन ललित नाम
जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमोर हैं ॥
चरन सरोज, चारु जंघा जानु ऊरू कटि,
कंधर बिसाल, बाहु बड़े बरजोर हैं ।
नीके कै निषंग कसे, कर कमलनि लसै,
बान बिसिषासन मनोहर कठोर हैं ॥
काननि कनकफूल, उपवीत अनुकूल,
पियरे दुकूल बिलसत आछे छोर हैं ।

कृत्य = कृतार्थ । गे = गये । मिसु = बहाना । गात = अंग ।
४५--पेखनो = तमाशा । पंगु = लंगड़ा । निहोर = निहोरा, विनय । कनक = सुवर्ण । लक्ष्मण से उपमा दी गई है । मरकत = नीलम; राम से उपमा दी गई है । निचोर = निचोड़, सार । ऊरु = जाँघ, । कंधर = कंधा । निषंग = तरकस ।

राजिव नयन बिधुबदन टिपारे सिर,
नखसिख अंगनि ठगौरी ठौर-ठौर है ॥

सभा-सरवर, लोक-कोकनद कोकगन
प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं ।

अबुध असैले मन मैले महिपाल भये,
कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं ॥

भाई सों कहत बात कौसिकहि सकुचात,
बोल घन घोर से बोलत थोर-थोर हैं ।

सनमुख सबहि बिलोकत सबहि नीके,
कृपासों हेरत हँसि तुलसी की ओर हैं ॥४५॥

राग सारँग

जबतें राम लषन चितए, री ।
रहे इकटक नरनारि जनकपुर, लागत पलक कलप बितए, री ॥
प्रेमबिबस माँगत महेस सों देखत ही रहिए नित ए, री ।
कै ए सदा बसहु इन नयनन्हि, कै ए नयन जाहु जित ए, री ॥
कोउ समुझाइ कहै किन भूपहि बड़े भाग आये इत ए, री ।
कुलिस कठोर कहाँ संकर-धनु, मृदुमूरति किसोर कित ए, री ॥

बिसिषासन = धनुष । कनकफूल = फूल के आकार का सोने का भूषण । उपवीत = जनेऊ । अनुकूल = सुन्दर । दुकूल = वस्त्र । राजिव = कमल । टिपारा = ताज के आकार की टोपी । कोकनद = लाल कमल । कोकगन = चकई-चकवा के समूह । दिनमनि = सूर्य । अबुध = मूर्ख । असैला = आशावान् । घोर = गरज । कौसिक = विश्वामित्र ।

४६--कुलिस = बज्र । बिरंचि = ब्रह्मा । रितए = खाली कर दिये । क्रम = कर्म से ।

बिरचत इन्हहिं बिरंचि भुवन सब सुंदरता खोजत रितए, री ॥
तुलसिदास ते धन्य जनम जन मन क्रम बच जिन्हके हित ए, री ॥४६॥

[गीतावली]

चौपाई

समय जानि गुरु-आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥
भूप-बाग बर देखेउ जाई । जहँ बसंत रितु रही लोभाई ॥
लागे बिटप मनोहर नाना । बरन-बरन बरबेलि बिताना ॥
चातक कोकिल कीर चकोरा । कूजत बिहँग नटत कल मोरा ॥
मध्य बाग सर सोह सोहावा । मनि-सोपान बिचित्र बनावा ॥
बिमल सलिल सरसिज बहु रंगा । जल खग कूजत, गुंजत भृंगा ॥
चहुँ दिसि चितइ पूछि मालीगन । लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई । गिरजा पूजन जननि पठाई ॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग बर माँगा ॥
एक सखी सिय संग बिहाई । गई रही देखन फुलवाई ॥
तेइ दोउ बंधु बिलोके जाई । प्रेमबिबस सीता पहँ आई ॥
देखन बाग कुअँर दुइ आये । बय किसोर सब भाँति सुहाये ॥
स्याम गौर किमि कहउँ बखानी । गिरा अनयन, नयन बिन बानी ॥
तासु बचन अति सियहि सुहाने । दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखइ न कोई ॥

वच = वचन से । हित = प्रेमी ।

४७--प्रसून = फूल । बितान = मंडप । चातक = पपीहा । कीर = तोता । नटत = नाचते हैं । गिरिजा = पार्वती । विहाई = छोड़ कर । गिरा = वाणी । पुरातन = पुरानी, पूर्वजन्म की । अग्र = आगे । पुनीत = पवित्र, शुद्ध ।

दोहा

सुमिरि सीय नारद-बचन, उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत ॥४७॥

चौपाई

कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि । कहत लषनसन राम हृदय गुनि ॥
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्ही । मनसा बिस्व-बिजय कहँ कीन्ही ॥
अस कहि फिर चितये तिहि ओरा । सिय-मुख-ससि भये नयन चकोरा ॥
देखि सीय-सोभा सुख पावा । हृदय सराहत बचनु न आवा ॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई । छबि-गृह दीप-सिखा जनु बरई ॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी । केहि पटतरउँ बिदेह-कुमारी ॥

दोहा

सिय-सोभा हिय बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि ।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि ॥ ४८ ॥

चौपाई

तात जनक-तनया यह सोई । धनुषजग्य जेहि कारन होई ॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥
सो सब कारन जान बिधाता । फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता ॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मन कुपंथ पग धरहिं न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी ॥

सभीत = डरी हुई । गुनि = विचार कर । मनसा = इच्छा । बरई = जल रही है । पटतरई = उपमा दूँ ।

४९--छोभा = क्षुब्ध हो गया, लुभा गया । काऊ = कभी । केरी = की । डीठी = दृष्टि ।

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं । ते नर वर थोरे जगमाहीं ॥

दोहा

करत बतकही अनुज सन, मन सियरूप लुभान ।
मुख-सरोज-मकरंद-छबि, करइ मधुप इव पान ॥ ४६ ॥

चौपाई

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता । कहँ गये नृपकिसोर मन-चीता ॥
जहँ बिलोकि मृगसावक-नयनी । जनु तहँ बरस कमल-सित स्रेनी ॥
लता-ओट तब सखिन लखाये । स्यामल गौर किसोर सुहाये ॥
देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निजनिधि पहिचाने ॥
अधिक सनेह देह भई भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥
लोचन-मग रामहिं उर आनी । दीन्हें पलक-कपाट सयानी ॥

दोहा

लता-भवनतें प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाइ ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद-पटल बिलगाइ ॥ ५० ॥

चौपाई

सोभा-सींव सुभग दोउ बीरा । नील-पीत-जलजात सरीरा ॥
मोरपंख सिर सोहत नीके । गुच्छे बिच-बिच कुसुम-कलीके ॥
भाल तिलक स्रम-बिंदु सुहाये । स्रवन सुभग भूषन छबि छाये ॥
बिकट भ्रकुटि कच घूँघरवारे । नवसरोज-लोचन रतनारे ॥

बतकही = बातचीत । मकरंद = पराग । इव = समान ।

५०--मनचीता = मन को अच्छे लगनेवाले, मन को हरनेवाले । सावक = बच्चा ।
स्रेनी = श्रेणी, पंक्ति, समूह । भोरी = भोली, बेसुध, निःसंज्ञ । पटल = परदा ।

५१--सींव = सीमा, हद । जलजात = कमल । स्रमबिन्दु = पसीने की बूँद ।
बिकट = टेढ़ी, बाँकी । कच = बाल । कंबु = शंख । कलभ = हाथी ।

चारु चिबुक नासिका कपोला। हास-बिलास लेत मन मोला॥
उर मनि-माल कंबुकल ग्रीवां। काम-कलभ-कर भुज बल-सीवां॥
सुमन समेत बाम कर दोना। साँवर कुँअर सखी सुठि लोना॥

दोहा

केहरि-कटि पट-पीत-धर, सुखमा-सील-निधान।
देखि भानु-कुल-भूषनहिं, बिसरा सखिन्ह अपान॥५१॥

चौपाई

धरि धीरज इक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरिकर ध्यान करेहू। भूप-किसोर देखि किन लेहू॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे॥
नखसिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता-पन मन अति छोभा॥
धरि बड़ धीर राम उर आने। फिरी अपुनपौ पितुबस जाने॥

दोहा

देखन मिस मृग बिहँग तरु, फिरहि बहोरि-बहोरि॥
निरखि-निरखि रघुबीर-छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि॥ ५२॥

चौपाई

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति॥
प्रभु जब जाति जानकी जानी। सुख-सनेह-सोभा-गुन-खानी॥
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त-भीती लिखि लीन्ही॥
गई भवानी-भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी॥

कर = सूँड़। सीवां = सीमा, हद। सुठि = भलीभाँति। केहरि = सिंह।
अपान = अपनापन, चेतनता।

५२--छोभा = क्षुब्ध हुआ। पन = प्रतिज्ञा।

५३--बिसूरति = पछता रही है। मसि = स्याही। नीके = भलीभाँति। तेही = इसी से।

जय जय गिरिवरराज-किसोरी। जय महेस-मुखचंद-चकोरी॥
मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सबही के॥
कीन्हेउ प्रगटि न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही॥
बिनय-प्रेमबस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥

सोरठा

जानि गौरि अनुकूल, सिय-हिय-हरष न जात कहि।
मंजुल-मंगल-मूल, बाम अंग फरकन लगे॥ ५३॥

[रामचरित मानस]

राग टोड़ी

भोर फूल बीनिबे को गए फुलवाई हैं।
सीसनि टिपारे, उपवीत, पीतपट कटि,
दोना बाम करनि सलोने भे सवाई हैं॥
रूप के आगार भूप के कुमार सुकुमार,
गुरु के प्रान-अधार संग सेवकाई हैं।
नीच ज्यों टहल करैं, राखैं रुख अनुसरैं,
कौसिक से कोही बस किये दुहुँ भाई हैं॥
सखिन सहित तेहि औसर बिधि के सँजोग,
गिरिजा पूजिबे को जानकीजू आई हैं।
निरखि लषन राम जाने ऋतुपति काम,
मोहि मानो मदन मोहिनी मूड़ नाई हैं॥
राघौंजू श्रीजानकी-लोचन मिलिबे को मोद,
कहिबे को जोगु न, मैं बातसी बनाई है।

खसी=गिर पड़ी। अनुकूल=प्रसन्न। वाम अंग=स्त्रियों के वाम अंग शुभ और दाहिने अशुभ माने जाते हैं।

५४--टिपारा=टोपी। उपवीत=जनेऊ। भे=हुए। सवाई=सवाया; अत्यधिक।

स्वामी सीय सखिन्ह लषन तुलसी को तैसो,
तैसो मन भयो जाकी जैसिये सगाई है ॥ ५४ ॥

[गीतावली]

चौपाई

बिगत दिवस गुरु-आयसु पाई । संध्या करन चले दोउ भाई ॥
प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा । सिय-मुख-सरिस देखि सुख पावा ॥
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं । सीय-बदन सम हिमकर नाहीं ॥

दोहा

जनम सिंधु, पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलंकु ।
सिय-मुख-समता पाव किमि, चंद बापुरो रंकु ॥ ५५ ॥

चौपाई

घटइ बढ़इ बिरहिनि-दुखदाई । ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई ॥
कोक-सोकप्रद पंकज-द्रोही । अवगुन बहुत चंद्रमा ! तोही ॥
वैदेही-मुख-पटतर दीन्हे । होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे ॥
सिय-मुख-छबि बिधु-व्याज बखानी । गुरु पहँ चले निसा बड़ि जानी ५६

[रामचरित मानस]

टहल = सेवा । कोही = क्रोधी । सगाई = प्रीति, सम्बन्ध ।

५५--प्राची = पूर्व । उयेउ = उदय हुआ । हिमकर = चन्द्रमा, समुद्र से चन्द्रमा और हालाहल विष दोनों ही उत्पन्न हुए हैं, अतः दोनों सहोदर भ्राता है । बापुरो = बेचारा ।

५६--सन्धि = अवसर । कोक = चकवा, चकई । पटतर = उपमा । व्याज = बहाना, मिस ।

दोहा

राजत राज-समाज महँ कोसल-राज-किसोर ।
सुंदर स्यामल गौर-तनु, बिस्व-बिलोचन-चोर ॥ ५७ ॥

चौपाई

सहज मनोहर मूरति दोऊ । कोटि-काम उपमा लघु सोऊ ॥
सरद-चंद-निंदक मुख नीके । नीरज-नयन भावते जीके ॥
चितवनि चारु मार-मद-हरनी । भावत हृदय जाति नहिं बरनी ॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला । चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला ॥
कुमुद-बंधु-कर-निंदक हाँसा । भ्रुकुटी बिकट मनोहर नासा ॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं । कचबिलोकिअलि-अवलिलजाहीं॥
पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई । कुसुम कली बिच-बीच बनाई ॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ । जनु त्रिभुवन-सोभा की सीवाँ ॥

दोहा ।

कुंजर-मनि-कंठा कलित, उरन्ह तुलसिका-माल ।
वृषभकंठ केहरि-ठवनि, बलनिधि बाहु बिसाल ॥ ५८ ॥

चौपाई

कटि तूनीर पीतपट बाँधे । कर सर धनुष बाम कर साधे ॥
पीत जग्य-उपवीत सुहाये । नखसिख मंजु महाछबि छाये ॥
देखि लोग सब भये सुखारे । एकटक लोचन टरत न टारे ।।
हरषे जनक देखि दोउ भाई । मुनि-पद-कमल गहे तब जाई ॥
करि बिनती निज कथा सुनाई । रंग-अवनि सब मुनिहिं देखाई ।

५८--भावत = प्यारे । मार = कामदेव । लोला = चंचल । कुमुद = चन्द्रमा । कर = किरण । नासा = नाक । कच = बाल । चौतनी = चौगोशा टोपी । कुञ्जर-मनि = गजमुक्ता ।

जहँ-जहँ जाहिँ कुँबर वर दोऊ। तहँ-तहँ चकित चितव सब कोऊ॥
निज निज रुख रामहिं सब देखा। कोउ न जान कछु मरम बिसेखा५६

[रामचरितमानस]

राग केदारा

रामहिं नीके कै निरखि, सुनैनी!
मनसहुँ अगम समुझि यह अवसरु, कत सकुचति पिकबैनी॥
बड़े भाग मख-भूमि प्रगटि भई सीय सुमंगल-ऐनी।
जा कारन लोचन-गोचर भई मूरति सब सुखदैनी॥
कुल-गुरु-तिय के मधुर बचन सुनि जनक-जुवति मति-पैनी।
तुलसी सिथिल देह सुधि-बुधि करि सहज-सनेह-बिषैनी॥६०॥

[गीतावली]

कवित्त

छोनी में के छोनीपति छाजैं जिन्हैं छत्र-छाया
छोनी छोनी छाये छिति आये निमिराजके।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु
बरबे को बोले बयदेही बर काज के॥
बोले बन्दी बिरुद बजाय बर बाजनेऊ,
बाजे बाजे बीर बाहु धुनत समाज के।

५९--तूनीर = तरकस। काँधे = लिये हुए है। जग्य-उपवीत = यज्ञोपवीत, जनेऊ। रंग-अवनि = रंगभूमि; वह भूमि, जहां धनुष-यज्ञ होता था।

६०--सुनैनी = महाराज जनक की पत्नी। पिक = कोयल। ऐनी = स्थली। कुल-गुरु = सतानन्द से आशय है। मति पैनी = कुशाग्र बुद्धिवाली, बड़ीही बुद्धिमती।

६१--छोनी = पृथ्वी। छोनीपति = राजा। छाजै = शोभा देती है। निमिराज = निमि-वंशी महाराज जनक। बरिबंड = प्रतापी, वीर्यवान्। बयदेही = विदेह-पुत्री, सीता। विरुद = वंश-परंपरा का यश। बाजे-बाजे = कोई-कोई।

तुलसी मुदित मन पुर-नर-नारि जेते,
बार-बार हेरैं मुख औध-मृगराज के ॥ ६१ ॥

[कवितावली]

मंगल छंद

राजत राजसमाज जुगल रघुकुल-मनि ।
मनहु सरद्-बिधु उभय, नखत धरनी-धनि ॥
काकपच्छ सिर, सुभग सरोरुह-लोचन ।
गौर स्याम सत-कोटि-काम-मद-मोचन ॥
तिलक ललित सर, भ्रकुटी काम-कमानै ।
स्रवन बिभूषन रुचिर देखि मन मानै ॥
नासा, चिबुक, कपोल, अधर, रद सुन्दर ।
बदन सरद-बिधु-निंदक सहज मनोहर ॥
उर बिसाल बृष-कंध सुभग भुज अति बल ।
पीत बसन उपवीत, कंठ मुकुताफल ॥
कटि निषंग, कर-कमलन्हि, धरे धनुसायक ।
सकल अंग मनमोहन, जोहनलायक ॥
राम-लखन-छबि देखि मगन भए पुरजन ।
उर आनँद, जल लोचन, प्रेम-पुलक तन ॥
नारि परसपर कहहिं देखि दुहुँ भाइन्ह ।
लहेउ जनम-फल आजु जनमि जग आइन्ह ॥ ६२ ॥

[जानकी-मंगल]

६२--धरनी-धनि = राजा । रद = दाँत । बिधु = चन्द्रमा । वृष = बैल । निषंग = तरकस । जोहनलायक = देखनेयोग्य ।

दोहा

जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बोलाइ ।
चतुर सखी सुन्दर सकल, सादर चलीं लेवाइ ॥ ६३ ॥

चौपाई

सिय-सोभा नहिं जाइ बखानी । जगदंबिका रूप-गुन-खानी ॥
सीय बरनि तेहि उपमा देई । कुकवि कहाइ अजस को लेई ॥
जो पटतरिय तीय महँ सीया । जग अस जुवति कहाँ कमनीया ॥
जो छबि-सुधा-पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छप सोई ॥
सोभा-रज्जु मंदरु-सिंगारू । मथइ पानि-पंकज निज मारू ॥

दोहा

एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता-सुख-मूल ।
तदपि सकोच-समेत कबि, कहहिं सीय सम तूल ॥ ६४ ॥

चौपाई

रंगभूमि जब सिय पगुधारी । देखि रूप मोहे नर नारी ॥
पानि-सरोज सोह जयमाला । अवचट चितये सकल भुआला ॥
सीय चकित चित रामहिं चाहा । भये मोहबस सब नरनाहा ॥
मुनि-समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन-निधि पाई ॥

दोहा

गुरु-जन-लाज समाज बड़, देखि सीय सकुचानि ।
लगी बिलोकन सखिन्ह तन, रघुबीरहिं उर आनि ॥ ६५ ॥

× × × ×

६४--पटतरिय = उपमा दें । कमनीया = सुन्दरी । पयोनिधि = समुद्र । रज्जु = रस्सी । मंदरु = एक बड़ा पर्वत, जिसकी, क्षीरसागर के मथते समय, मथानी बनाई गई थी । मारू = कामदेव । लच्छि = लक्ष्मी । तूल = तुल्य, बराबर ।

६५--अवचट = अचक्के में, चकपकाकर । सखिन्ह तन = सखियों की ओर ।

चौपाई

तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही॥
मनही मन मनाव अकुलानी। होउ प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सुफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप-गरुआई॥
नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितु-पनु सुमिरि बहुरि मन छोभा॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा॥
बिधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा। सिरिस-सुमन कत बेधिय हीरा॥
अति परिताप सीय-मनमाहीं। लवनिमेष जुग सय सम जाहीं॥

दोहा

प्रभुहिं चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज-मीन जुग, जनु बिधु-मंडल डोल॥ ६६॥

चौपाई

गिरा-अलिनि मुख-पंकज रोकी। प्रगट न लाज-निसा अवलोकी॥
लोचन-जलु रह लोचन-कोना। जैसे परम कृपनकर सोना॥
सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीति उर आनी॥
तन मन बचन मोर पनु साँचा। रघुपति-पद-सरोज चितु राचा॥
तौ भगवान सकल-उर-बासी। करिहहिं मोहि रघुबर कै दासी॥
जेहि कै जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

दोहा

राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी बिकल बिसेखि॥ ६७॥

६६--भवानी=पार्वती से आशय है। पनु=प्रतिज्ञा। छोभा=क्षुब्ध हुआ। चाहि=बढ़कर। गात=अंग। सिरिष=शीर्ष पुष्प, जो अत्यन्त कोमल होता है। पारिताप=दु:ख। सय=सौ। लोल=चंचल। मनसिज=कामदेव।

६७--गिरा-अलिनि=वाणी-रूपी भ्रमरी। लोचन-जलु=आँसू। राचा=रँगा है, अनुरक्त है। कृपायतन=कृपा के स्थान, अत्यन्त कृपालु।

चौपाई

देखी विपुल बिकल वैदेही । निमिष बिहात कलप सम तेही ॥
गुरुहि प्रनाम मनहिं मन कीन्हा । अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े ॥
तेहि छुन राम मध्य धनु तोरा । भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ॥
प्रभु दोउ चाप-खंड महि डारे । देखि लोग सब भये सुखारे ॥
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा । प्रभुहिं प्रसंसहिं देहिं असीसा ॥
बरसहिं सुमन रंग बहु माला । गावहिं किन्नर गीत रसाला ॥६८॥

[रामचारितमानस]

राग मलार

जब दोउ दसरथ-कुँवर विलोके ।
जनक नगर-नर-नारि मुदित मन निरखि नयन-पल रोके ॥
बय किसोर घन-तड़ित-बरन-तनु नखसिख अंग लोभारे ।
दै चित, कै हित, लै सब छबि-बित बिधि निज हाथ सँवारे ॥
संकट नृपहिं, सोच अति सीतहिं, भूप सकुचि सिर नाए ।
उठे राम रघुकुल-कल-केहरि गुरु-अनुसासन पाए ॥
कौतुक ही कोदंड खंडि प्रभु, जय अरु जानकि पाई ।
तुलसिदास कीरति रघुपति की मुनिन्ह तिहूँपुर गाई ॥ ६६ ॥

६८-विपुल = वहुत । बिहात = बीतता है । लाघव = फुरती । गाढ़े = जोर से । चाप-खंड = धनुष के टुकड़े । किन्नर = गन्धर्व की एक जाति । रसाल = मधुर ।

६९ = नयन-पल रोके = टक लगाकर देखने लगे । ताड़ित = विजली; लक्ष्मण के शरीर से उपमा दी गई है । हित = प्रेम । कोदंड = धनुष ।

राग सारँग

राम काम-रिपु-चाप चढ़ायो ।
मुनिहिं पुलक, आनंद नगर, नभ निरखि निसान बजायो ॥
जेहि पिनाक बिनु नाक किये नृप, सबहि बिषाद बढ़ायो ।
सोइ प्रभु-कर-परसत टूट्यो जनु हुतो पुरारि-पढ़ायो ॥
पहिराई जयमाल जानकी जुवतिन्ह मंगल गायो ।
तुलसी सुमन बरषि हरषे सुर, सुजस तिहूँ पुर छायो ॥७०॥

[गीतावली]

कवित्त

सीय के स्वयम्बर समाज जहाँ राजन को,
राजनिके राजा महाराजा जानै नाम को ?
पवन, पुरंदर, कृसानु, भानु, धनद से,
गुन के निधान रूपधाम सोम काम को ?
बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर
जिन्हके गुमान सदा सालिम संग्राम को ।
तहाँ दसरत्थ के समर्थ नाथ तुलसी के
चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा-ललाम को ॥ ७१ ॥

[कवितावली]

७०--काम-रिपु = शिवजी । निसान = दुंदुभी । पिनाक = धनुष । बिनु नाक किये = तिरस्कृत कर दिया । पुरारि = शिवजी ।

७१--पुरंदर = इन्द्र । कृसानु = अग्नि । सोम = चन्द्रमा । बान = राजा बलि का पुत्र बाणासुर । जातुधानप = राक्षसों का राजा, रावण से तात्पर्य है । सालिम = द्रढ, अचल । चपरि = शीघ्रता से । चन्द्रमा-ललाम = शिवजी ।

मंगल छंद

राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि-तकि मयन सुधारत सायक॥
प्रेम प्रमोद परसपर प्रगटत गोपहिं।
जनु हिरदय गुन-ग्राम-थूनि थिर रोपहिं॥
राम सीय बय, समौ, सुभाय सुहावन।
नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन॥
सो छबि जाइ न बरनि, देखि मन मानै।
सुधा-पान करि मूक कि स्वाद बखानै॥
कहि न सकति कछु सकुचनि, सिय हिय सोचइ।
गौरि गनेस गिरीसहिं सुमिरि सकोचइ॥
प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ।
जनु मृगराज-किसोर महा गज गंजेउ॥ ७२॥

[जानकी-मंगल]

चौपाई

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छबि-गन-मध्य महाछबि जैसी॥
कर-सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व-बिजय सोभा जनु छाई॥
तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू॥
जाइ समीप राम-छबि देखी। रहि जनु कुँवरि चित्र-अवरेखी॥
चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥

७२—तन = ओर। मयन = कामदेव। गोपहिं = छिपाते हैं। मूक = गूँगा। गिरीश = शिवजी। गंजेउ = मारा।

७३—चित्र-अवरेखी = चित्रांकित, चित्र-लिखी, निस्तब्ध।

सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम-बिबस पहिराइ न जाई॥
सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम-उर मेली ७३

[रामचरितमानस]

राग टोड़ी

जयमाल जानकी जलज-कर लई है।
सुमन सुमंगल सगुन की बनाइ मंजु
मानहुँ मदन-माली आपु निरमई है॥
राज-रुख लखि गुरु भूसुर सुआसनिन्हि
समय समाज की ठवनि भली ठई है।
चलीं गान करत, निसान बाजे गहगहे,
लहलहे लोचन सनेह सरसई है॥
हनि देव दुंदुभी हरषि बरषत फूल,
सफल मनोरथ भो, सुख सुचितई है।
पुरजन परिजन रानी राउ प्रमुदित,
मनसा अनूप राम-रूप-रंग-रई है॥
सतानंद सिष सुनि पाँय परि पहिराई
माल सिय पिय-हिय, सोहत सो भई है।

मेली = पहनाई। सनाला = डंठल सहित।

७४–मंजु = सुंदर। निरमई है = बनाई है। रुख = संकेत, इच्छा। भूसुर = ब्राह्मण। गहगहे = खूब ज़ोर से, आनंद के बाजों की ध्वनि सहित। लहलहे = प्रेमयुक्त, प्रसन्न, हरेभरे। लोयन = नेत्र। रई = रँगी। सतानंद = जनकजी के पुरोहित।

मानस तें निकसि बिसाल सुतमाल पर,
मानहुँ मराल-पाँति बैठी बान गई है ॥
हितनि के लाह की, उछाह की, बिनोद मोद,
सोभा की अवधि नहिं, अब अधिकई है ।
यातें बिपरीत अनहितन की जानि लीबी,
गति, कहे प्रगट खुनिस खासी खई है ।
निज निज बेद की सप्रेम जोग-छेम-मई,
मुदित असीस बिप्र बिदुषनि दई है ।
छबि तेहि काल की कृपालु सीता-दूलह की,
हुलसति हिये तुलसी के नित नई है ॥ ७४ ॥

[गीतावली]

कवित्त

दूब दधि रोचना कनकथार भरि-भरि,
आरती सँवारि बर नारि चलीं गावतीं ।
लीन्हें जयमाल करकंज सोहैं जानकी के,
" पहिरावो राघौजू को " सखियाँ सिखावतीं ॥
तुलसी मुदित मन जनक-नगर-जन,
झाँकतीं झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं ।
मनहुँ चकोरीं चारु बैठीं निज-निज नीड़,
चंद की किरन पीवैं, पलकैं न लावतीं ॥ ७५ ॥

[कवितावली]

मराल = हंस । लाह = लाभ । अवधि = सीमा । जानि लीबी = जान लेना ।
खई = झगडा, लडाई । विदुषनि = विद्वानों ने ।

७५—रोचना = रोली । नीड = घोंसला । पलकैं न लावतीं = टक लगाकर
देख रही हैं ।

मंगल छंद

कर-कमलनि जयमाल जानकी सोहइ।
बरनि सकै छबि अतुलित अस कबि को हइ ?
सीय सनेह-सकुच-बस पियतन हेरइ।
सुरतरु-रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ॥
लसत ललित कर-कमल माल पहिरावत।
कामफंद जनु चंदहिं बनज फँदावत॥
प्रभुहिं माल पहिराइ जानकिहि लै चली।
सखी मनहुँ बिधु-उदय मुदित कैरव-कली॥७६॥

[जानकी-मंगल]

राग सोरठ

जबतें लै मुनि संग सिधाए।
राम-लषन के समाचार सखि! तब त कछुअ न पाए॥
बिनु पानहीं गमन, फल भोजन, भूमि सयन, तरु छाहीं।
सर-सरिता-जल-पान, सिसुन के संग सुसेवक नाहीं॥
कौसिक परम कृपालु परम हित, समरथ, सुखद, सुचाली।
बालक सुठि सुकुमार सकोची, समुझि सोच मोहिं, आली!॥
बचन सप्रेम सुमित्रा के सुनि सब सनेह-बस रानी।
तुलसी आइ भरत तेहि औसर कही सुमंगल बानी॥ ७७॥

[गीतावली]

७६—अतुलित = अनुपम। बनज = कमल। कैरव = कुमोदिनी।

७७—मुनि = विश्वामित्र से तात्पर्य है। कछुअ = कुछ भी। पानहीं = जूती। कौसिक = विश्वामित्र। सुचाली = सच्चरित्र। आली = सखी।

चौपाई

कुँवर कुँवरिं कल भावँरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं ॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी ॥
राम सीय सुन्दर परिछाहीं। जगमगाति मनि-खंभन्ह माहीं ॥
मनहुँ मदन-रति धरि बहु रूपा। देखत राम-बिबाहु अनूपा ॥
दरस-लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी ॥
भये मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे ॥
प्रमुदित मुनिन्ह भावँरी फेरी। नेग सहित सब रीति निबेरी ॥
जसि रघुबीर ब्याह-बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहि करनी ॥७८॥

× × × × ×

दोहा

पुनि पुनि रामहिं चितव सिय सकुचित मन सकुचै न।
हरत मनोहर-मीन-छबि प्रेम-पियासे नैन ॥७९॥

चौपाई

स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि-मनोज-लजावन ॥
जावक-जुत पद कमल सुहाये। मुनि-मन-मधुप रहत जिन्ह छाये ॥
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बाल-रवि-दामिनि-जोती ॥
कल किंकिनि कटिसूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर ॥
पीत जनेउ महाछबि देई। कर-मुद्रिका चोरि चित लेई ॥
सोहत ब्याह-साज सब साजे। उर-आयत भूषन बहु राजे ॥

७८--जोरी = जोड़ी। रति = कामदेव की स्त्री। दुरत = छिपते हैं। नेग = रीति, रस्म। निबेरी = पूरी की।

८०—मनोज = कामदेव। जावक = महावर। मधुप = भौंरा। जोती = ज्योति, छवि। किंकिनि = करधनी। मुद्रिका = अँगूठी। आयत = चौडा, बड़ा। पियर = पीला।

पियर उपरना काँखा-सोती । दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती ॥
नयन-कमल कल कुण्डल काना । बदन सकल सौन्दर्ज-निधाना ॥
सुन्दर भ्रकुटि मनोहर नासा । भाल तिलकु रुचिरता-निवासा ॥
सोहत मौरु मनोहर माथे । मंगलमय मुकुतामनि गाथे ॥ ८० ॥

[रामचरितमानस]

राग केदारा

राजति राम-जानकी-जोरी ।
स्याम-सरोज जलद-सुन्दर बर, दुलहिनि तड़ित-बरन-तनु गोरी ॥
ब्याह-समय सोहति बितान तर, उपमा कहुँ न लहति मति मोरी ।
मनहुँ मदन-मंजुल-मंडप महँ छबि सिंगार सोभा इक ठौरी ॥
मंगलमय दोउ, अंग मनोहर, ग्रथित चूनरी-पीत-पिछौरी ।
कनक-कलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भई भोरी ॥
इत बसिष्ठ मुनि उतहिं सतानँद, बंस-बखान करैं दोउ ओरी ।
इत अवधेस उतहिं मिथिलापति, भरत अंक सुख-सिंधु-हिलोरी ॥
मुदित जनक, रनिवास रहस-बस, चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी ।
गान निसान बेद-धुनि सुनि सुर बरषत सुमन, हरष कहै को री ? ॥
नयनन को फल पाइ प्रेमबस सकल असीसत ईस निहोरी ।
तुलसी जेहि आनन्द-मगन मन क्यों रसना बरनै सुख सो री ॥ ८१ ॥

[गीतावली]

उपरना = दुपट्टा । काँखासोती = कंधे से कांखतक । रुचिरता = शोभा । गाथे = गुँथे हुए, टँके हुए ।

८१—जोरी = जोडी । ताडित-बरन-तनु = बिजली-जैसे रँग का शरीर । बितान = मंडप । छबि-सिंगार = सीताजी साक्षात् छवि हैं, और रामजी साक्षात् शृंगार हैं। ग्रथित = गाँठ लगी हुई है, गठजोडा किया गया है। भोरी = भोली; मौन। रहस = आनंद । ईस = शिवजी । निहोरी = विनय करके । रसना = जीभ; वाणी ।

सवैया

दूलह श्रीरघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही, पल टारति नाहीं॥८२॥

[कवितावली]

मंगल छन्द

दूलह दुलहिनिन्ह देखि नारि-नर हरषहिं।
छिनु-छिनु गान निसान सुमन सुर बरषहिं॥
अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ।
कन्यादान-विधान संकलप कीन्हेउ॥
संकलिप सिय रामहिं समर्पी सील-सुख-सोभा-मई।
जिमि शंकरहि गिरिराज गिरिजा, हरि हि श्री सागर दई॥
सिंदूर बंदन होम लावा होन लागीं भाँवरी।
सिल पोहनी करि मोहिनी मन हर्‌यौ मूरति साँवरी॥
यहि विधि भयो बिबाह, उछाह तिहूँपुर।
देहिं असीस मुनीस सुमन बरषहिं सुर॥८३॥

[जानकी-मंगल]

दोहा

कनक-थार भरि मंगलन्हि, कमल-करन लिये मातु।
चलीं मुदित परिछन करन, पुलक-पल्लवित गातु॥८४॥

८२—जुवा = ऋचा, मंत्र। नग = रत्न, मणि। पल = आँख का पलक।

८३—कुसोदक = कुश और जल। गिरिराज = हिमांचल-राज। श्री = लक्ष्मी। बंदन = रोली। सिलपोहनी = व्याह का एक नेग।

होहिं सगुन, बरषहिं सुमन, सुर दुन्दुभी बजाइ ।
बिबुध-बधू नाचहिं मुदित, मंजुल मंगल गाइ ॥ ८५ ॥
एहि विधि सबहीं देत सुख, आये राज-दुआर ।
मुदित मातु परिछन करहिं, बधुन्ह समेत कुमार ॥ ८६ ॥
निगम-नीति कुल-रीति करि अरघ पाँवड़े देत ।
बन्धुन्ह सहित सुत परिछि सब, चलीं लेवाइ निकेत ॥ ८७ ॥
एहि सुखतें सत-कोटि-गुन, पावहिं मातु अनंदु ।
भाइन्ह सहित बिआहि घर, आये रघुकुल-चंदु ॥ ८८ ॥
लोकरीति जननी करहिं बर-दुलहिनि सकुचाहिं ।
मोद-बिनोद बिलोकि बड़ राम मनहिं मुसुकाहिं ॥ ८९ ॥
बन्धुन्ह समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीस ।
पुनि-पुनि बन्दत गुरुचरन, देत असीस मुनीस ॥ ९० ॥
मंगल मोद उछाह नित, जाहिं दिवस एहि भाँति ।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति ॥ ९१ ॥

छंद

निज-गिरा-पावनि-करन कारन राम-जस तुलसी कहेउ ।
रघुबीर-चरित-अपार-वारिधि-पार कबि कौने लहेउ ॥
उपवीत-ब्याह-उछाह-मंगल सुनि जे सादर गावहीं ।
वैदेहि-राम-प्रसाद तें जन सर्वदा सुख पावहीं ॥ ९२ ॥

[रामचरितमानस]

८५—बिबुध-वधू = देवाङ्गना, अप्सरा ।

८७—निगम = वेद । परिछि = परछन करके । निकेत = घर; राजमंदिर ।

९२—गिरा = वाणी । वारिधि = समुद्र । उपवीत = यज्ञोपवीत-संस्कार । वैदेही = सीता
प्रसाद = कृपा । सर्वदा = सदा ।

राग कान्हरा

मुदित मन आरती करै माता।
कनक, बसन, मनि, वारि-वारि करि पुलक प्रफुल्लित गाता॥
पाँलागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत-साता।
देहिं असीस 'ते बरिस कोटि लगि अचल होउ अहिवाता'॥
राम-सीय-छबि देखि जुवति-जन करहिं परस्पर बाता।
अब जान्यो साँचहुँ सुनहु, सखि! कोविद बड़ो बिधाता॥
मंगल-गान निसान नगर नभ, आनँद कह्यौ न जाता।
चिरजीवहु अवधेस-सुवन सब तुलसिदास-सुखदाता॥ ९३॥

[गीतावली]

दोहा

साजि सुमंगल-आरती, रहस बिवस रनिवासु।
मुदित मातु परिछन चलीं, उमगत हृदय हुलासु॥ ९४॥
करहिं निछावरि आरती, उमँग-उमँगि अनुराग।
बर दुलहिनि अनुरूप लखि, सखी सराहहिं भाग॥ ९५॥
मुदित नगर-नर-नारि सब, सगुन सुमंगल-मूल।
जय धुनि मुनि, सुर दुंदुभी बाजहिं, बरषहिं फूल॥ ९६॥

[रामाज्ञा-प्रश्न]

९३—वारि-वारि करि = निछावर कर-कर। बरिस = वर्ष। अहिवात = सौभाग्य। कोविद = पंडित, चतुर। निसान = नगाड़ा; आनंद-वाद्य। नभ = स्वर्ग। चिर-जीवहु = अनन्तकाल पर्यन्त जीवित रहो।

९४—रहस = आनंद। हुलास = उल्लास, उमंग।

मंगल छंद

बिकसहिं कुमुद जिमि देखि बिधु भई अवध सुख-सोभा-मई।
एहि जुगुति राम बिबाह गावहिं सकल कवि कीरति नई॥
उपवीत-ब्याह-उछाह जे सिय-राम-मंगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर-नारि अनुदिन पावहीं॥ ९७॥

[जानकी-मंगल]

बरवा

गरब करहु रघुनंदन! जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह॥
उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनीदे नैन॥ ९८॥

[बरवा रामायण]

अयोध्याकाण्ड

दोहा

श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज, निज मनु-मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जसु, जो दायक फल चारि॥ १॥

४७—बिकसहिं=खिलती हैं। कुमुद=कुईं का फूल। बिधु=चंद्रमा। जुगुति=युक्ति। उछाह=उत्साह, उत्सव। अनुदिन=नित्य।

४८—उनीदे=नींद भरे, आलस्ययुक्त।

१—मुकुर=दर्पण।

दोहा

साँझ समय सानंद नृप, गयउ कैकई-गेह।
गवनु निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥ २ ॥

चौपाई

कोप-भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयबस अगहुड़ परइ न पाऊ ॥
सभय नरेस प्रिया पहिं गयऊ। देखि दसा दुख दारुन भयऊ ॥
भूमि सयन, पट मोट पुराना। दिये डारि तन भूषन नाना ॥
जाइ निकट नृप कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥
अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केहि दुइ सिर, केहि जम चह लीन्हा ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मन तव आनन-चंद-चकोरू ॥
जौं कछु कहउँ कपट करि तोही। भामिनि राम-सपथ-सत मोही ॥
बिहँसि माँगु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनंद-बधावा ॥
रामहिं देउँ कालि जुवराजू। सजहि सुलोचनि मंगलसाजू ॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥
कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुहँ मोरी ॥

दोहा

माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेइ पावत संदेहु ॥ ३ ॥

३—अगहुड़ = आगे। पाऊ = पैर। बरोरु = सुंदर जंघावाली। गाता = अंग। भामिनि = स्त्री। सुलोचनि = सुंदर नेत्रवाली। बरतोरु = बालतोड़, फोड़ा। पाक = पका हुआ।

चौपाई

सुनहु प्रानप्रिय भावत जीका। देहु एक बर भरतहि टीका॥
माँगउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी॥
सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू। ससि-कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथ-सुरतरु-फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥
बोलेउ राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥
मोरे भरत राम दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकर साखी॥
सुदिन सोधि सब साजु सजाई। देउँ भरत कहँ राजु बजाई॥

दोहा

लोभु न रामहिं राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृप-नीति॥ ४॥
प्रिया, हास परिहरहि बर, माँगि बिचारि बिबेकु।
जेहि देखउँ अब नयन भरि, भरत-राजु-अभिषेकु॥ ५॥

चौपाई

जिअइ मीन बरु बारि-बिहीना। मनि बिनु फनिक जिअइ दुखदीना॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥
कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया॥

४—भावत = अभीष्ट। टीका = राज्याभिषेक। उदासी = विरक्त। ससि-कर = चन्द्रमा की किरण। कोकू = कोक, चकवा। बिबरन = रंग बदल गया। करिनि = हथिनी। साखी = गवाह। बजाई = धूमधाम के साथ, उजागर करके।

६—बरु = चाहे। बारि-बिहीना = बिना पानी के। फनिक = साँप। राउरि = आपकी।

देहु कि लेहु अजस करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष-तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप-पहार प्रगट भई सोई । भरी क्रोध-जल जाइ न जोई ॥
दोउ वर-कूल कठिन-हठ-धारा । भवँर कूबरी-बचन-प्रचारा ॥
ढाहत भूप-रूप तरु-मूला । चली बिपति-बारिधि अनुकूला ॥
लखी नरेस बात सब साँची । तिय-मिसु मीच सीस पर नाची ॥
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी । जनि दिनकर-कुल होसि कुठारी ॥
तोर कलंक मोर पछिताऊ । मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन ओट बैठि मुँह गोई ॥
फिर पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नाहरू लागी ॥

दोहा

परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदानु ।
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसान ॥ ६ ॥

× × × × ×

चौपाई

रघुकुल-तिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातु-पद नायउ माथा ॥
बार-बार मुख चूमति माता । नयन-नेह-जल, पुलकित गाता ॥
सादर सुंदर बदन निहारी । बोली मधुर बचन महतारी ॥
कहहु तात जननी बलिहारी । कबहिं लगन मुद-मंगल-कारी ॥

प्रपंच = छल-कपट की बात । तरंगिनि = नदी । जाइ न जोई = देखी नहीं जाती । कूल = किनारा । भवँर = आवर्त्त । ढाहत = गिराती हुई । अनुकूला = सीधी, प्रसन्न होकर । मीच = मौत । होसि = हो । मुयहु = मरने पर भी । काऊ = कभी । नाहरू = ताँत; शेर का बच्चा । निदानु = अंत ।

७—तिलक = श्रेष्ठ ।

मातु-बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह-सुरतरु के फूला॥
सुख-मकरंद-भरे स्रिय-मूला। निरखि राम मन-भँवर न भूला॥
धरम-धुरीन धरम-गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिता दीन्ह मोहि कानन-राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद-मंगल कानन जाता॥
बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु-उर करके॥
कहि न जाय कछु हृदय-बिखादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि-नादू॥
नयन सजल तन थरथर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु मांपी॥
धरि धीरज सुत-बदन निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु-आयसु सब धरम क टीका॥
जो केवल पितु-आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जो पितु-मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत-अवध-समाना॥
बड़भागी बन, अवध अभागी। जो रघुबंस-तिलक तुम्ह त्यागी॥
जौं सुत कहउँ संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू॥

दोहा

यह बिचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु-कर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ॥ ७॥

(रामचरितमानस)

अनुकूला=कृपायुक्त, स्नेहमय। मकरंद=पराग। स्रियमूला=श्रीयुक्त, सुंदर, कल्याणकारी। धरमधुरीन=धर्म का बोझ संभालने वाले; परम धार्मिक। कानन=वन। काजू=लाभ। केहरि-नादू=सिंह की गर्जना। मांजा=प्रथम वर्षा का फेन जो मछलियों के लिए मादक होता है। माँपी=मतवाली हुई। धरम क=धर्म का। नात=नाता, सम्बन्ध। सुरति=सुधि, स्मरण।

राग सोरठ

राम ! हौं कौन जतन घर रहिहौं ?
बार-बार भरि अंक गोद लै 'ललन' कौन सों कहिहौं ॥
इहि आँगन बिहरत मेरे बारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हे ।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत बहु विनोद तुम्ह कीन्हे ॥
जिन्ह स्त्रवननि कल बचन तिहारे सुनि-सुनि हौं अनुरागी ।
तिन्ह स्त्रवननि बन-गवन सुनति हौं, मोतें कौन अभागी ॥
जुग सम निमिष जाहिं रघुनंदन-बदन-कमल बिनु देखे ।
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ॥
तुलसीदास प्रेम बस श्रीहरि बिकल देखि महतारी ।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि आवन कह्यौ मुरारी ॥ ८ ॥

[गीतावली]

दोहा

कहि प्रिय बचन बिबेकमय, कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन-गुन-दोष ॥ ९ ॥

चौपाई

राज-कुमारि ! सिखावन सुनहू । आनि भाँति जिय जनि कछु गुनहू ॥
आपन मोर नीक जो चहहू । बचन हमार मानि गृह रहहू ॥

८—बारे = छोटे से बालक । कल = सुंदर, मधुर । निमिष = पल । गदगद कंठ = करुणा और प्रेम से भरा हुआ गला । मुरारी = मुर दैत्य को मारनेवाले विष्णु; यहां श्रीरामजी से आशय है ।

९—परितोष कीन्ह = सांत्वना दी, समझाया । प्रबोधन लगे = समझाने लगे ।

१०—गुनहू = समझना, विचार करना । नीक = भला ।

आयसु मोर सासु-सेवकाई । सब बिधि भामिनि, भवन भलाई॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी । होइहि प्रेम-बिकल मति-भोरी ॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुंदरि, समुझायेहु मृदु बानी ॥
कहउँ सुभाव सपथ सत मोही । सुमुखि, मातु हित राखउँ तोही ॥
जो हठ करहु प्रेमबस बामा । तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा ॥
हंसगवनि ! तुम्ह नहिं बन-जोगू । सुनि अपजसु मोहि देइहिं लोगू ॥
मानस-सलिल-सुधा-प्रतिपाली । जिअइ कि लवन-पयोधि मराली ॥
नव-रसाल-बन-बिहरन-सीला । सोह कि कोकिल बिपिन-करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय विचारी । चंदबदनि ! दुख कानन भारी ॥
सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के । लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसे । चकइहि सरद-चंद-निसि जैसे ॥
बरबस रोकि बिलोचन-बारी । धरि धीरज उर अवनि-कुमारी ॥
लागि सासु-पग कह कर जोरी । छमबि देवि बड़ि अविनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहिं सिख सोई । जेहि विधि मोर परम हित होई ॥
मै पुनि समुझि दीखि मन माहीं । पिय-बियोग सम दुख जग नाहीं ॥

दोहा

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरक-समान ॥ १० ॥

सपथ = सौगंद । बामा = स्त्री । परिनामा=अंत में । मानस = मानसरोवर । लवन-पयोधि = खारा समुद्र । मराली = हंसिनी । रसाल = आम । करील = टेंटी का पेड जो व्रजप्रान्त में अधिकतर होता है । सिख = शिक्षा, उपदेश । बिलोचन-बारी = आँसू । अवनिकुमारी = पृथ्वी की पुत्री सीताजी । कुमुद = कुईका फूल ।

चौपाई

प्राणनाथ तुम्ह बिनु जगमाहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद-बिमल-बिधु-बदन निहारे ॥
कुस किसलय साथरी सुहाई । प्रभु सँग मंजु मनोज-तुराई ॥
कंदमूल फल अमिय अहारू । अवध-सौध-सत-सरिस पहारू ॥
छिनु-छिनु प्रभु-पद-कमल बिलोकी । रहिहउँमुदितदिवसजिमिकोकी ॥
अस जिय जानि सुजान-सिरोमनि । लेइअ संग मोहिं छाड़िअ जनि ॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु-छिनु चरन-सरोजनिहारी ॥
सबहिं भांति पिय-सेवा करिहऊँ । मारग जनित सकल स्रमहरिहऊँ ॥
पांय पखारि बैठि तरु छाहीं । करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ॥
स्रमकन सहित स्याम तनु देखे । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे ॥
सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार-बार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताति बयारि न मोही ॥

दोहा

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान ।
तौ प्रभु बिषम बियोग-दुख, सहिहहिं पाँवर प्रान ॥ ११ ॥

चौपाई

अस कहि सीय बिकल भई भारी । बचन-बियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपालु भानु-कुल-नाथा । परिहरि सोच चलहु बन साथा॥

११—बिधु = चन्द्रमा । किसलय = पत्ता । साथरी = शैया । तुराई = तोशक । अमिय = अमृत । सौध = शुभ्र प्रासाद, राजमहल । कोकी = चकवी । बाउ = वायु । स्रमकन = पसीने की बूँदें । डासी = बिछाकर । ताति बयारि = गरम हवा । बिलगान = फट गया, टूक-टूक हो गया । पाँवर = पापी ।

१२—परिहरि = छोड़कर ।

नहिं बिषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु-बन-गवन-समाजू १२

[रामचरितमानस]

राग बिलावल

रहहु भवन हमरे कहे कामिनि !
सादर सासु-चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अतिहित गृह-स्वामि नि॥
राजकुमारि कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मृदुपद गजगामिनि।
दुसह बात बरषा, हिम, आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि॥
हौं पुनि पितु-आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि।
तुलसिदास प्रभु-बिरह-बचन सुनि सहि न सकी मुरछित भई भामिनि १३

*   *   *   *   *   *

कृपानिधान सुजान प्रानपति संग बिपिन ह्वै आवोंगी।
गृह तें कोटि-गुनित सुख मारग चलत, नाथ सचु पावोंगी॥
थाके चरन-कमल चापौंगी, स्रम भये बाउ डोलावोंगी।
नयन-चकोरनि मुख-मयंक-छबि सादर पान करावोंगी॥
जो हठि नाथ राखिहौ मो कहँ तौ सँग प्रान पठावोंगी।
तुलसिदास प्रभु-बिनु जीवत रहि क्यों फिरि बदन दिखावोंगी॥१४॥

[गीतावली]

दोहा

समुझि सुमित्रा राम-सिय-रूप-सुसील-सुभाउ।
नृप-सनेह लखि धुनेउ सिर पापिनि दीन्ह कुदाउ॥ १५ ॥

१३—दुसह=कठिनता से सहने योग्य। बात=हवा। हिम=जाड़ा। आतप=धूप। जामिनि=यामिनी, रात। हौं=मैं। दुति-दामिनि=बिजली के समान कांतिवाली। भामिनि=स्त्री।

१४—सचु=सुख, आराम। बाउ=वायु। मयंक=चंद्रमा। बदन=मुख।

१५—धुनेउ=पीटा, पटका।

चौपाई

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम-निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु-प्रकासू॥
जो पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥
राम प्रानप्रिय जीवन-जी के। स्वारथ-रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहि राम के नाते॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन-लाहू॥
तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम-सीय-पद सहज सनेहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करहु सेवकाई॥
तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु राम सिय जासू॥
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

सोरठा

मातु-चरन सिर नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
बागुर विषम तुराइ, मनहुँ भाग मृग भाग-बस॥ १६॥

चौपाई

गये लषन जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाय प्रिय साथू॥
लोग बिकल मुरछित नरनाहू। काह करिय कछु सूझ न काहू॥
राम तुरत मुनि-बेस बनाई। चले जनक जननिहिं सिरु नाई॥

१६—बैदेही = सीताजी। लाहू = लाभ। सुकृत = पुण्य। विकार = विषय। बिहाई = छोड़कर। क्रम = कर्म से। सुपासू = सुख, आराम। बागुर = रस्सी। विषम = कठिन।

१७—नरनाहू = महाराज दसरथ। जनक-जननी = पिता और माता।

दोहा

सजि-बन-साज-समाज सब, बनिता-बंधु-समेत।
बंदि बिप्र-गुरु-चरन प्रभु, चले करि सबहिं अचेत॥ १७॥

[रामचरितमानस]

राग बिलावल

ठाढ़े हैं लषन कमल-कर जोरे।
उर धकधकी, न कहत कछु सकुचनि, प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे॥
कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन, प्रान-कृपान बीर सी छोरे।
तात बिदा माँगिए मातु सों, बनि है बात उपाइ न औरे॥
जाइ चरन गहि आयसु जाँचौ, जननि कहति बहु भाँति निहोरे।
सिय-रघुबर-सेवा सुचि ह्वहौ तौ जानिहौं सही सुत मोरे॥
कीजहु इहै बिचार निरन्तर राम समीप सुकृत नहिं थोरे।
तुलसी सुनि सिष चले चकित-चित, उड़्यो मनु बिहँग बधिक भये भोरे॥१८

[गीतावली]

सवैया

कागर-कीर ज्यों भूषन चीर सरीर लस्यौ तजि नीर ज्यौं काई।
मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई॥

बनिता = स्त्री। अचेत = मूर्च्छित, बेहोश।

१८—तृन तोरे = सब संबंध और नाते तृण के समान तोड़ कर। उपाइ = उपाय। सुकृत = पुण्य, सत्कर्म। सिष = शिक्षा, उपदेश। विहँग = पक्षी। बधिक = बहेलिया।

१९—कागर = पंख। कीर = सुवा। सरीर......काई = जैसे बिना काई के जल निर्मल हो जाता है, वैसेही राजसी वस्त्रादि त्याग देने पर श्रीरामचंद्रजी की कांति और भी दिव्य हो गई। सगाई = सम्बन्ध।

संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिव-लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं ॥१६॥

[कवितावली]

बरवा

राज-भवन सुख बिलसत सिय सँग राम।
बिपिन चले तजि राज, सुबिधि वड़ बाम ॥ २० ॥

[बरवै रामायण]

कवित्त

" कीजै कहा, जीजीजू ! " सुमित्रा परि पाँय कहैं
" तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है।
रावरो सुभाव राम-जन्म ही तें जानियत,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है ॥
जाई राजघर, व्याहि आई राजघर माहिं,
राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहु पर बाहु-बिन राहु गहियतु है ॥ २१ ॥

[कवितावली]

हुते = थे। राजिव = कमल। बटाऊ = राहगीर, पथिक।

२१—जाई = जन्मी, उत्पन्न हुई। बाहु बिनु राहु = कहते हैं कि चंद्र-सूर्य को ग्रसने-वाले राहु के हाथ-पैर नहीं हैं, वह केवल मस्तक मात्र हैं; एकही दैत्य के मुंड को राहु और रुंड को केतु कहते हैं। सुधागेह = (१) चंद्रमा (२) कहते हैं कि कैकेयी के मुख में अमृत था।

सवैया

पुरतें निकसी रघुबीर-बधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जलकी, पुट सूखि गये मधुराधर वै॥
फिरि बूझति है "चलनो अब, केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै?"
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारुचलीं जलच्वै॥२२॥
जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाहँ घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े॥
तुलसी रघुबीर प्रिया-स्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलक्यौ तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥२३॥

[कवितावली]

चौपाई

माँगी नाव, न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।
चरन-कमल-रज कहँ सब कहई। मानुष-करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भई नारि सुहाई। पाहनतें न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
एहि प्रतिपालिउँ सब परिवारू। नहिं जानिउँ कछु और कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद-पदुम पखारन कहहू॥
कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोई करु जेहि तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंब, उतारहि पारू॥

२२—डग = कदम। कनी जल की = पसीने की बूँदें। केतिक = कितना। पर्न-कुटी = पत्तों की झोपड़ी। जल च्वै चलीं = आँसू बहाने लगीं।

२३—पसेउ = प्रस्वेद, पसीना। भूभुरि-डाढ़े = गरम धूल से जले हुए। नाह = नाथ, पति।

२४—केवट = गुह निषाद। मरमु = भेद। मूरि = बूटी। तरनिउँ = नाव भी। मुनि-घरनी = गोतम मुनि की स्त्री अहल्या। कबारू = रोज़गार।

केवट राम-रजायसु पावा । पानि कठवता भरि लेइ आवा ॥
अति आनंद उमगि अनुरागा । चरन-सरोज पखारन लागा ॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं । एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं ॥

दोहा

पद पखारि जल पान करि, आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयउ लेइ पार ॥ २४ ॥
बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय, नहिं कछु केवट लेइ ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमलवर देइ ॥ २५ ॥

सवैया

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू ।
परसे पग-धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ॥
तुलसी अवलम्ब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू ।
बरु मारिये मोहिं, बिना पग धोये हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥२६॥

कवित्त

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू बेद ना पढ़ाइहौं ।
सब परिवार मेरो याहि लागि राजा जू,
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ॥
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वैकै वाद न बढ़ाइहौं ।
तुलसी के ईस राम रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोये नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥ २७ ॥

रजायसु = आज्ञा। कठवता = काठ का एक चौड़ा वर्तन। सिहाहीं = प्रशंसा करते हैं।
२६—तरनी = नाव । घरनी = स्त्री । बरु = चाहे ।
२७—पातभरी सहरी = पत्तल भर मछली (अजीविका है)। बारे बारे = छोटे-छोटे।
वित्तहीन = निर्धन । ईश = स्वामी । रावरे सों = आप से; आपकी सौगंद है।

प्रभु-रुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहिं
बंदिकै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को,
धोइ पाँय पीयत पुनीत बारि फेरि-फेरि॥
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय-जय कहैं टेरि-टेरि।
बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनी,
हँसे राघौ जानकी-लषन-तन हेरि-हेरि॥ २८॥

[कवितावली]

———

चौपाई

सीता-लखन-सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नरनारी। चलहिं तुरत गृह-काज बिसारी॥
राम-लषन-सिय-रूप निहारी। पाइ नयन-फल होहिं सुखारी॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुर-मनि-ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन-लाहु लेहु छन एहीं॥
मुदित नारि-नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मन लोभा॥
तरुन-तमाल-बरन-तनु सोहा। देखत कोटि-मदन मन मोहा॥
दामिनि-बरन लषन सुठि नीके। नखसिख सुभग भावते जी के॥
मुनि-पट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं कर-कमलनि धनु-तीरा॥

२८—घरनिहिं=स्त्री को। बिबुध=देवता। तन=ओर।
२९—सुर-मनि=चिंतामणि, जिसे पा जाने से समस्त चिंताएँ दूर हो जाती हैं। मदन=कामदेव। सुठि=सुंदर, भलीभांति। भावते=प्यारे। तूनीर=तरकस।

दोहा

जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल ।
सरद-परब-बिधु-बदन बर, लसत स्वेद-कन-जाल ॥ २९ ॥

सीय समीप ग्राम-तिय जाहीं । पूछत अति सनेह सकुचाहीं ॥
बार-बार सब लागहिं पाये । कहहिं बचन मृदु सरल सुभाये ॥
राजकुमारि विनय हम करहीं । तिय-सुभाय कछु पूछत डरहीं ॥
राजकुँवर दोउ सहज सलोने । इन्हतें लहि दुति मरकत सोने ॥
कोटि-मनोज-लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुचि सीय मनमहँ मुसुकानी ॥
तिनहिं बिलोकि बिलोकति धरनी । दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल-मृग-नैनी । बोली मधुर बचन पिकबैनी ॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नाम लषन लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदन-बिधु अंचल ढाँकी । पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि । निजपति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि ॥
भईं मुदित सब ग्राम-बधूटी । रंकन रायरासि जनु लूटी ॥

दोहा

अति सप्रेम सिय-पाय परि, बहु बिधि देहिं असीस ।
सदा सोहागिन होहु तुम्ह, जब लगि महि अहि-सीस ॥३०॥

चौपाई

फिरत नारि नर अति पछिताहीं । दैवहिं दोषु देहिं मनमाहीं ॥

परब = पूर्णिमा । स्वेद-कन = पसीने की बूंदें ।

३० मरकत = नीलम । आहिं = हैं । मंजुल = मधुर । बरबरनी = सुन्दर वर्णवाला ।
पिकबयनी = कोयल के समान मधुर वाणी बोलनेवाली । सैननि = आंख के इशारों से । ग्राम-वधूटी = गाँवकी स्त्रियाँ । रायरासि = राजाओं के धन का ढेर । जब...अहि-सीस = शेषनाग के सिर पर जबतक पृथ्वी है; अनन्त कालपर्यन्त ।

३१-फिरत = लौटते हुए ।

सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि-करतब उलटे सब अहहीं॥
जो पै इनहिं दीन्ह बनवासू। कीन्ह बादि बिधि भोग-बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥
ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुबर-बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवलधाम रचि-रचि स्रम कीन्हा

दोहा

जौं ए मुनि-पट-धर जटिल सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किये करतार॥ ३१॥

चौपाई

जौं ए कन्दमूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जगमाहीं॥
जौं जगदीस इन्हहिं बन दीन्हा। कस न सुमन-मय मारग कीन्हा॥
जौं माँगा पाइय बिधि पाहीं। ए रखिअहि सखि आँखिन्ह माहीं॥
ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये। धन्य सो नगरु जहां तें आये॥
धन्य सो देस सैल बन गाऊँ। जहँ-जहँ जाहिं धन्य सो ठाऊँ॥
राम-लषन-पथि-कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥

दोहा

एहि बिधि रघुकुल-कमल-रबि मग-लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय-सौमित्रि समेत॥ ३२॥

[रामचरितमानस]

बादि = व्यर्थ। पदत्रान = जूता। डासि = बिछाकर। कत = क्यों। सृजत = बनाता है। जटिल = जटाजूटवाले। सुठि = भले। करतार = ब्रह्मा।

३२—असन = भोजन। सैल = पहाड़। ठाऊँ = स्थान। पथि = पथिक, बटोही। कानन = वन। सौमित्रि = लक्ष्मण।

राग बिलावल

तू देखि देखि री ! पथिक परम सुन्दर दोऊ ।
मरकत-कलधौत-बरन, काम-कोटि-कांति-हरन,
चरन-कमल कोमल अति, राजकुवँर कोऊ ॥
कर सर धनु, कटि निषंग, मुनि-पट सोहैं सुभग अंग,
संग चन्द्रबदनि बधू, सुन्दरि सुठि सोऊ ।
तापस बर बेष किये, सोभा सब लूटि लिये,
चित के चोर बय किसोर, लोचन भरि जोऊ ॥
दिनकर-कुल-मनि निहारि प्रेम-मगन ग्राम-नारि
परसपर कहैं, सखि ! अनुराग-ताग-पोऊ ।
तुलसी यह ध्यान-सुधन जानि मानि लाभ सघन,
कृपन ज्यों सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ ॥ ३३ ॥

राग केदारा

माई ! मन के मोहन जोहन-जोग जोही ।
थोरी सी बयस गोरे साँवरे सलोने लोने,
लोयन ललित, बिधु-बदन बटोही ॥
सिरनि जटा-मुकुट मंजुल सुमन-जुत
तैसिये लसति नव-पल्लव-खोही ।
किये मुनि-बेष बीर, धरे धनु, तून, तीर,
सोहैं मग को हैं, लखि परै न मोही ॥

३३-मरकत=नीलम । कलधौत=सोना । कांति=द्युति, छवि । निषंग=तरकस । जोऊ=देखो । अनुराग-ताग पोऊ=प्रेमरूपी धागे में गूँथ लो । कृपन=कंजूस, लोभी । गोऊ=छिपालो ।

३४-जोहन-जोग=देखने-योग्य । लोयन=नेत्र । पल्लव-खोही=पत्तों की छतरी । तून=तरकस ।

सोभा को साँचो सँवारि रूप-जातरूप,
ढारि नारि बिरची बिरंचि, संग सोही।
राजत रुचिर तनु, सुन्दर स्रम के कन
चाहे चकचौंधी लागै, कहौं का तोही॥
सनेह-सिथिल सुनि बचन सकल सिया
चितई अधिक हित सहित ओही।
तुलसी मनहु प्रभु कृपा की मूरति फिरि
हेरिकै हरषि हिये लियो है पोही॥ ३४॥

* * * *

सोहैं साँवरे पथिक, पाछे ललना लोनी।
दामिनि-बरन गोरी, लखि सखि तृन तोरी,
बीती हैं बय किसोरी, जोबन होनी॥
नीके कै निकाई देखि, जनम सफल लेखि,
हम-सी भूरि भागिनि नभ न छोनी,
तुलसी-स्वामी-स्वामिनि जोहे मोही हैं भामिनि,
सोभा-सुधा पिए करि अँखियाँ दोनी॥ ३५॥

* * * *

पथिक गोरे साँवरे सुठि लोने।
संग सुतिय जाके तनु तें लही है दुति सोन सरोरुह सोने॥
बय-किसोर-सरि-पार मनोहर बयस-सिरोमनि होने।

जातरूप = सोना। स्रम के कन = पसीने की बूँदें। सिथिल = अधीर, आतुर। लियो है पोही = गूँथ लिया है।

३५—ललना = स्त्री। लोनी = सुंदरी। निकाई = सुंदरता। भूरि भागिनि = बड़-भागिनी। नभ = स्वर्ग। छोनी = पृथ्वी। दोनी = पत्तों के छोटे-छोटे दोने।

३६—सोन सरोरुह = लाल कमल। वय—किसोर-सरि-पार = किशोरावस्था-रूपी नदी को पार कर के। वयस-सिरोमनि = युवावस्था।

सोभा-सुधा, आलि ! अँचवहु करि नयन-मंजु-मृदु-दोने ॥
हेरत हृदय हरत, नहिं फेरत चारु विलोचन-कोने ।
तुलसी-प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगट कपट विनु टोने ॥ ३६ ॥

राग आसावरी

रीति चलिबे की चाहि, प्रीति पहिचानि कै ।
आपनी-आपनी कहैं प्रेम-परबस अहैं,
मंजु मृदु बचन सनेह-सुधा-सानि कै ॥
साँवरे कुँवर के बराइ कै चरन-चिन्ह,
बधू पग धरति कहा धौं जिय जानि कै ।
जुगल कमल-पद–अंक जोगवत जात
गोरे-गात-कुँवर महिमा महा मानि कै ॥
उनकी कहनि नीकी, रहनि लषन सी की,
तिन की गहनि जे पथिक उर आनि कै ।
लोचन सजल, तन पुलक, मगन मने,
होत भूरिभागी जस तुलसी बखानि कै ॥ ३७ ॥

राग केदारा

आली ! काहू तौ बूझौ न पथिक कहाँ धौं सिधैहैं ।
कहाँ तें आये हैं, को हैं, कहा नाम, स्याम गोरे,
काज कै कुसल फिरि एहि मग ऐहैं ? ॥
उठति बयस, मसि भींजति, सलोने सुठि,

अँचवहु=पान करो । टोना=जादू, मंत्र ।

३७–बराइ कै=बचा कर के । जोगवत जात=देखते जाते हैं । सी=सीताजी । भूरिभागी=बडभागी ।

३८–उठति बयस=किशोरावस्था से युवावस्था में प्रवेश होरहा है । मसि भींजति= ऊपर के होठ पर बालों का कुछ-कुछ कालापन आरहा हैं, मूँछों के बाल निकलनेवाले हैं ।

सोभा-देखवैया बिनु-बित्त ही बिकैहैं।
हिये हेरि हरि लेत लोनी ललना-समेत,
लोयननि लाहु देत जहाँ-जहाँ जैहैं॥
राम-लषन-सिय-पंथि की कथा कलित,
प्रेम-बिथकीं कहति सुमुखि सबै हैं।
तुलसी तिन्ह सरिस तेऊ भूरिभाग जेऊ
सुनि कै सुचित तेहि समै-समैहैं॥ ३८॥

[गीतावली]

कवित्त

आगे सोहै साँवरो कुँवर, गोरो पाछे-पाछे,
आछे मुनि-बेष धरे लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं॥
साथ निसि-नाथ-मुखी पाथ-नाथ-नंदिनी सी,
तुलसी बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।
आनँद-उमंग मन, जोबन-उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत-अंग-अंग हैं॥ ३९॥

सवैया

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि-बेष कियो है॥

देखवैया = देखनेवाले। वित्त = धन, मोल। ललना = स्त्री। लोयननि = आखों को। लाहु = लाभ। पंथि = बटोही। कलित = सुन्दर। प्रेम-बिथकीं = प्रेमाधीर, प्रेमातुर।

३९–बिसिषासन = धनुष। निसिनाथ = चन्द्रमा। पाथनाथ-नंदिनी = समुद्र की पुत्री लक्ष्मी।

४०–मैन = कामदेव।

संग लिये बिधु-बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनहीं न, पयोदेहि क्यों चलि हैं? सकुचात हियो है॥४०॥

*

रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हूँ तें कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे किमि प्रीतम लोग जियो है?
आँखिन में, सखि! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनबास दियो है? ४१

*

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी सी भौहें।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम-बधू सिय सों "कहौ साँवरे से, सखि! रावरे को हैं"४२

*

सुनि सुन्दर बैन सुधा-रस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥ ४३॥

[कवितावली]

बरवा

कोउ कह नर नारायन, हरि-हर कोउ।
कोउ कह बिहरत बन मधु-मनसिज दोउ॥

बिधुबैनी = चन्द्रवदनी। रंचक = लेशमात्र। रति = कामदेव की स्त्री।
४१—पवि = बज्र। काज-अकाज = लाभ-हानि।
४२—बिलोचन = नेत्र। तून = तरकस। सरासन = धनुष। रावरे = तुम्हारे।
४३—अनुराग-तड़ाग = प्रेमरूपी तालाब। बिगसीं = खिली हुई।
४४—मधु = वसंत; लक्ष्मण से तात्पर्य है। मनसिज = कामदेव; राम से तात्पर्य है।

तुलसी भइ मति बिथकित करि अनुमान ।
रामलषन के रूप न देखेउ आन ॥ ४४ ॥
[बरवा रामायण]

चौपाई

देखत बन सर सैल सुहाये । बालमीकि-आस्रम प्रभु आये ॥
राम दीख मुनिबास सुहावन । सुन्दर गिरि कानन जल पावन ॥
सरनि सरोज, बिटप बन फूले । गुञ्जत मंजु मधुप रस-भूले ॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं । बिरहित बैर मुदित मन चरहीं ॥
मुनिकहँ राम दंडवत कीन्हा । आसिरबाद बिप्रबर दीन्हा ॥
देखि राम-छबि नयन जुड़ाने । करि सनमान आस्रमहिं आने ॥
बाल्मीकि-मन आनँद भारी । मंगल-मूरति नयन निहारी ॥
तब कर-कमल जोरि रघुराई । बोले बचन स्रवन-सुखदाई ॥
देखि पाय मुनिराय तुम्हारे । भये सुकृत सब सुफल हमारे ॥
अब जहँ राउर आयसु होई । मुनि उदवेग न पावइ कोई ॥
मुनि तापस जिन्हतें दुख लहहीं । ते नरेस बिनु पावक दहहीं ॥
अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ । सिय-सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ ।
तहँ रचि रुचिर परन-तृन-साला । बास करउँ कछु काल कृपाला ।
सहज सरल सुनि रघुबर-बानी । साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी ।
कस न कहहु अस रघुकुल-केतू । तुम्ह पालक संतत स्रुति-सेतू ।

बिथकित = शिथिल ।

४५-मधुप = भौंरा । रस-भूले = पराग-पान में मत्त । बिपुल = बड़ा । कोलाहल = शोर । बिरहित बैर = शत्रुता छोड़कर । जुडाने = प्रसन्न हुए । उदवेग = कष्ट । तापस = तपस्वी । पावक = आग । सौमित्रि = लक्ष्मण । रुचिर = सुन्दर । परन = पर्ण, पत्ता । साधु साधु = धन्य धन्य । केतू = पताका, श्रेष्ठ संतत = सदा

दोहा

पूछहु मोहि कि रहहुँ कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ ।
जहँ न होहु तहँ देहुँ कहि, तुम्हहिं दिखावउँ ठाउँ ॥ ४५ ॥

चौपाई

जिन्ह के स्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे । तिन्ह के हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस-जल-धर अभिलाखे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी । रूप-बिन्दु-जल होहिं सुखारी ॥
तिहि के हृदय-सदन सुखदायक । बसहु बंधु-सिय-सह रघुनायक ॥

दोहा

जस-मुकुता मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु ।
मुकुताहल गुनगन चुनइ राम बसहु मन तासु ॥ ४६ ॥

चौपाई

प्रभु-प्रसाद-सुचि-सुभग-सुबासा । सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहिं निबेदित भोजन करहीं । प्रभु-प्रसाद पट-भूषन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि विनय बिसेखी ॥
कर नित करहिं राम-पद-पूजा । रामभरोस हृदय नहिं दूजा ॥
चरन राम-तीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन्हके मनमाहीं ॥
मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा ॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना । बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्हतें अधिक गुरुहिं जियजानी । सकल भाय सेवहिं सनमानी ॥

४६—सरि = नदी । रूरे = सुन्दर । चातक = पपीहा । जलधर = मेघ । जस-मुकुता = यशरूपी मोती । जीहा = जीभ, वाणी ।

४७—सुबासा = सुगंध । नासा = नाक । निवादित = अर्पित । राम-तीरथ = अयोध्या, चित्रकूट, दण्डकारण्य आदि तीर्थ । मंत्रराज = 'राम' नाम से आशय है । जेंवाइ = भोजन कराकर । भाय = भाव ।

दोहा

सब करि मांगहिं एकु फल राम-चरन-रति होउ ।
तिन्ह के मन-मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ॥ ४७ ॥

चौपाई

काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥
सब के प्रिय सब के हितकारी । दुख-सुख-सरिस प्रसंसा-गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं
जननी सम जानहिं पर नारी । धन पराव बिष तें बिष भारी ॥
जे हरषहिं परसंपति देखी । दुखित होहिं परबिपति बिसेखी ॥
जिन्हहिं राम तुम प्रानपियारे । तिनके मन सुभ-सदन तुम्हारे ॥

दोहा

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम्ह तात ।
मन-मंदिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥ ४८ ॥

चौपाई

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं । विप्र-धेनु-हित संकट सहहीं ॥
नीति-निपुन जिन्ह कइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्हकर मन नीका ॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम-भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥

रति = प्रीति ।

४८—राग = लगाव । द्रोह = द्वेष । दंभ = पाषंड । सरिस = समान । पराव = पराया । सदन = घर ।

४९—लीका = मर्यादा ।

जाति पाँति धन धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहिं रहइ लउ लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥
सरग नरक अपबरग समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु बाना॥
करम-बचन-मन रावर चेरा। राम करहु तिहि के उर डेरा॥

दोहा

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह॥ ४६॥

चौपाई

एहि विधि मुनिवर भवन दिखाये। बचन सप्रेम राम मन भाये॥
कह मुनि सुनहु भानु-कुल-नायक। आस्रम कहउँ समय सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैल सुहावन कानन चारू। करि-केहरि-मृग-विहँग-विहारू॥
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि-प्रिया निज तप-बल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब-पातक-पोतक-डाकिनि॥
अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल स्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिवरहू॥

लउ = लौ, प्रेम। अपबरग = मोक्ष। डेरा = स्थान, निवास। सहज = स्वाभाविक, निष्काम।

५०—भानु-कुल-नायक = सूर्यवंश में श्रेष्ठ। सुपासू = आराम, सुख। चारू = सुन्दर। करि = हाथी। केहरि = सिंह। अत्रिप्रिया = अनसूया; लिखा है कि अनसूयाजी अपने पति के लिए गंगाजी को 'मन्दाकिनी' के नाम से चित्रकूट में लायी थीं। मंदाकिनी का जल है भी गंगा-जल से मिलता-जुलता। पातकपोतक-डाकिनि = पापरूपी बच्चों को नष्ट करने के लिए चुड़ैल या पूतना। तन कसहीं = शरीर को वश में कर रहे हैं।

दोहा

चित्रकूट-महिमा अमित कही महामुनि गाइ ।
आय नहाये सरित-बर सिय समेत दोउ भाइ ।। ५० ॥

× × × × ×

चौपाई

एहि विधि सिय समेत दोउ भाई । बसहिं विपिन सुर-मुनि सुखदाई॥
जबतें आइ रहे रघुनायक । तबतें भयउ बन मंगल-दायक ॥
फूलहिं फलहिं विटप विधि नाना । मंजु-बलित-बर-बेलि-बिताना ॥
गुंज मंजुतर मधुकर-स्रेनी । त्रिविध बयारि वहइ सुखदेनी ।।
करि केहरि कपि कोल कुरंगा । बिगत बैर बिचरहिं सब संगा ॥
फिरत अहेर राम-छबि देखी । होहिं मुदित मृग-बृन्द बिसेखी ॥
बिबुध बिपिन जहँ लगि जगमाहीं । देखि राम-बन सकल सिहाहीं ॥
सुरसरि सरसइ दिन-कर कन्या । मेकल-सुता गोदावरि धन्या ॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना । मंदाकिनि कर करहिं बखाना ॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू । मंदर-मेरु सकल सुर-बासू ॥
सैल हिमाचल आदिक जेते । चित्रकूट-जसु गावहिं तेते ॥
बिंध्य मुदित मन सुख न समाई । स्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई ।।

दोहा

चित्रकूट के बिहँग मृग बेलि बिटप तृन जाति ।
पुन्यपुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिनराति ।। ५१ ।।

सरितवर = मंदाकिनी ।

५१—बलित = आच्छादित । बितान = मंडप । मधुकर-स्रेनी = भौंरों की पंक्ति । त्रिविध बयारि = शीतल, मन्द और सुगन्ध वायु । कोल = वाराह, शूकर । कुरंग = मृग । अहेर = शिकार । सरसइ = सरस्वती । दिनकर-कन्या = सूर्य-पुत्री यमुना । मेकल-सुता = नर्मदा नदी । उदयाचल, अस्ताचल, कैलाश, मन्दराचल, मेरु, हिमाचल = ये सब पर्वतों के नाम हैं ।

राम लखन सीता सहित सोहत परन-निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर, सची जयंत समेत ॥ ५२ ॥

[रामचरितमानस]

राग चंचरी

चित्रकूट अति विचित्र, सुंदर बन महि पवित्र,
पावनि पय सरित सकल-मल-निकंदिनी।
सानुज जहँ बसत राम, लोक लोचनाभिराम,
बाम अंग बामावर विस्व-बंदिनी ॥
चितवत मुनिवर-चकोर, बैठे निज ठौर ठौर,
अक्षय अकलंक सरद्-चंद चंदिनी।
उदित सदा बन-अकास, मुदित बदत तुलसिदास,
जय जय रघुनंदन जय जनक-नंदिनी ॥ ५३ ॥

राग सारँग

आइ रहे जबतें दोउ भाई।
तबतें चित्रकूट-कानन-छबि दिन-दिन अधिक अधिक अधिकाई ॥
सीता-राम-लषन-पद-अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिविध पाप त्रयताप नसाई ॥
उकठेउ हरित भए जल-थल-रुह, नित नूतन राजीव सुहाई।

परन-निकेत = पर्णकुटी, पत्तों की झोपड़ी। बासव = इन्द्र। सची = इन्द्राणी। जयन्त = इन्द्र का पुत्र।

५३–बामाबर = स्त्रियों में श्रेष्ठ। लोकलोचनाभिराम = संसार भर के नेत्रों को सुंदर लगनेवाले। अक्षय = जिस (चन्द्रमा) की कलाएँ कभी नष्ट नहीं होती हैं। वन-अकास = वन रूपी आकाश।

५४–अंकित = चिह्नित। अवनि = धरती। त्रिविध पाप = मन, वचन और कर्म से किये गये पाप। त्रयताप = भौतिक, दैविक और मानसिक कष्ट। उकठेउ = जड से उखड़े हुए भी। जल-थल-रुह = जल और धरती के पेड।

फूलत फलत पल्लवत पलुहत बिटप बेलि अभिमत-सुखदाई ॥
सरित सरनि सरसीरुह-संकुल सदन सँवारि रमा जनु छाई ।
कूजत बिहँग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥
त्रिविध समीर नीर झर झरननि जहँ-तहँ रहे रिषि कुटी बनाई ।
सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग जप तप मन लाई ॥
भए सब साधु किरात किरातिनि, राम-दरस मिटि गइ कलुषाई ।
खग मृग मुदित एक सँग बिहरत, सहज बिषम बड़ बैर बिहाई ॥
काम-केलि-बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कबि कहत लजाई ।
सकल भुवन सोभा सकेलि मनो राम-बिपिन बिधि आनि बसाई ॥
बन मिस मुनि, मुनितिय, मुनि-बालक बरनत रघुबर-बिमल-बड़ाई ।
पुलक-सिथिल तनु, सजल सुलोचनु प्रमुदित मन जीवन-फलु पाई ॥
क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि-संपति महिमा मोद मनोहरताई ।
तुलसी जहँ बसि लषन राम सिय आनँद-अवधि अवध बिसराई ॥५४॥

[गीतावली]

राग वसंत

सब सोच-बिमोचन चित्रकूट । कलिहरन, करन कल्यान-बूट ।।
सुचि अवनि सुहावनि आलबाल । कानन बिचित्र, बारी बिसाल ।।
मंदाकिनि-मालिनि सदा सींच । बर-बारि बिषम नर नारि नीच॥
साखा, सुसृंग, भूरुह, सुपात । निरझर मधु, बर मृदु मलयबात॥
सुक-पिक-मधुकर-मुनिबर-बिहारु । साधन प्रसून, फलचारि चारु ॥

अभिमत = मनचाहे । सरसीरुह = कमल । संकुल = पूर्ण । कूजत = चहकते हैं । कलुषाई = कालिमा, पाप, कलंक । बिषम = शत्रु । बिबुध-बन = नन्दनबन । सकेलि समेटकर । आनँद अवधि = आनन्द की सीमा, पूर्णानन्द रूपी ।
५५-करन-कल्याण = कल्याणकारी। बूट = पेड। आलबाल = थाला। बारी = वाटिका । सृंग = शृंग, शिखर । भूरुह = पेड । मलय वात = चन्दन-गन्धयुक्त वायु;

भव-घोर-घाम-हर सुखद छाँह । थप्यो थिर प्रभाउ जानकीनाह ।।
साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ । पावत अनेक अभिमत अघाइ ।।
रस एक, रहित-गुन-कर्म-जाल । सिय राम लषन पालक कृपाल ।।
तुलसी जो राम-पद चहिय प्रेम । सेइयगिरि करि निरुपाधिनेम ।।५५।।

[विनय-पत्रिका]

सवैया

प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितुदै, चले लै चित चोरे ।
स्याम सरीर पसेऊ लसै, हुलसै तुलसी छवि सों मन मोरे ॥
लोचन लोल चलैं भृकुटी, कल काम-कमानहु सो तृन तोरे ॥
राजत राम कुरंग के संग, निषंग कसे, धनु सों सर जोरे ।। ५६ ।।

* * * *

बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे ।
गौतम-तीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनि-बृन्द सुखारे ॥
ह्वैहैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज निहारे ।
कीन्हीं भली रघुनायकजू ! करुना करि कानन को पगु धारे ।।५७।।

[कवितावली]

राग सोरठ

जब-जब भवन बिलोकति सूनो ।
तब-तब बिकल होति कौसल्या दिन-दिन प्रति दुख दूनो ॥
सुमिरत बाल-बिनोद राम के सुन्दर मुनि-मन-हारी ।

सुगन्धित वायु । प्रसून = फूल । अभिमत = अभीष्ट । निरुपाधि नेम = निरन्तर नियम, विघ्नबाधा-रहित साधन ।

५६–प्रियाहि = सीताजी को । पसेऊ = पसीना । लोल = चंचल । कुरंग = मृग । निषंग = तरकस ।

५७–उदासी = विरक्त । गौतम-तीय = अहल्या । मंजुल = सुन्दर ।

होत हृदय अति सूल समुझि पद-पंकज अजिर-बिहारी ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो, माई !
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई ॥
जीवौं तौ बिपति सहौं निसिबासर मरौं तौ मन पछितायो ।
चलत बिपिन भरि नयन राम को बदन न देखन पायो ॥
तुलसिदास यह दुसह सदा अति, दारुन बिरह घनेरो ।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोक-जनित रुज मेरो ॥५८॥

[गीतावली]

चौपाई

कौसल्या नृप दीख मलाना । रबि-कुल-रबि अथयेउ जिय जाना
उर धरि धीर राम महतारी । बोली बचन समय-अनुसारी ॥
नाथ ! समुझि मन करिय बिचारू । राम-वियोग-पयोधि अपारू ॥
करनधार तुम्ह अवध-जहाजू । चढ़ेउ सकल प्रिय-पथिक-समाजू ॥
धीरज धरिय त पाइय पारू । नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू ॥
जौं जिय धरिय बिनय पिय मोरी । राम लषन सिय मिलहिं बहोरी ॥

दोहा

प्रिया-बचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आँखि उघारि ।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचेउ सीतल-बारि ॥५९॥

चौपाई

धरि धीरज उठि बैठि भुआलू । कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू ॥
कहाँ लषन कहँ राम सनेही । कहँ प्रिय पुत्र-बधू बैदेही ॥

५८—सूल = कष्ट । अजिर-विहारी = आंगन में खेलनेवाले । तामरस = कमल । रुज = रोग ।

५९—मलाना = म्लान, उदास, दुखी । पयोधि = समुद्र । करनधार = खेनेवाले । त = तो । मीन मछली ।

६०—भुआलू = महाराज दसरथ । सुमन्त्र = महाराज दसरथ के प्रधान मन्त्री ।

सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेमपनु मोर निबाहा॥
हा रघुनंदन प्रानपिरीते। तुम्हबिनु जियत बहुतदिन बीते॥
हा जानकी! लषन हा! रघुबर। हापितु-हित-चित-चातक-जलधर॥

दोहा

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर-बिरह, राउ गयउ सुरधाम॥ ६०॥

[रामचरितमानस]

राग गौरी

करत राउ मनमों अनुमान।
सोक-बिकल मुख बचन न आवै बिछुरे कृपानिधान॥
राज देन कहि बोलि नारि-बस मैं जो कह्यो बन जान।
आयसु सिरधरि चले हरषि हिय, कानन भवन समान॥
ऐसे सुत के बिरह-अवधि लौं जौ राखौं यह प्रान।
तौ मिटि जाइ प्रीति की परमिति अजस सुनौं निज कान॥
राम गये अजहूँ हौं जीवत समुझत हिय अकुलान।
तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम-परवान॥ ६१॥

[गीतावली]

———

चौपाई

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदय लगाई॥

काहा = क्या। पनु = प्रतिज्ञा। पिरीते = प्यारे। चातक = पपीहा। जलधर = मेघ।

६१—राउ = महाराज दसरथ। अवधि = निश्चित समय, मियाद। परमिति = प्रमाण। परवान = प्रमाण।

भाँति अनेक भरत समुझाये। कहि बिबेकमय बचन सुनाये॥
भरतहु मातु सकल समुझाई। कहि पुरान-स्रुति कथा सुहाई॥
छलविहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥
जे अघ मातु-पिता-सुत मारे। गाइ-गोठ महि-सुर-पुर जारे॥
जे अघ तिय-बालक-बध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे॥
जे पातक उपपातक अहहीं। करम-बचन-मन-भव कवि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं एहु होइ मोर मत ताता॥

दोहा

जे परिहरि हरि-हर-चरन भजहिं भूतगन घोर।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ विधि, जौं जननी मत मोर॥ ६२॥

चौपाई

बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। बेद-बिदूषक बिस्व-बिरोधी॥
लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधन परदारा॥
पावउँ मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी एहु संमत मोरा॥
जे नहिं साधु-संग-अनुरागे। परमारथ-पथ-बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर-तनु पाई। जिन्हहिं न हरि-हर-सुजस सुहाई॥
तजि स्रुति-पंथ बाम-पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेषु जग छलहीं॥
तिन्ह कइ गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं एहु जानउँ भेऊ॥

६२—विवेक = ज्ञान। स्रुति = श्रुति, वेद। जुग पानी = दोनों हाथ। गाय-गोठ = गोशाला। माहुर = विष। भव = उत्पन्न, किये हुए।

६३—दुहि = दुःख। पिशुन = ठग, वंचक। कलह = लड़ाई झगड़ा। विदूषक = निंदक, उपहास करनेवाले। दारा = स्त्री। परमारथ-पथ = मोक्षमार्ग। बामपथ = वाममार्ग, तांत्रिक, शाक्त, भूत-प्रेत पूजने वाले, मद्य-मांस भक्षण करनेवाले, अनाचारी। भेऊ = भेद।

दोहा

मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन काय ।।६३।।

चौपाई

राम प्रान ते प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहिं प्रानहुँ ते प्यारे ॥
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारि-बिरागी ।।
भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू ।।
मत तुम्हार एहु जो जग कहहीं। सो सपनेहु सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरत हिय लाये। थनपय स्रवहिं नयनजल छाये॥ ६४॥

[रामचरितमानस]

राग गौरी

जो पै हौं मातु-मते महँ ह्वैहौं।
तौ जननी! जग में या मुखकी कहाँ कालिमा ध्वैहौं ।।
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि? कौन मानिहै साँची?
महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिषन बाँची?
गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाहि जोइ सूझै।
दीनबंधु कारुण्य-सिंधु बिनु कौन हिये की बूझै?
तुलसी राम-बियोग-बिषम-बिष-बिकल नारि-नर भारी।
भरत-सनेह-सुधा सींचे सब भये तेहि समय सुखारी ॥ ६५ ॥

[गीतावली]

६४—चवइ = चूने लगे। स्रवइ = गिराने लगे। बरु = चाहे । मोह = अज्ञान।
थन = स्तन; स्तनों से आपही आप, वात्सल्य भाव से, दूध की धार बहने लगी।
६५—महिमा......बाँची = जैसे हिंसकों के वाणों से मृगी नहीं बचती है, वैसे ही दुष्टों के वाग्वाणों से पुण्यात्माओं की महिमा नष्ट हो जाती है। रसना = जीभ। कारुण्यसिंधु = दया के समुद्र, अत्यंत दयालु।

सोरठा

भरत कमल-कर जोरि धीर-धुरन्धर धीर धरि।
वचन अमिय जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहिं ॥ ६६ ॥

चौपाई

मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सब ही का ॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा ॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीके। तदपि होत परितोषु न जी के ॥
अब तुम्ह विनय मोर सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावन देहू ॥
हित हमार सिय-पति- सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं ॥
बादि बसन बिनु भूषन-भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म-विचारू ॥
सरुज सरीर बादि बहुभोगा। बिनु हरि-भगति जाय जप जोगा ॥
जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई ॥

× × × × ×

उतरु देउँ केहि विधि केहि केही। कहहु सुखेन जथारुचि जेही ॥
मोहि कुमातु-समेत बिहाई। कहहु, कहिहि के कीन्हि भलाई ॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सियराम प्रानप्रिय नाहीं ॥

दोहा

आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहिं सिर नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ-पद जिय कै जरनि न जाय ॥ ६७ ॥

चौपाई

आन उपाउ मोहिं नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ॥

६७-गुरु=वसिष्ठ से आशय है। मातु=कौशल्या से आशय है। अनुहरत=अनुकूल, उपयुक्त। बादि=व्यर्थ। बिरति=विराग। सरुज=रोगी। जाय=व्यर्थ। उतरु=उत्तर। सुखेन=सुख से। जरनि=जलन, पीड़ा।

एकहि आँक इहइ मन माहीं । प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ॥

× × × × ×

भरत-बचन सब कहँ प्रिय लागे । राम-सनेह- सुधा जनु पागे ॥
लोग बियोग-विषम-बिष दागे । मंत्र सबीज सुनत जनु जागे ॥
मातु सचिव गुरु पुर-नर-नारी । सकल सनेह-बिकल भये भारी ॥
भरतहिं कहहिं सराहि-सराही । राम-प्रेम-मूरति-तनु आही ॥
तात भरत अस काहे न कहहू । प्रान-समान राम-प्रिय अहहू ॥
जो पावँर अपनी जड़ताई । तुम्हहिं सुगाइ मातु-कुटिलाई ॥
सो सठ-कोटिक पुरुष-समेता । बसहिं कलप-सत नरक-निकेता॥

दोहा

अवसि चलिय वन राम जहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह ।
सोक-सिंधु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बनु दीन्ह ॥ ६८ ॥

[रामचरितमानस]

राग गौरी

मेरो अवध धौं कहहु कहा है ।
करहु राज रघुराज-चरन तजि, लै लटि लोगु रहा है ॥
धन्य मातु, हौं धन्य लागि जेहि राज-समाज ढहा है ।
तापर मोकों प्रभु करि चाहत, सब बिनु दहन दहा है ॥
राम-सपथ कोउ कछू कहै जनि, हौं दुख दुसह सहा है ।
चित्रकूट चलिये सब मिलि, बलि, छमिये मोहि हहा है ॥
यों कहि, भोर भरत गिरिवर को मारग बूझि गहा है ।
सकल सराहत एक भरत जग जनमि सुलाहु लहा है ॥

६८—एकहि आँक = एक ही निश्चित मार्ग । आही = है । पावँर = पामर, पापी । जड़ताई = मूर्खता । सुगाइ = संदेह करे, निन्दा करे । अवलंबनु = सहारा ।

६९—लै लटि लोगु रहा है = इसी बात में लोग हैरान हो रहे हैं । ढहा है = गिरा दिया है, नष्ट कर दिया है । भोर = प्रातःकाल । सुलाहु = अच्छा लाभ ।

जानहिं सिय रघुनाथ भरत को सील सनेह महा है।
कै तुलसी जाको राम-नाम सो प्रेम-नेम निबहा है ॥ ६९ ॥
[गीतावली]

चौपाई

नगर-लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥
सिबिका सुगम न जाहिं बखानी। चढ़ि-चढ़ि चलत भईं सब रानी॥

दोहा

सौंपि नगर सुचि सेवकन सादर सबहि चलाइ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब चले भरत दोउ भाइ ॥ ७० ॥

चौपाई

राम-दरस-बस सब नर नारी। जनु करि-करिनि चले तकि बारी॥
बन सिय राम समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहि जाहीं॥

दोहा

पय-अहार फल-असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत राम-हित नेम-व्रत परिहरि भूषन-भोग ॥७१॥

× × × ×

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेस प्रयागु।
कहत रामसिय राम सिय उमगि-उमगि अनुरागु ॥७२॥

चौपाई

झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज-कोस ओस-कन जैसे॥
खबरि लीन्ह सब लोग नहाये। कीन्ह प्रनाम त्रिबेनिहिं आये॥

७०—जाना=यान, सवारी। कीन्ह पयाना=प्रयाण किया, रवाना हुए। सिबिका=पालकी।

७१—करि-करिनि=हाथी-हथिनी। असन=आहार, भोजन।

७२—झलका=फफोला। कोस=बँधी हुई कली।

देखत स्यामल-धवल-हलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल-कामप्रद तीरथ-राऊ । बेद-बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥
माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ॥

दोहा

अरथ न धरम न काम-रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम-जनम रति राम-पद यह बरदानु न आन ॥ ७३ ॥

चौपाई

सीता-राम-चरन-रति मोरे । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे ॥
जलद जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जल पवि पाहन डारउ ॥
चातक-रटनि घटे घटि जाई । बढ़े प्रेम सब भांति भलाई ॥
कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे । तिमि प्रियतम-पद-नेम निबाहे ॥
भरत-बचन सुनि माँझ त्रिबेनी । भइ मृदु बानि सुमंगल-देनी ॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम-चरन-अनुराग-अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माहीं । तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं ॥

× × × ×

सुनत राम-गुन-ग्राम सुहाये । भरद्वाज मुनिवर पहँ आये ॥
दंड प्रनाम करत मुनि देखे । मूरतिवंत भाग निज लेखे ॥
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे । दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे ॥
आसन दीन्ह नाइ सिरु बैठे । चहत सकुच-गृह जनु भजि पैठे ॥
मुनि पूछब किछु यह बड़ सोचू । बोले रिषि लखि सील सँकोचू ॥

धवल = सफ़ेद; गंगाजी से आशय है । कामप्रद = इच्छा पूरी करनेवाला । तीरथराऊ = तीर्थराज प्रयाग । आरत = आर्त्त, दुखी । निरबान = मोक्ष ।

७४—रति = प्रीति । अनुदिन = नित्य । पवि = बज्र । चातक = पपीहा । बान = दमक । बादि = व्यर्थ । गलानि = ग्लानि, पछतावा । गुनग्राम = गुणों का समूह । किछु = कुछ ।

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई । बिधि-करतब पर कछु न बसाई ॥
नव बिधु बिमल तात जसु तोरा । रघुबर-किंकर-कुमुद-चकोरा ॥
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना । घटिहि न जग नभ दिनदिन दूना॥
कोक तिलोक प्रीति अति करही । प्रभु-प्रताप रबि छबिहि न हरही॥
निसिदिन सुखद सदा सब काहू । ग्रसिहि न कैकइ-करतब-राहू ॥
पूरन राम-सुप्रेम-पियूषा । गुरु-अवमान दोष नहिं दूषा ॥
रामभगत अब अमिय अघाहू । कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू ॥
कीरति-बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा । जहँ बस राम-प्रेम-मृग-रूपा ॥
भरत धन्य तुम्ह जग जस जयऊ । कहि अस प्रेम-मगन मुनि भयऊ ॥
सुनि मुनि-बचन सभासद हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ७४

[राम-चरित-मानस]

दोहा

राम-सैल-सोभा निरखि, भरत-हृदय अति प्रेमु ।
तापस तप-फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥ ७५ ॥

चौपाई

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
नाथ देखि यहि बिटप बिसाला । पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥
तिन्ह तरुबरन्ह मध्य बट सोहा । मंजु बिसाल देखि मन मोहा ॥
नील सघन पल्लव फल लाला । अबिचल छाँह सुखद सब काला ॥
मानहुँ तिमिर-अरुन-मय रासी । बिरची बिधि सकेलि सुखमा सी ॥

बसाई = वश, चारा । किंकर-कुमुद-चकोरा = दासरूपी कुईं और चकोर । जग-नभ = संसाररूपी आकाश । कोक = चकवा । पियूषा = अमृत । अवमान = अवज्ञा । साधु = धन्य, बलिहारी ।

७६-केवट = गुह निषाद । तिमिर = अंधकार । सकेलि = समेट कर, इकट्ठा कर । सुखमा = शोभा, छटा ।

दोहा

जहाँ बैठि मुनि-गन-सहित, नित सिय राम सुजान ।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान ॥७६॥

चौपाई

सखा-बचन सुनि बिटप निहारी । उमगे भरत-बिलोचन बारी ॥
हरषहिं निरखि राम-पद-अंका । मानहुँ पारसु पायेउ रंका ॥
रज सिर धरि हियनयनन्हि लावहिं । रघुबर-मिलन-सरिससुखपावहिं॥
देखि भरत-गति अकथ अतीवा । प्रेम-मगन मृग खग जड़ जीवा ॥

दोहा

प्रेम-अमिय मंदर-बिरह, भरत पयोधि-गँभीर ।
मथि प्रगटे सुर-साधु-हित, कृपासिन्धु रघुबीर ॥ ७७ ॥

चौपाई

भरत दीख प्रभु-आस्रम पावन । सकल-सुमंगल-सदन सुहावन ॥
करत प्रवेस मिटे दुख-दावा । जनु जोगी परमारथ पावा ॥
देखे भरत लषन प्रभु आगे । पूछे बचन कहत अनुरागे ॥
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे । तून कसे कर सर धनु काँधे ॥
बेदी पर मुनि-साधु समाजू । सीय-सहित राजत रघुराजू ॥
बलकल-बसन जटिल तनु स्यामा । जनु मुनि-वेष कीन्ह रति-कामा ॥

आगम = शास्त्र । निगम = वेद ।

७७—अंका = चिन्ह । पारसु = एक पत्थर, जिसके स्पर्श से लोहा सोना होजाता है । अतीवा = बहुत अधिक, बिल्कुल । प्रेम-मगन = प्रेम में विह्वल ।

७७—मंदर-बिरह = विरह रुपी मंदराचल; मंदराचल की मँथानी, क्षीरसागर मथते समय, बनाई गई थी ।

७८—सदन = स्थान । बलकल-बसन = छाल के वस्त्र । जटिल = जटा बाँधे हुए ।

कर कमलनि धनु-सायक फेरत । जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥
सानुज सखा समेत मगन मन । बिसरे हरष-सोक-सुख-दुख-गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट की नाईं ॥
बचन सप्रेम लषन पहिचाने । करत प्रनाम भरत जिय जाने ॥
बंधु-सनेह सरस एहि ओरा । उत साहिब-सेवा बरजोरा ॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई । सुकबि लषन-मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे राम सुनि प्रेम-अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनुतीरा ॥

दोहा

बरबस लिये उठाइ उर लाये कृपानिधान ।
भरत-राम की मिलनि लखि बिसरे सबहिं अपान ॥ ७८ ॥

चौपाई

मिलनि-प्रीति किमि जाइ बखानी । कबि-कुल-अगम करम मन बानी ॥
परम प्रेमपूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥
कहहु सप्रेम प्रगट को करई । केहि छाया कबि-मति अनुसरई ॥
कबिहिं अरथ आखर बल साँचा । अनुहरि ताल-गतिहि नट नाचा ॥
अगम सनेह भरत-रघुबर को । जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को ॥
सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती । बाज सुराग कि गाँडर ताँती ॥ ७९ ॥

[रामचरित मानस]

सायक = वाण । पाहि = रक्षा करो । गुदरत बनई = हटते नहीं बनता, छोड़ते नहीं बनता । भनई = कहता है । चंग = पतंग । अपान = शरीर की सुधि ।
७९-अहमिति = अहंकार । आखर = अक्षर । अनुहरि = अनुसरण करके । गाँडर = खस ।

राग केदारा

बिलोके दूरितें दोउ बीर।
उर आयत, आजानु सुभग भुज, स्यामल गौर सरीर॥
सीस जटा, सरसीरुह-लोचन, बने परिधन मुनिचीर।
निकट निषंग, संग सिय सोभित, करनि धुनत धनुतीर॥
मन अगहुँड़ तनु पुलक-सिथिल भयो, नलिन-नयन भरे नीर।
गड़त गोड़ मानो सकुच-पंक महँ, कढ़त प्रेम-बल धीर॥
तुलसिदास दसा देखि भरत की उठि धाये अतिहि अधीर।
लिये उठाइ उर लाइ कृपानिधि बिरह-जनित हरि पीर॥८०॥

[गीतावली]

दोहा

तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोच तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कइ बात॥ ८१॥

चौपाई

सुनि मुनि-बचन राम-रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपने सिर सब छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥
पुलकि सरीर सभा भये ठाढ़े। नीरज-नयन नेह-जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनि-नाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहउँ मैं काहा॥
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेखी। खेलत खुनस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु-कृपा-रीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही॥

८०—आयत = चौड़ा। आजानु = घुटनों तक लंबा। सरसीरुह = कमल। परिधान = वस्त्र। धुनत = क्रीड़ावश धनुष के रोदे पर मारते हैं। अगहुँड़ = आगे।

८२—कोह = क्रोध। काऊ = कभी। खुनस = गुस्सा। जोही = देखी। महूँ = मैने भी।

दोहा

महूँ सनेह-सकोच-बस सनमुख कहे न बैन।
दरसन-तृपित न आजु लगि प्रेम-पियासे नैन॥ ८२॥

चौपाई

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा॥
मातु मंद मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव-बालि सुसाली। मुकुता प्रसव कि संबुक ताली॥
सपनेहु दोस कलेस न काहू। मोर अभाग-उदधि-अवगाहू॥

× × × × × × ×

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा-अंबु-निधि अंतरजामी॥
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटा मलिन मन-कलपित-सूला॥
अब करुनाकर कीजिय सोई। जन-हित प्रभु-चित-छोभ न होई॥
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक-समाजु साजि सब आना। करिय सुफल प्रभु जौं मन माना॥

दोहा

सानुज पठइय मोहिं बन कीजिय सबहिं सनाथ।
न तरु फेरियहिं बंधु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ॥ ८३॥

८३-बीच पारा=बिछोह करा दिया, फूट पड़वादी। को भा= कौन हुआ। सुचाली=सच्चरित्र, सदाचारी। कुचाली=पाप। कोदव=कोदो। सुसाली= अच्छा धान्य, गेहूँ, चाँवल आदि। प्रसव=पैदा करता है। ताली संबुक= तालाब का घोंघा। अंबुनिधि=समुद्र। कलपित=बनाया हुआ, विचारा हुआ। न तरु=नहीं तो।

चौपाई

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिय सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिय सोई॥

दोहा

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सब, मिटिहि अनट अवरेब॥ ८४॥

[रामचरितमानस]

राग केदारा

बिनती भरत करत कर जोरे।
दीन-बंधु दीनता दीन की कबहुँ परै जिनि भोरे॥
तुम्ह से तुम्हहिं नाथ मोको, मोसे जन तुम को बहुतेरे।
इहै जानि पहिचानि प्रीति छमिए अघ अवगुन मेरे॥
यों कहि सीय-राम-पायँनि परि लषन लाइ उर लीन्हें।
पुलक-सरीर नीर भरि लोचन कहत प्रेम-पन कीन्हें॥
तुलसी बीते अवधि-प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ।
तो प्रभु-चरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहिं न पैहौ॥८५॥

रघुपति! मोहि संग किन लीजै?
बार बार 'पुर जाहु' नाथ! केहि कारन आयसु दीजै॥
जद्यपि हौं अति अधम कुटिल मति अपराधिनि को जायो।
प्रनतपाल कोमल-सुभाव जिय जानि सरन तकि आयो॥

८४—बहुरिय = लौट जाइए। अनट = गाँठ, अनुचित। अवरेब = कुपेच।
८५—लाइ उर लीन्हें = हृदय से लगालिया। प्रेम-पन = प्रेम-प्रतिज्ञा, प्रेमाग्रह।
अवधि = निश्चित समय (१४ वर्ष का समय)। सपथ = सौगंद।
८६—प्रनतपाल = शरण में आये हुओं को पालनेवाले।

जो मेरे तजि चरन आन गति, कहौं हृदय कछु राखी।
तो परिहरहु दयालु दीन हित प्रभु अभि-अंतर-साखी॥
ताते, नाथ! कहौं मैं पुनि-पुनि प्रभु पितु मातु गोसाईं।
भजन-हीन नरदेह वृथा खर स्वान फेरु की नाईं॥
बंधु-बचन सुनि स्रवन नयन-राजीव नीर भरि आये।
तुलसिदास प्रभु परम कृपा गहि बाहँ भरत उर लाये॥८६॥

[गीतावली]

दोहा

दीनबंधु सुनि बंधु के, बचन दीन छलहीन।
देस-काल-अवसर-सरिस, बोले राम प्रवीन॥ ८७॥

चौपाई

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरुहिं नृपहिं घर बन की॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथ। स्वारथ सुजस धरम परमारथ॥
पितु-आयसु पालिय दुहुँ भाई। लोक बेद भल भूप भलाई॥
गुरु-पितु-मातु-स्वामि-सिखपाले। भूलेहु कुमग पग परहिं न खाले॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥
देस कोस पुरजन परिवारू। गुरु-पद-रजहि लाग छरभारू॥
तुम्ह मुनिमातुसचिव-सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

अभिअन्तर साखी = अंतःकरण की बात देखनेवाले। फेरु = गीदड़।
राजीव = कमल।

८८—नृपहिं = महाराज जनक को; जनक भी भरत के पीछे-पीछे चित्रकूट श्रीरामचन्द्रजी को देखने पहुँच गये थे। कोस = राज-कोष, ख़ज़ाना।
पुहुमि = पृथ्वी।

दोहा

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥ ८८ ॥

चौपाई

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥
चरन-पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा-प्रान के ॥
संपुट भरत-सनेह-रतन के। आखर जुग जनु जीव-जतन के ॥
कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा-सु-धरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सियराम रहे तें ॥

दोहा

माँगेउ बिदा प्रनाम करि, राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसरु पाइ ॥ ८९ ॥

चौपाई

भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम-प्रेम-रस कहि न परत सो ॥
तन-मन-बचन उमग अनुरागा। धीर-धुरंधर धीरज त्यागा ॥
बारिजलोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर-सभा दुखारी ॥

८९.—पाँवरी = पाँवड़ी, खड़ाऊँ। चरन-पीठ = खड़ाऊँ। जामिक = पहरेदार। जुग आखर = दो अक्षर; 'राम' नाम से आशय है। जीव-जतन = जीव के मुक्त होने का साधन। लोग उचाटे अमर-पति = इन्द्र ने लोगों का चित्त चित्रकूट से उचाट दिया। इन्द्र को यह भय था कि यदि लोगों के प्रेम के कारण श्रीरामजी अयोध्या लौट गये तो रावण आदि का वध कैसे होगा और देवगण स्वर्ग में किस प्रकार निर्भय और सुखी रह सकेंगे। इसीलिए उसने ऐसा माया का चक्र फेरा कि लोगों का मन वहाँ से ऊब गया।

मुनिगन गुरु धुरधीर जनक से । ज्ञान-अनल मन कसे कनक से ॥
जे बिरंचि निरलेप उपाये । पदुमपत्र जिमि जग जल जाये ॥

दोहा

तेउ बिलोकि रघुबर-भरत-प्रीति अनूप अपार ।
भये मगन मन तन बचन, सहित बिराग बिचार ॥ ९० ॥
लषनहिं भेंटि, प्रनाम करि, सिर धरि सिय-पद-धूरि ।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल-सुमंगल-मूरि ॥ ९१ ॥

[रामचरितमानस]

राग केदारा

काहू सों काहू समाचार ऐसे पाए ।
चित्रकूट तें राम लखन सिय सुनियत अनत सिधाए ॥
सैल, सरित, निर्झर, बन, मुनिथल देखि-देखि सब आए ।
कहत सुनत सुमिरत सुखदायक, मानस सुगम सहाए ॥
बड़ि अवलंब बाम-बिधि-बिघटित, विषम बिषाद बढ़ाए ।
सिरिस-सुमन-सुकुमार-मनोहर-बालक बिंध्य चढ़ाए ॥
अवध-सकल नर-नारि बिकल अति अँकनि बचन अनभाए ।
तुलसी राम-वियोग-सोग-बस समुझत नहिं समुझाए ॥९२॥

[गीतावली]

९०—धुर-धीर = धीर-धुर, बड़े धैर्यवान् । ज्ञान अनल···से = जिन्होंने अपने मन को ज्ञान द्वारा ऐसा शुद्ध किया जैसे आग में तपाने से सोना निर्मल और खरा हो जाता है । उपाये = उत्पन्न किये । पदुम···जाये = जैसे कमल का पत्ता जल में रहकर भी जल से निर्लेप रहता है, वैसेही जनक और बशिष्ठ आदि कर्म करते हुए भी कर्म-बंधन से स्वभावतः विमुक्त थे ।

९२—बाम-बिधि-बिघटित = प्रतिकूल विधाता द्वारा किया हुआ । विषम = दारुण । अँकनि = सुनकर । अनभाये = अप्रिय, दुःखदायी । सोग = शोक ।

चौपाई

राम-मातु गुरु-पद सिर नाई । प्रभु-पद-पीठ-रजायसु पाई ॥
नंदिगाँव करि परन-कुटीरा । कीन्ह निवास धरम-धुर-धीरा ॥
जटा-जूट सिर मुनि-पट धारी । महि खनि कुस-साथरी सँवारी ॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा । करत कठिन रिषि-धरम सप्रेमा ॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी । मन तन बचन तजे तृन तूरी ॥
अवधराज सुरराज सिहाई । दसरथ-धन सुनि धनद लजाई ॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक-बागा ॥
रमा-बिलास राम-अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥
देह दिनहिं दिन दूबरि होई । घट न तेज बल मुखछबि सोई ॥
भरत-रहनि-समुझनि-करतूती । भगति बिरतिगुन बिमल बिभूती ॥
बरनत सकल सुकवि सकुचाहीं । सेस गनेस गिरा गम नाहीं ॥

दोहा

नित पूजत प्रभु-पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति ।
माँगि-माँगि आयसु करत, राज-काज बहु भाँति ॥ ८३ ॥

[रामचरितमानस]

राग केदारा

जब तें चित्रकूट तें आए ।
नंदिग्राम खनि अवनि, डासि कुस, परन-कुटी करि छाये ॥
अजिन बसन, फल असन, जटा धरे रहत अवधि-चित दीन्हें ।

९३-पद-पीठ = खड़ाऊँ । मुनिपट = मुनियों के ऐसे वस्त्र, वल्कल वस्त्र । खनि = खोद कर । साथरी = शैय्या । असन = भोजन । भूरी = बहुत । तृनतूरी = तिनके के समान । चंचरीक = भौंरा । विभूति = ऐश्वर्य । गिरा = सरस्वती । गम = सामर्थ्य ।

९४-डासि बिछाकर । अजिन = मृग-चर्म ।

प्रभु-पद-प्रेम-नेम-व्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें ॥
सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिं बार जोहारे।
प्रभु—अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे ॥
तुलसी ज्यों-ज्यों घटत तेज तनु त्यों-त्यों प्रीति अधिकाई।
भए, न हैं, न होहिंगे कबहूँ भुवन भरत से भाई ॥ ९४ ॥
[गीतावली]

चौपाई

भरत-सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कबि छमहूँ ॥
कहत सुनत सतिभाव भरत को। सीय राम पद होइ न रत को ॥
सुमिरत भरतहिं प्रेम राम को। जेहिनसुलभ तेहिसरिसबामको ॥
भरत-चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती ॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदरसुधाहू॥
भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई ॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे ॥
भरत सरिस को राम-सनेही। जगु जप राम, राम जप जेही ॥
जो न जन्म जग होत भरत को। अचर सचर, चर अचर करतको॥
परम पुनीत भरत-आचरनू। मधुर-मंजु-मुद-मंगल-करनू ॥
हरन कठिन कलि-कलुष-कलेसू। महा-मोह-निसि-दलन दिनेसू ॥

नमित मुख कीन्हे = नीचा मुहँ कर लिया, लज्जित हो गये। पादुका = पाँवड़ी। जोहारे = प्रणाम किया।

९५. निगम = वेद। रत = अनुरक्त, प्रेमी। हीचे = तुच्छ हुए। अचर…को = आशय यह है कि भरतजी ने जड़ को प्रेमातिरेक से द्रवीभूत कर दिया, पत्थर को भी पिघला कर चैतन्य बनादिया और जो चैतन्य थे उन्हें प्रेम-विह्वलता से पाषाण की तरह निस्तब्ध और मूक कर दिया। मोह-निशि = अज्ञानरूपी रात्रि।

पाप-पुंज-कुंजर-मृगराजू । समन सकल-संताप-समाजू ॥
जन-रंजन भंजन-भवभारू । राम-सनेह-सुधाकर-सारू ॥९५॥

छंद

सियराम-प्रेम-पियूष-पूरन होत जनम न भरत को।
मुनि-मन-अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम-सनमुख करत को ॥९६॥

[रामचरितमानस]

राग रामकली

जानी है संकर, हनुमान, लखन भरत-राम-भगति ।
कहत सुगम, करत अगम, सुनत माठी लगति ॥
लहत सकृत, चहत सकल, जुग-जुग जगमगति ।
राम—प्रेम—पथ तें कबहुँ डोलति नहिं डगति ॥
ऋधि सिधि, बिधि चारि सुगति, जा बिनु गति अगति ।
तुलसी तेहि सनमुख बिनु बिषय-ठगिनि ठगति ॥ ९७ ॥

[गीतावली]

राग धनाश्री

जयतिभूमिजारमण-पदकंज-मकरंद-रस-रसिक-मधुकर-भरतभूरिभागी।
भुवन-भूषण-भानुवंस-भूषण, भूमिपाल-मणि-रामचंद्रानुरागी ॥

कुंजर = हाथी । सुधाकर-सार = अमृत ।

९६—अपहरत = दूर करता । जम = यम, संयम । दारिद = दारिद्रय ।

९७—सकृत = एक बार ।

९८—भूमिजा-रमण = जानकीवल्लभ, श्रीरामचंद्र । मकरंद = पराग । भूरिभागी = बड़भागी ।

जयति बिबुधेश-धनदादि-दुर्लभ महाराज-सम्राज-सुखप्रद बिरागी ।
खड्गधाराव्रती-प्रथम-रेखा प्रकट, शुद्ध-मति-युवति-वत-प्रेम-पागी ॥
जयति निरुपाधि, भक्तिभाव-यंत्रित हृदय, बंधुहित-चित्रकूटाद्रिचारी ।
पादुका-नृप-सचिव पुहुमि-पालक परम धीर गंभीर बर बीर भारी ॥
जयति संजीवनी-समय-संकट हनूमान धनु-बान-महिमा बखानी ।
बाहुबल बिपुल, परमिति पराक्रम अतुल, गूढ़ गति जानकी-जानि जानी ॥
जयति रन-अजिर-गंधर्व-गन-गर्व-हर फेरि किये राम-गुन-गाथ-गाता ।
मांडवी-चित्त-चातक-नवांबुद-बरन, सरन-तुलसीदास अभय-दाता ९८

[विनयपत्रिका]

सोरठा

भरत-चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं ।
सीय-राम-पद-प्रेम अवसि होइ भव-रस-बिरति ॥ ९९ ॥

[रामचरितमानस]

विबुधेश = इन्द्र । खड्गधाराव्रती = तलवार की धार पर चलनेवाले, महाकठिन व्रत निभानेवाले । प्रथम रेखा = सर्वश्रेष्ठ । भक्ति-भाव-यंत्रित = भक्ति-भाव-रूपी ताला लगा हुआ । अद्रि = पर्वत । पादुका-नृप-सचिव = खड़ाऊं-रूपी राजा के मंत्री; भरतजी ने, श्रीरामजी की अनुपस्थिति में, उनकी चरण-पादुकाओं को राजा माना था और अपने को उनका मंत्री मात्र समझते थे । पुहिमि = पृथ्वी । परमिति = प्रमाण, सीमा । जानकी-जानि = जानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्र । रनअजिर = रणाङ्गण, रणभूमि । गंधर्वगर्वहर = भरतजी के मामा युधाजित् को जब गंधर्वों ने तंग किया था तब उनकी सहायता के लिए भरतजी वहां गये थे और गंधर्वों का गर्व नष्ट कर दिया था। गाता = गानेवाले। मांडवी = भरतजी की पत्नी । नवांबुद = नया मेघ ।

९९-भव-रस-बिरति = सांसारिक सुखों से वैराग्य ।

अरण्यकाण्ड

सोरठा

उमा ! राम-गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि-बिमुख न धरम-रति ॥ १ ॥

चौपाई

रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किये स्रुति-सुधा-समाना ।
बहुरि राम अस मन अनुमाना । होइहि भीर सबहिं मोहि जाना ॥
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई । सीता सहित चले दोउ भाई ॥
अत्रि के आस्रम जब प्रभु गयऊ । सुनत महा मुनि हरषित भयऊ ॥
पुलकित गात अत्रि उठि धाये । देखि राम आतुर चलि आये ॥
करत दंडवत मुनि उर लाये । प्रेम-बारि दोउ जन अन्हवाये ॥
देखि राम-छबि नयन जुड़ाने । सादर निज आस्रम तब आने ॥
करि पूजा कहि बचन सुहाये । दिये मूल फल प्रभु मन भाये ॥

सोरठा

प्रभु आसन-आसीन, भरि लोचन सोभा निरखि ।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पानि अस्तुति करत ॥ २ ॥

१-उमा=पार्वती; शिवजी पार्वताजी को रामचरितमानस की कथा सुनाते हैं । रति=प्रीति ।

२-स्रुति-सुधा-समाना=कानों को अमृत की तरह मधुर लगनेवाले । भीर=भीड़ । प्रेम-बारि=प्रेम के आँसू । मूल=कंद । आसीन=बैठे हुए । पानि=पाणि, हाथ ।

दोहा

विनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि ।
चरन-सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजइ मति मोरि ॥ ३ ॥

चौपाई

मुनि-पद-कमल नाइ करि सीसा । चले बनहिं सुर-मुनि-नर-ईसा ॥
आगे राम अनुज पुनि पाछे । मुनिबर बेस बने अति आछे ॥
उभय बीच सिय सोहइ कैसी । ब्रह्म-जीव बिच माया जैसी ॥

× × × × ×

पुनि आये जहँ मुनि सरभंगा । सुन्दर-अनुज-जानकी-संगा ॥
कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला । संकर-मानस-राजमराला ॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा । सुनेउँ स्रवन बन अइहहिं रामा ॥
चितवत पंथ रहेउँ दिन-राती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ॥
नाथ ! सकल साधन मैं हीना । कीन्ही कृपा जानि जन दीना ॥
जोग जग्य जप तप व्रत कीन्हा । प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा ॥
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा । बैठे हृदय छाँड़ि सब संगा ॥

दोहा

सीता अनुज समेत प्रभु, नील-जलद-तनु स्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर सगुन-रूप श्रीराम ॥ ४ ॥

चौपाई

अस कहि जोग-अगिनि तनु जारा । राम-कृपा बैकुंठ सिधारा ॥ ५ ॥

[रामचरितमानस]

४—उभय = दो । संकर…मराला = शिवजी के मन-रूपी मानसरोवर में राजहंस के समान विहार करनेवाले । बिरंचि = ब्रह्मा । सर = चिता । सगुन = दिव्यगुण-संयुक्त ब्रह्म ।

५—जोग-अगिनि = योग द्वारा प्रज्ज्वलित अग्नि ।

चौपाई

मुनि अगस्त्य कर शिष्य सुजाना । नाम सुतीच्छन रति भगवाना ॥
मन-क्रम-बचन राम-पद-सेवक । सपनेहु आन भरोस न देवक ॥
प्रभु-आगमनु स्रवन सुनि पावा । करत मनोरथ आतुर धावा ॥
हे बिधि ! दीनबंधु रघुराया । मोसे सठ पर करिहहिं दाया ॥
होइहहिं सुफल आजु मम लोचन । देखि बदन-पंकज भव-मोचन ॥
निर्भर प्रेम-मगन मुनि ज्ञानी । कहि न जाय सो दसा भवानी ॥
दिसि अरु बिदिस पंथ नहिं सूझा । को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ॥
कबहुँक फिर पाछे पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥
अबिरल प्रेम-भगति मुनि पाई । प्रभु देखहिं तरु-ओट लुकाई ॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदय हरन-भव-भीरा ॥
मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस-फल जैसा ॥
तब रघुनाथ निकट चलि आये । देखि दसा निज जन मन भाये ॥
मुनिहिं राम बहु भाँति जगावा । जाग न ध्यान-जनित सुख पावा ॥
भूपरूप तव राम दुरावा । हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा ॥
मुनि अकुलाइ उठा पुनि कैसे । बिकल हीन-मनि फनिवर जैसे ॥
आगे देखि राम तनु स्यामा । सीता अनुज सहित सुखधामा ॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी । प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी ॥
भुज बिसाल गहि लियेउ उठाई । परम प्रीति राखेउ उर लाई ॥
मुनिहिं मिलत अस सोह कृपाला । कनक-तरुहि जनु भेंट तमाला ॥

६—रति = प्रीति । क्रम = कर्मणा, कर्म से । देवक = देवता का । आतुर = अधीर । भवमोचन = संसार के आवागमन से छुड़ानेवाला । निर्भर = पूर्ण । भवानी = पार्वतीजीसे आशय है । अविरल = निरंतर, अविच्छिन्न । भवभीरा = सांसारिक कष्ट, जन्म-मरण । बैसा = बैठ गया । पनस = कटहर । फनि = साँप । कनक-तरु = सोंने के ऐसा रंग का पेड़; सुतीक्ष्ण मुनि से आशय है ।

राम-बदन बिलोकि मुनि ठाढ़ा । मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा ॥
कह मुनि प्रभु सुनि बिनती मोरी । अस्तुति करउँ कवन बिधि तोरी ॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी । रबि-सनमुख खद्योत-अँजोरी ॥
जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी । सब के हृदय निरंतर-बासी ॥
तदपि अनुज-श्री-सहित खरारी । बसहु मनसि मम, कानन-चारी ॥
जो कोसलपति राजिव-नयना । करउ सो राम हृदय मम अयना ॥
अस अभिमान जाय जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

दोहा

अनुज-जानकी-सहित-प्रभु चाप-बान-धर राम ।
मम हिय-गगन इंदु इव बसहु सदा निःकाम ॥ ६ ॥

× × × × ×

चौपाई

सुनत अगस्त्य तुरत उठि धाये । हरि बिलोकि लोचन जल छाये ॥
मुनि-पद-कमल परे दोउ भाई । रिषि अति प्रीति लिये उर लाई ॥
सादर कुसल पूछि मुनि ज्ञानी । आसन पर बैठारे आनी ॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु-पूजा । मोहि सम भागवंत नहिं दूजा ॥
तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं । तुम्हसन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ । तातें तात न कहि समुझायउँ ॥

खद्योत-अँजोरी = जुगनू का प्रकाश । विरज = विरक्त, निर्लेप । श्री = लक्ष्मी; सीताजी से तात्पर्य है । खरारी = खर दैत्य को मारनेवाले, श्रीरामजी । मनसि = मनमें । राजिव-नयना = कमल-नेत्र । अयना = स्थान । भोरे = भूल कर भी । इंदु = चंद्रमा । इव = समान ।

७—लोचन जल छाये = आँखों में आँसू भर आये । मुनि पाहीं = मुनि से । दुराव = छिपाव ।

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारउँ मुनिद्रोही ॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु-बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥
तुम्हरेइ भजन-प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी ॥
यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदय श्री-अनुज-समेता ॥
अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन-सरोरुह प्रीति अभंगा ॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता ॥
अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरिफिरि सगुनब्रह्म-रति मानउँ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूछेहु रघुराई ॥
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ ॥
बास करहु तहँ रघुकुल-राया। कीजिय सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
चले राम मुनि-आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी नियराई ॥

दोहा

गीधराज सों भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी-निकट प्रभु रहे परनगृह छाइ ॥ ७ ॥

[रामचरितमानस]

चौपाई

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट-मृग भयऊ ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक-देह मनि-रचित बनाई ॥

७—अघारी = पापों का नाश करनेवाले। अविरल = निरंतर। विरति = वैराग्य। सरोरुह = कमल। अनुभवगम्य = केवल अनुभव द्वारा ध्यान में आनेवाला। सगुन = दिव्यगुण-संयुक्त। संतत = सदा। राया = राजा। नियराई = समीप आ गयी। गीधराज = जटायु।

८—दसानन = रावण। मारीच = रावण का मामा; यह वही मारीच था जिसे श्रीरामचंद्रजी ने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते समय वाण-द्वारा समुद्र के उस पार फेंक दिया था। कनक = सोना।

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग-अंग सुमनोहर बेषा॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुन्दर छाला॥
सत्यसंध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर-काज-सँवारन॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा॥
प्रभु लछिमनहिं कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥
प्रभुहिं बिलोकि चला मृग भाजी। धाये राम सरासन साजी॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहिं गयउ लै दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥
लछिमन कै प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि राम समेत सनेहा॥
अन्तर प्रेमु तासु पहिचाना। मुनि-दुरलभ-गति दीन्ह सुजाना॥
आरति-गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥
जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता॥
भ्रकुटि-बिलास सृष्टि-लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥
मरम बचन जब सीता बोला। हरि-प्रेरित लछिमन-मन डोला॥

रुचिर = सुंदर। परिकर = फेंटा। साँधा = चढ़ाया। पराई = भागता था। भूरी = बहुत। आरति = दु:ख, पीड़ा। गिरा = वाणी, आवाज़। सभीता = डरी हुई। भ्रकुटि-बिलास = भौंह का संकेतमात्र। लय = प्रलय, विनाश। मरमवचन = भेदभरी बात। अन्यत्र लिखा है कि सीताजी ने उस समय लक्ष्मण से यह कहा था कि, अकेले में, जान पड़ता है, तुम मुझे कुदृष्टि से देखना चाहते हो। हरि-प्रेरित = ईश्वर की इच्छा से घुमाया हुआ। सीता 'बोला' = यहाँ यह पुँल्लिंगान्त प्रयोग आया है! जायसी ने भी "पद्मावत" में कहीं-कहीं पर ऐसा प्रयोग किया है।

बन-दिसि-देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन-ससि-राहू॥
सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती के भेखा॥
जाके डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नींद, दिन अन्न न खाहीं॥
सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि लवलेसा॥
नाना बिधि कहि कथा सुनाई। राजनीति भय प्रीति देखाई॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं॥
तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु खल रहु ठाढ़ा॥
जिमि हरि-बधुहि छुद्र सस चाहा। भयसि कालबस निसिचर-नाहा॥
सुनत बचन दससीस लजाना। मनमहुँ चरन बंदि सुख माना॥

दोहा

क्रोधवंत तब रावन लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगन-पथ आतुर भयबस हाँकि न जाइ॥ ८॥

चौपाई

हा जगदेक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति-हरन सरन-सुख-दायक। हा रघुकुल-सरोज-दिन-नायक॥
हा लछिमनु! तुम्हार नहिं दोसा। सो फल पायेउँ कीन्हेउँ रोसा॥
बिबिध बिलाप करत बैदेही। भूरिकृपा प्रभु दूरि सनेही॥

रावण-ससि-राहू = रावण-रूपी चन्द्रमा को निगलनेवाले राम-रूपी राहु। जती = यति, संन्यासी। भड़िहाई = चोरी से। खगेसा = गरुड़; काक-भुशुंडि, गरुड़ को राम-कथा सुना रहे हैं। हरि-वधू = सिंह की स्त्री। सस = खरहा।

९—जगदेक = जगत् + एक; संसार भर में एक ही, अद्वितीय। आरति = कष्ट।

बिपति मोर को प्रभुहिं सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भये चराचर जीव दुखारी॥९॥

[रामचरितमानस]

राग सोरठ

बैठे हैं रामलषन अरु सीता।
पंचवटी बर परन-कुटीतर कहैं कछु कथा पुनीता।
कपट-कुरंग कनक-मनि-मय लखि प्रियसों कहति हँसि बाला॥
पाए पालिबे जोग मंजु मृग, मारेहुँ मंजुल छाला॥
प्रिया-बचन सुनि बिहँसि प्रेम-बस गवहिं चाप सर लीन्हें॥
चल्यो भाजि फिरि-फिरि चितवत मुनि-मख-रखवारे चीन्हें॥
सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम-हरिन के पाछे।
धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसि-उरआछे॥१०॥

राग कल्यान

कर सर धनु, कटि रुचिर निषंग।
प्रिया-प्रीति-प्रेरित बन-बीथिन्ह बिचरत कपट-कनक-मृग संग॥
भुज बिसाल, कमनीय कंध उर, स्रम-सीकर सोहैं साँवरे अंग।
मनु मुकुता मनि-मरकत-गिरि पर लसत ललित रबि-किरनि प्रसंग॥
नलिन-नयन, सिर-जटा-मुकुट बिच सुमन-माल मनु सिव-सिर गंग।
तुलसिदास ऐसी मूरति की बलि, छबि बिलोकि लाजैं अमित अनंग॥११॥

पुरोडास = यज्ञ-भाग। रासभ = गदहा। चराचर = चैतन्य और जड़।

१०—बाला = स्त्री; सीताजी। गवहिं = चुपके से, धीरे से। मुनि......चीन्हे = देखो टिप्पणी ८। हेम = सोना। आछे = अच्छी तरह।

११—बीथी = गली। कमनीय = सुंदर। स्रम-सीकर = पसीने की बूँदें। मरकत = नीलम। नलिन-नयन = कमल-नेत्र। अमित अनंग = अगणित कामदेव।

राग सोरठ

आरत बचन कहति बैदेही ।
बिलपति भूरि बिसूरि 'दूरि गए मृग सग परम सनेही ॥
कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात, छमा सो कीजै ।
देखि बधिक-बस राजमरालिन लषनलाल ! छिनि लीजै ॥
बनदेवनि सिय, कहन कहति यों 'छल करि नीच हरी हौं ।
गोमर-कर सुरधेनु, नाथ ! ज्यों-त्यों पर-हाथ परी हौं ' ॥
तुलसिदास रघुनाथ-नाम-धुनि अकनि गीध धुकि धायो ।
'पुत्रि पुत्रि ! जनि डरहि, न जैहै नीचु ? मीचु हौं आयो' ॥१२॥

[गीतावली]

सवैया

पंचवटी वर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए ।
सोहै प्रिया, प्रिय बंधु लसै, तुलसी सब अंग घने छबि छाए ॥
देखि मृगा मृगनैनी कहे प्रिय बैन, ते प्रीतम के मन भाए ।
हेम-कुरंग के संग सरासन सायक लै रघुनायक धाए ॥ १३ ॥

[कवितावली]

बरवा

हेम-लता सिय मूरति मृदु मुसुकाइ ।
हेम-हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि देखाइ ॥
जटा-मुकुट कर सर धनु, सँग मारीच ।
चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच ॥ १४ ॥

[बरवैरामायण]

१२—बिसूरि = पछता कर । छिनि लीजे = छीन लीजिए । बाधक = बहेलिया । गोमर = गीदड़, सियार । अकनि = सुनकर । गीध = जटायु से तात्पर्य है । धुकिधायो = झपट कर दौड़ा । मीचु = मौत ।

चौपाई

अनुज समेत गये प्रभु तहँवा । गोदावरि-तट आस्रम जहँवा ॥
आस्रम देखि जानकी-हीना । भये बिकल जस प्राकृत दीना ॥
हा गुनखानि जानकी सीता । रूप—सील—व्रत-नेम-पुनीता ॥
लछिमनु समुझाए बहु भाँती । पूछत चले लता-तरु-पाँती ॥
हे खग मृग हे मधुकर-स्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन, सुक, कपोत, मृग, मीना । मधुप-निकर, कोकिला प्रबीना ॥
कुन्द-कली, दाड़िम, दामिनी । कमल, सरद-ससि, अहि-भामिनी ॥
बरुन-पास, मनोज-धनु, हंसा । गज, केहरि, निज सुनत प्रसंसा ॥
श्रीफल, कनक-कदलि हरषाहीं । नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥
सुनि जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥
किमि सहि जाति अनख तोहि पाहीं । प्रिया ! बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी । मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥
आगे परा गीधपति देखा । सुमिरत राम-चरन जिन्ह रेखा ॥

दोहा

कर-सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर ।
निरखि राम-छबि-धाम-सुख विगत भई सब पीर ॥१५॥

१५–प्राकृत = साधारण जीव । स्रेनी = श्रेणी, पंक्ति । खंजन, शुक......कनक-कदलि = खंजन, शुक आदि उपमानों द्वारा श्रीसीताजी के नेत्र, नासिका, ग्रीवा आदि अंगों का, भक्ति-मर्यादा से, वर्णन किया गया है । सीताजी के अंगों के सामने जो उपर्युक्त उपमान तिरस्कृत किये जाते थे, आज वे सब सीता-हरण से प्रसन्न हो रहे हैं, क्योंकि न अब सीताजी हैं, न उन्हें लज्जित होने की आवश्यकता है । गीधपति = जटायु । रेखा = चिन्ह । परसेउ = स्पर्श किया, छुआ । बिगत भई = दूर हो गयी ।

चौपाई

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन-भव-भीरा॥
नाथ! दसानन यह गति कीन्ही। तेहि खल जनक-सुता हरि लीन्ही॥
लेइ दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥
राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहि बाता॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमहुँ मुकुत होइ स्रुति गावा॥
सो मम-लोचन-गोचर आगे। राखउँ देह नाथ! केहि लागे॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात करम निज तें गति पाई॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरन-कामा॥

दोहा

सीता-हरन तात जनि कहेउ पिता सन जाइ।
जो मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥ १६॥

चौपाई

गीध देह तजि धरि हरि-रूपा। भूषन बहु पटपीत अनूपा॥
स्यामगात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥

दोहा

अबिरल भगति माँगि बर गीध गयउ हरि-धाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥ १७॥

[रामचरितमानस]

१६—कुररी = जलाशय पर रहनेवाली एक चिड़िया, जिसे कुंज कहते हैं। लोचन-गोचर = दृष्टिगत। गति = मुक्ति। त = तो।

१७—नयन भरि बारी = आँखों में आँसू भरकर। अबिरल = निरंतर। क्रिया = मृतक-संस्कार।

राग गौरी

हेम को हरिन हनि फिरे रघुकुल-मनि
लषन ललित कर लिए मृग-छाल ।
आस्रम आवत चले, सगुन न भए भले,
फरके बाम बाहु लोचन बिसाल ॥
सरित-जल मलिन, सरनि सूखे नलिन,
अलि न गुंजत, कल कूजैं न मराल ।
कोलिनि-कोल-किरात जहाँ-तहाँ-बिलखात,
बन न बिलोकि जात खग-मृग-माल ।
तरु जे जानकी लाए, ज्याये हरि करि कपि
हेरे न हुँकरि, झरैं फल न रसाल ।
जे सुक सारिका पाले, मातु ज्यों ललकि लाले,
तेऊ न पढ़त, न पढ़ावैं मुनि-बाल ॥
समुझि सहमे सुठि, प्रिया तौ न आई उठि
तुलसी बिबरन परन-तृन-साल ।
औरै सो सब समाजु, कुसल न देखौं आजु,
गहवर हिय कहैं कोसलपाल ॥ १८ ॥

राग सोरठ

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहुँ अरघ-जल दीन्हों ॥

१८—हनि = मारकर । नलिन = कमल । मृग-माल = मृगों का समूह । लाए = लगाये थे । हरि = मृग । करि = हाथी । सारिका = मैना । ललकि लाले = उमंग से प्यार किया । सहमे = डरगये । बिबरन = फीका रंग । गहवर = ससोच, भरा हुआ ।

१९—गीध = जटायु । गोद करि लन्हिों = गोद में रख लिया ।

सुनहु लषन ! खगपतिहि मिले बन मैं पितु-मरन न जान्यौ ।
सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यौ ॥
बहु बिधि राम कह्यौ तनु राखन परम धीर नहिं डोल्यौ ।
रोकि प्रेम, अवलोकि बदन-बिधु बचन मनोहर बोल्यौ ॥
तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं ।
जाको नाम मरत मुनि दुरलभ तुमहिं कहाँ पुनि पैहौं ॥ १९ ॥

*

नीके कै जानत राम हियो हौं ।
प्रनतपाल, सेवक-कृपालु-चित, पितु-पटतरहिं दियो हौं ॥
त्रिजग-जोनि-गत गीध जनम भरि खाइ कुजंतु जियो हौं ।
महाराज सुकृती-समाज सब ऊपर आजु कियो हौं ॥
स्रवन बचन, मुख नाम, रूप चख, राम उछंग लियो हौं ।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै बियो हौं ॥ २० ॥

[गीतावली]

चौपाई

सबरी देखि रामु गृह आये । मुनि के बचन समुझि जिय भाये ॥
सरसिज-लोचन बाहु बिसाला । जटा मुकुट सिर, उर वनमाला ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । सबरी परी चरन लपटाई ॥
प्रेम-मगन मुख बचन न आवा । पुनि पुनि-पद-सरोज सिरु नावा ॥
सादर जल लेइ चरन पखारे । पुनि सुंदर आसन बैठारे ॥

पछु = पक्ष, सहायक, मित्र । भान्यौ = नष्ट कर डाला । न धोखो लैहौं = न चूकूंगा ।

२०–पटतर = उपमा । त्रिजग = तिर्यक्, टेढ़ा चलने वाले; पशु-पक्षी । सुकृती = पुण्यात्मा । चख = आँख । उछंग = गोद । बियो = दूसरा ।

२१–सरसिज = कमल ।

दोहा

कंद मूल फल सुरस अति दिये राम कहुँ आनि ।
प्रेम-सहित प्रभु खाये बारंबार बखानि ॥ २१ ॥

[रामचरितमानस]

राग सूहो

स्रवन सुनत चली आवत देखि लषन रघुराउ ।
सिथिल-सनेह कहै, 'है सपनो बिधि ! कैधौं सति भाउ' ॥
सति भाउ कै सपनो ? निहारि कुमार कोसलराय के ।
गहे चरन जे अघहरन-नत-जन-बचन-मानस-काय के ॥
लघु-भाग-भाजन उदधि उमग्यो लाभ सुख चित चायके ।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भाय के ॥
प्रेम-पट-पाँवड़े देत सुअरघ बिलोचन-बारि ।
आस्रम लै दिए आसन पंकज-पाँय पखारि ॥
पद्-पंकजात पखारि पूजे पंथ-स्रम-बिरहित भये ।
फल, फूल, अंकुर, मूल धरे सुधारि भरि दोना नये ॥
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये ।
फल चारिहू फल चारि दहि परचारि फल सबरी दये ॥
सुमन बरषि हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात ।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि-माँगि प्रभु खात ॥

२२—सतिभाउ = सत्यभाव, सच बात । नत = शरण में आया हुआ । काय = काया; शरीर से, कर्म से । भाजन = पात्र । आदरी = आदर किया । भाय = भाव, प्रेम । पंकजात = कमल । पंथ......भये = मार्ग का श्रम दूर हो गया । सराहि = प्रशंसा करके । फल चारिहू......दये = अर्थ, धर्म, काम आदि चारो फलों को शबरी के दिये चार फलों से जलाकर, शबरी को फल दिये । तात्पर्य यह कि शबरी को अर्थ, धर्म आदि चारों फलों से कहीं श्रेष्ठ फल दिये ।

प्रभु खात माँगत, देति सबरी राम भोगी जाग के।
पुलकत प्रसंसत सिद्ध सिव सनकादि भाजन भाग के॥
बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के।
सुनु समुझि तुलसी जानु रामहिं बस अमल अनुराग के ॥२२॥

[गीतावली]

चौपाई

बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संवादा॥
लछिमन! देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहिकर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग-मृग-बृन्दा। मानहुँ मोर करत हहिं निन्दा॥
हमहिं देखि मृग-निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनन्द करहु मृग-जाये। कंचन-मृग खोजन ए आये!॥

× × × × ×

देखहु तात बसंत सुहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा॥
बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिये जनु तानी॥
कदलि तालबर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ-कहुँ सुन्दर बिटप सुहाये। जनु भट बिलग-बिलग होइ छाये॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेंक महोख ऊँट बिसरा ते॥

भोगी जाग के = यज्ञ-भाग को खानेवाले। भाजन भाग के = भाग्य-भाजन, सौभाग्यवान्। अमल = निष्काम।

२३—छोभा = क्षुब्ध हुआ, मोहित हुआ। निकर = झुंड। पराहीं भागते हैं। मृग-जाये = मृग के बच्चे। बितान = मंडप, चँदोवा। बानैत = बाना फेकने वाला, बीर। भट = योद्धा। पिक = कोयल। ढेंक = सारस की जाति का एक पक्षी। महोख = पक्षी विशेष। बिसरा = खच्चर।

मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी ॥
तीतर लावक पद-चर-जूथा। बरनि न जाइ मनोज-बरूथा ॥
रथ गिरि-सिला दुंदुभी झरना। चातक बन्दी गुन-गन-बरना ॥
मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठी आई ॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हे। बिचरत सबहिं चुनौती दीन्हे ॥
लछिमन देखत काम-अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ॥

× × × × ×

पुनि प्रभु गये सरोबर-तीरा। पम्पा नाम सुभग गंभीरा ॥
संत-हृदय जस निरमल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ-तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार-गृह जाचक-भीरा ॥

दोहा

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिये जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥२३॥
सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।
यथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख-संजुत जाहिं ॥२४॥

चौपाई

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ॥

कीर=तोता। बाजी=घोड़ा। पारावत=परेवा, कबूतर। लावक=लवा। पदचर=पैदल सिपाही। मनोज=कामदेव। चातक=पपीहा। बंदी=भाट, विरुदावली गानेवाला। मुखर=बोलनेवाला। बयारि=हवा। बसीठी=दूती। चतुरंगिनी सेन=हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल से संयुक्त सेना। अनीका=सेना। लीका=मर्यादा, प्रमाण। बारी=पानी। चारी=सुंदर। उदार=दानी। जाचकभीरा=याचकों की भीड़। मर्म=भेद। मायाछन्न=माया से ढका हुआ, माया से छिपा हुआ।

२४—अगाध=गहरा। धर्मसील=धर्मात्मा।

२५—कल=सुंदर। मुखर=शब्दकारी।

बोलत जलकुक्कुट कलहंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥
चक्रवाक-बक-खग-समुदाई । देखत बनइ, बरनि नहिं जाई ॥
सुन्दर खग-गन-गिरा सुहाई । जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये । चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाये ॥
चंपक, बकुल, कदंब, तमाला । पाटल, पनस, पलास, रसाला ॥
नवपल्लव कुसुमित तरु नाना । चंचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मंद सुगन्ध सुभाऊ । संतत बहइ मनोहर बाऊ ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं । सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥

दोहा

फल-भर-नम्र बिटप सब रहे भूमि नियराइ ।
पर-उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ ॥ २५ ॥

चौपाई

देखि राम अति रुचिर तलावा । मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ॥
देखी सुन्दर तरु-वर-छाया । बैठे अनुज-सहित रघुराया ॥
तहँ पुनि सकल देव मुनि आये । अस्तुति करि निज धाम सिधाये ॥२६॥

× × × × ×

दोहा

दीप-सिखा-सम जुवति-जन, मन ! जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम-मद, करहि सदा सतसंग ॥२७॥

[रामचरितमानस]

चक्रवाक = चकवा । बक = बगुला । गिरा = ध्वनि । बकुल = मौलसिरी का पेड़ । पनस = कटहर । पलास = पलाश, ढाक । रसाल = आम । पल्लव = पत्ता । कुसुमित = फूले हुए । चंचरीक-पटली = भौंरों की पंक्ति । बाऊ = वायु । सरस रव = मधुर शब्द । फल-भर-नम्र = फलों के भार से झुके हुए। रहे नियराय = पास आ रहे हैं ।

२७-होसि = हो ।

किष्किन्धाकाण्ड

सोरठा

जरत सकल सुर-वृन्द, बिषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मन मंद, को कृपालु संकर-सरिस ॥ १ ॥

चौपाई

आगे चले बहुरि रघुराया । रिष्यमूक पर्वत नियराया ॥
तहँ रह सचिव-सहित सुग्रीवा । आवत देखि अतुल-बल-सींवा ॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना । पुरुष जुगल बल-रूप-निधाना ॥
धरि बटुरूप देखि तैं जाई । कहेसु जानि जिय सैन बुझाई ॥
पठये बालि होइ मन मैला । भागउँ तुरत तजउँ यह सैला ॥
बिप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ । माथ नाइ पूछत अस भयऊ ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा । छत्री-रूप फिरहु बन बीरा ॥
कठिन भूमि कोमल-पद-गामी । कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी ॥
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता । सहत दुसह बन आतप बाता ॥
की तुम्ह तीन देव महँ कोऊ । नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥

१—विषम गरल = दारुण विष; समुद्र में से निकला हुआ हलाहल ।

२—नियराया = पास आ गया । सीवा = सीमा । बटु = ब्रह्मचारी; ब्राह्मण । सैन बुझाई = आँख के इशारे से समझा कर । मृदुल = कोमल, सुकुमार । गाता = अंग । आतप = घाम । बाता = वात, वायु । तीन देव = ब्रह्मा, विष्णु और शिव ।

दोहा

जग-कारन तारन-भव भंजन-धरनी-भार।
की तुम्ह अखिल-भुवन-पति लीन्ह मनुज-अवतार ॥ २ ॥

चौपाई

कोसलेस दसरथ के जाये। हम पितु-बचन मानि बन आये ॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं खोजत हम तेही ॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निजकथा बुझाई ॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा! जाइ नहिं बरना ॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना ॥
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नाथहिं चीन्ही ॥
तव माया-बस फिरउँ भुलाना। तातें मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥
ता पर मैं रघुबीर-दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन-उपाई ॥
सेवक-सुत पति-मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे ॥
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निजतनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज-लोचन-जल सींचि जुड़ावा ॥
देखि पवन-सुत पति अनुकूला। हृदय हरष बीते सब सूला ॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई ॥
तेहि सन नाथ मइत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे ॥

अखिल = सर्व, समस्त।

३—जाये = पुत्र। उमा = पार्वती। रुचिर = सुंदर। दोहाई = शपथ, सौगंद। असोच = निश्चिंत। पोसे बनई = पोषण करते ही बनता है। उठाइ उर लावा = उठाकर छाती से लगा लिया। जुड़ावा = ठंडा किया, प्रसन्न किया, संतुष्ट किया। पति = स्वामी, श्रीरामजी। अनुकूला = कृपालु, प्रसन्न। सूला = कष्ट। मइत्री = मैत्री, मित्रता।

सो सीता कर खोज कराइहि । जहँ-तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥
एहि बिधि सकल कथा समुझाई । लिये दुश्रउ जन पीठि चढ़ाई ॥
जब सुग्रीव राम कहँ देखा । अतिसय जनम धन्य करि लेखा॥
सादर मिलेउ नाइ पद माथा । भेंटेउ अनुज-सहित रघुनाथा ॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती । करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती ॥

दोहा

तब हनुमंत उभय दिसि कहि सब कथा सुनाइ ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥ ३ ॥

चौपाई

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा । लछिमन-राम-चरित सब भाखा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी । मिलहि नाथ मिथिलेस-कुमारी ॥
मंत्रिन्ह-सहित इहां इक बारा । बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा ॥
गगन-पंथ देखी मैं जाता । परबस परी बहुत बिलखाता ॥
राम राम हा राम पुकारी । हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा । तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई । जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ॥४॥

[रामचरितमानस]

राग केदारा

भूषन बसन बिलोकत सिय के ।
प्रेम-बिबस मन, कंप पुलक तनु, नीरज-नयन नीर भरे पिय के ॥
सकुचत कहत, सुमिरि उर उमगत, सील सनेह सुगुन-गन तिय के ।

मरकट = बन्दर । पठाइहि = भेजेगा । उभय = दोनों । पावक = अग्नि । साखी = साक्षी, गवाह । दृढ़ाइ = मजबूती से, अटल रूप से ।

४—बीच = अंतर, भेद, कपट । बारी = जल, आँसू । बिलखाता = रोती-कलपती हुई । पट = वस्त्र ।

५—नीरज = कमल । तियके = स्त्री के, सीताजी के ।

स्वामि-दसा लखि लषन सखा कपि, पिघले हैं आँच माठ मानो घियके ॥
सोचत हानि मानि मन, गुनि-गुनि, गये निघटि फल सकल सुकिय के ।
बरने जामवंत तेहि अवसर, वचन बिबेक बीर रस बिय के ॥
धीर बीर सुनि समुझि परसपर, बल उपाय उघटत निज हिय के ।
तुलसिदास यह समउ कहे त कबि लागत निपट निठुर जड़ जियके ॥ ५ ॥

[गीतावली]

चौपाई

लेइ सुग्रीव संग रघुनाथा । चले चाप सायक गहि हाथा ॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा । गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ॥
सुनत बालि क्रोधातुर धावा । गहि कर चरन नारि समुझावा ॥
सुनु पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवाँ । ते दोउ बंधु तेज-बल-सीवाँ ॥
कोसलेस-सुत लछिमन रामा । कालहुँ जीति सकहिं संग्रामा ॥

दोहा

कहा बालि सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ ॥ ६ ॥

चौपाई

अस कहि चला महा अभिमानी । तृन-समान सुग्रीवहिं जानी ॥

माठ = मटका । गये निघटि = समाप्त हो गये, नष्ट हो गये । सुकिय = सुकृत, पुण्यकर्म । बिय = बीज ।

६—चाप-सायक = धनुष-बाण । सीवां = सीमा । भीरु = डरपोक । समदरसी = सबको एक दृष्टि से देखनेवाले । कदाचि = कदाचित्, शायद । सनाथ = कृतकृत्य ।

भिरे उभौ बाली अति तरजा। मुठिका मारि महाधुनि गरजा॥
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि-प्रहार वज्र-सम लागा॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥
एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रमतें नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव-सरीरा। तनु भा कुलिस, गई सब पीरा॥
मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥

दोहा

बहु छल बल सुग्रीव करि, हिय हारा भय मानि।
मारा बाली राम तब, हृदय माँझ सर तानि॥ ७॥

चौपाई

परा बिकल महि सर के लागे। पुनि उठि बैठि देखि प्रभु आगे॥
स्यामगात सिर जटा बनाये। अरुन नयन सर चाप चढ़ाये॥
पुनि-पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा॥
हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥
धरम-हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि व्याधा की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पियारा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥
अनुज-बधू, भगिनी, सुत-नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि-सिखावन करेसि न काना॥
मम-भुज-बल-आस्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

७—उभौ=दोनो बालि और सुग्रीव। तरजा=डांटा। मुठिका=घूँसा। प्रहार=चोट। मेली=डाल दी, पहना दी।

८—व्याधा=बधिक, बहेलिया, हत्यारा। अतिसय=अत्यंत। करेसि न काना=सुना नहीं, ध्यान नहीं दिया। आस्रित=अवलंबित, अधीन।

दोहा

सुनहु राम स्वामी सकल चलन चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अंतकाल गति तोरि॥ ८॥

चौपाई

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि-सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करउँ तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥
जनम-जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम-बल संकर कासी। देत सबहिं समगति अविनासी॥
मम लोचन-गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ९

छंद

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।
जेहि जोनि जनमउँ करमबस तहँ राम-पद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनय-बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये।
गहि बाहँ सुर-नर-नाह आपन दास अंगद कीजिए॥ १०॥

दोहा

राम-चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु-त्याग।
सुमन-माल जिमि कंठते गिरत न जानइ नाग॥ ११॥
लछिमन तुरत बोलाये, पुरजन बिप्र-समाज।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ जुवराज॥ १२॥

[रामचरितमानस]

गति = शरण।

९—परसेउ निज पानी = अपने हाथ से छू दिया, वात्सल्यवश सनाथ कर दिया। समगति = मुक्ति। लोचन-गोचर = दृष्टिगत। जोनि = योनि। तनय = पुत्र। कल्यान-प्रद = श्रेय देनेवाले, भला करनेवाले। नाह = नाथ, स्वामी।

११—नाग = हाथी। जुवराज = यौवराज्य पद।

दोहा

प्रथमहिं देवन्ह गिरि-गुहा राखी रुचिर बनाइ ।
राम कृपानिधि कछुक दिन बास करहिंगे आइ ॥ १३ ॥

चौपाई

सुंदर बन कुसुमित अति सोभा । गुंजत मधुप-निकर मधु-लोभा ॥
देखि मनोहर सैल अनूपा । रहे तहँ अनुज-सहित सुर-भूपा ॥
मधुकर-खग-मृग-तनु धरि देवा । करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा ॥
मंगलरूप भयउ बन तबतें । कीन्ह निवास रमापति जबतें ॥
फटिकसिला अति सुभ्र सुहाई । सुख-आसीन तहाँ दोउ भाई ॥
कहत अनुज सन कथा अनेका । भगति बिरति नृप-नीति बिबेका ॥
बरषा-काल मेघ नभ छाये । गर्जत लागत परम सुहाये ॥

दोहा

लछिमन देखहु मोर गन नाचत बारिद पेखि ।
गृही बिरति-रत हरष जस बिष्णु-भगत कहँ देखि ॥ १४ ॥

चौपाई

घन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रियाहीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमकि रही घन माहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥
बरसहिं जलद भूमि नियराये । जथा नवहिं बुध बिद्या पाये ॥
बुंद-अघात सहहिं गिरि कैसे । खल के बचन संत सह जैसे ॥

१३—गुहा = गुफा ।

१४—मधुप-निकर = भौंरों का समूह । मधु = पराग । रमापति = लक्ष्मी के पति; श्रीराम । सुभ्र = स्वच्छ, उज्ज्वल । आसीन = विराजमान । वारिद = मेघ । गृही = गृहस्थ । बिरति-रत = विरक्त ।

१५—दामिनि = बिजली । जथा = यथा, जैसे । बुध = पंडित । अघात = चोट ।

छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई
भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी
सिमिटि-सिमिटि जलभरहितलावा। जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा
सरिता-जल जलनिधि महँ जाई। होहि अचल जिमि जिव हरि पाई।

दोहा

हरित भूमि तृन-संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंडबाद तें गुप्त होंहिं सद्ग्रन्थ॥ १५॥

चौपाई

दादुर-धुनि चहुँ दिसा सुहाई। वेद पढ़हिं जनु बटु-समुदाई।
नवपल्लव भये बिटप अनेका। साधक-मन जस मिले बिबेका।
अर्क जवास पातबिनु भयऊ। जस सुराज खल-उद्यम गयऊ।
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महिं दूरी।
ससि-संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी।
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन कर मिला समाजा।
महावृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना।
देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं।
ऊसर बरसइ तृन नहिं जामा। जिमि हरि-जन-हियउपज नकामा।
बिबिध जंतु-संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।

तोराई = वेग से। ढाबर = गँदला। जलनिधि = समुद्र। संकुल = संपन्न, पूर्ण।

१६—दादुर = मेंढक। अर्क = आक, मदार। ससि-संपन्न = शस्य अर्थात् धान्य से भरी हुई। खद्योत = जुगनू। चक्रवाक = चकवा। पराहीं = भाग जाते हैं। जामा = उगा। भ्राजा = शोभित हो रही है।

जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रियगन उपजे ग्याना॥

दोहा

कबहुँ प्रबल मारुत चल जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कुपूत के ऊपजे कुल-सद्धर्म नसाहिं॥ १६॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥ १७॥

चौपाई

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषाकृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्त्य पंथ-जल सोखा। जिमि लोभहि-सोखइ संतोषा॥
सरिता-सर निर्मल जल सोहा। संत-हृदय जस गत-मद मोहा॥
रस-रस सूख सरित-सर-पानी। ममता-त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति-निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल-संकोच बिकल भइ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धन-हीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ-कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जसि मोरी॥

मारुत = हवा।

१७—निबिड़ = सघन। पतंग = सूर्य।

१८—कृत = की, किया। जिमि लोभहिं......संतोषा = जैसे संतोष आजाने पर लोभ का लेश भी नहीं रहता है। गत-मद-मोहा = अहंकार और अज्ञानरहित। रस-रस = धीरे-धीरे। रेनु = रेणु, धूल। जल-संकोच = पानी का कम होना। इव = समान। सारदी = शरद ऋतु की।

दोहा

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरि–भगति पाइ स्रम तजहिं आस्रमी चारि ॥ १८ ॥

चौपाई

सुखी मीन जे नीर अगाधा । जिमि हरि-सरन न एकउ बाधा ॥
फूले कमल सोह सर कैसे । निर्गुन ब्रह्म सगुन भयेउ जैसे ॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा । सुंदर खग-रव नाना रूपा ॥
चक्रवाक-मन दुख निसि पेखी । जिमि दुरजन पर-संपति देखी ॥
चातक रटत तृषा अति ओही । जिमि सुख लहइ न संकर-द्रोही ॥
सरदातप निसि ससि अपहरई । संत-दरस जिमि पातक टरई ॥
देखि इन्दु चकोर-समुदाई । चितवहिं जिमि हरि-जन हरिपाई ॥
मसक-दंस बीते हिम-त्रासा । जिमि द्विज-द्रोह किये कुल-नासा ॥

दोहा

भूमि जीव-संकुल रहे, गये सरद रितु पाइ ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि संसय-भ्रम-समुदाइ ॥ १९ ॥

[रामचरितमानस]

राग केदारा

प्रभु कपि-नायक बोलि कह्यो है ।
बरषा गई, सरद आई, अब लगि नहिं सिय-सोधु लह्यो है ॥
जा कारन तजि लोक-लाज तनु राखि बियोग सह्यो है ।

१९—अगाधा = गहरा । निर्गुण = मायात्मक सत्व, रज, तमोगुणों से रहित । सगुण = दिव्यगुणसंयुक्त । मुखर = शब्द करनेवाले । चातक = पपीहा । तृषा = प्यास । सरदातप = शरद का घाम । इंदु = चंद्रमा । मसक = मच्छर । दंस = काटना ।

२०—कपिनायक = सुग्रीव ।

ताको तौ कपिराज ! आज लगि कछु न काज निबह्यो है ॥
सुनि सुग्रीव सभीत नमित मुख उतरु न देन चह्यो है ।
आइ गए हरि-जूथ देखि उर पूरि प्रमोद रह्यो है ॥
पठए बदि-बदि अवधि दसहुँ दिसि, चले बलु सबनि गह्यो है ।
तुलसी सिय लगि भव-दधि-निधि मनु फिर हरि चहत मह्यो है २०

[गीतावली]

चौपाई ।

निज निज बल सब काहू भाषा । पार जाइ कर संसय राखा ॥
जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा । नहिं तनु रहा प्रथम-बल-लेसा ॥
जबहिं त्रिविक्रम भयउ खरारी । तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी ॥

दोहा

बलि बाँधत प्रभु बाढेउ सो तनु बरनि न जाइ ।
उभय घरी महँ दीन्ही सात प्रदच्छिन धाइ ॥ २१ ॥

चौपाई

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा । जिय संसय कछु फिरती बारा ॥
जामवंत कह तुम्ह सब लायक । पठइय किमि सबही कर नायक ॥
कहइ रिच्छपति सुनु हनुमाना । का चुप साधि रहेउ बलवाना ॥
पवन-तनय-बल पवन-समाना । बुधि-बिबेक-बिग्यान - निधाना ॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं । जो नहिं तात होइ तुम्ह पाहीं ॥
राम-काज लगि तव अवतारा । सुनतहिं भयउ पर्वताकारा ॥

सभीत = डरा हुआ । नमित = नीचे को झुका हुआ । उतरु = उत्तर, जवाव ।
हरि-जूथ = बंदरों के झुंड । भव-दधि-निधि = संसाररूपी समुद्र ।

२१—जरठ = बुड्ढा । रिछेसा = रीछों के राजा जाम्बवान् । त्रिविक्रम = वामन भगवान् ।
प्रदच्छिन = प्रदक्षिणा, परिक्रमा ।

२२—नायक = नेता, स्वामी । तुम्ह पाहीं = तुमसे, तुम्हारे द्वारा ।

कनक-बरन-तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंह-नाद करि बारहिं बारा। लीलहि नाँघउँ जलधि अपारा॥
सहित सहाय रावनहिं मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावन दीजेहु मोही॥
एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज-भुज-बल राजिव-नयना। कौतुक लागि संग कपि-सैना॥

छंद

कपि-सैन-संग सँहारि निसिचर राम सीतहिं आनिहैं।
त्रैलोक-पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर-पद-पाथोज-मधुकर दास तुलसी गावई॥ २२॥

[रामचरितमानस]

कवित्त

जब अंगदादिन की गति मति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ,
चितवत चहूँ ओर, औरनु को कलु गो॥

कनक-वरन = सोने के ऐसा रंग। अपर = दूसरा। लीलहि = खेल से ही। सहाय = सेना। त्रिकूट = एक पहाड़, जिसपर लंका बसती थी। आनउँ उपारी = उखाड़ लाऊँ। त्रैलोक-पावन = तीनो लोक को पवित्र करनेवाला। परम पद = मोक्षपद। पाथोज = कमल।

२३—पलु = पल। गो = गया। सकेलि = केलि सहित, खेल से। कलु = कल,

तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो,
कोल कलमल्यो, अहि कमठ को बलु गो।
चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो ॥ २३ ॥

[कवितावली]

सुंदरकांड

दोहा

निज-पद नयन दिये मन, राम-चरन महँ लीन।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ॥ १ ॥

चौपाई

तरु-पल्लव महँ रहा लुकाई। करइ विचार करउँ का भाई ॥
तेहि अवसर रावण तहँ आवा। संग नारि वहु किये बनावा ॥
बहु बिधि खल सीतहिं समुझावा। साम दाम भय भेद देखावा ॥
तृन धरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥

चैन। रसातल=पाताल । कोल= वाराह । कलमल्यो=व्याकुल हुआ। अचलु=पहाड़।

१–निज......दिये=परों की ओर, चिंता से, देखती हुई।

२–रहा लुकाई=छिप गया। साम......भेद=राजनीति के मुख्य चार भेद।

सुनु दसमुख खद्योत-प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥
अस मन समुझि कहति जानकी। खल, सुधि नहिं रघुबीर-बानकी॥
सठ, सूने हरि आनेहि मोही। अधम! निलज्ज! लाज नहिं तोही॥

दोहा

आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान॥ २॥

चौपाई

सीता, त मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहि त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि, होत नत जीवन-हानी॥
स्यामसरोज-दाम सम सुंदर। प्रभु-भुज करि-कर-सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा॥
चद्रहास, हरु मम परितापं। रघुपति-बिरह-अनल-संजातं॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मय-तनया कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥
मास दिवस महँ कहा न माना। तब मैं मारौं काढ़ि कृपाना॥

दोहा

भवन गयउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिनि-बृन्द।
सीतहिं त्रास दिखावहिं, धरहिं रूप बहु मंद॥ ३॥

खद्योत = जुगनू। नलिनी = कमलिनी। परुष = कठोर। असि = तलवार।
३-कृत = किया। कृपाना = कृपाण, तलवार। सपदि = जल्दी। न त = नहीं तो। दाम = माला। करि-कर = हाथी की सूँड़। सो भुज......मोरा = दो बातें हैं— या तो श्री राम जी से जाकर मिलूँगी, या तेरी तलवार से कट मरूँगी। निसित = तेज। मय-तनया = रावण की स्त्री मंदोदरी। मंद = दुष्ट।

जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच ॥ ४ ॥

चौपाई

त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु, बिपति-संगिनि तैं मोरी ॥
तजहुँ देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरह अब सहि नहिं जाई ॥
आनि काठु रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहु लगाई ॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनइ को स्रवन सूल सम बानी ॥
सुनत बचन पद गहि समुझायेसि। प्रभु-प्रताप-बल-सुजसु सुनायेसि॥
निसि न अनल मिलु सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटहि न सूला॥
देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा ॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी ॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥
नूतन किसलय अनल-समाना। देहि अगिनि मम करहि निदाना ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता ॥

सोरठा

कपि कर हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक-अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥ ५ ॥

चौपाई

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम-नाम-अंकित अति सुंदर ॥

पोच = नीच।

४—अनल = आग। पावक = आग। स्रवत = चूता है, गिराता है, असत्य नाम......सोका = तेरा नाम 'अशोक' है, फिर तू मेरा शोक दूर क्यों नहीं करता? नूतन किसलय = नयी कोंपल। निदाना = उपाय, अंत। मुद्रिका = अँगूठी।

चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदय अकुलानी॥
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें नहिं असि रचि जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥
रामचंद्र-गुन बरनइ लागा। सुनतहिं सीताकर दुख भागा॥
लागी सुनइ स्रवन मन लाई। आदिहुँ तें सब कथा सुनाई॥
स्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। कहि सो प्रगट होत किन भाई॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिर बैठी मन बिसमय भयऊ॥
रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुना-निधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम कहँ सहिदानी॥
हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी॥
बूड़त बिरह-जलधि हनुमाना। भयउ तात मो कहँ जलयाना॥
अब कहु कुशल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुखभवन खरारी॥
कोमलचित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥
सहज बान सेवक-सुख-दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम-मृदु-गाता॥
बचन न आव नयन भरि बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥
मातु कुसल प्रभु-अनुज समेता। तव दुख-दुखी सु-कृपा-निकेता॥
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम्ह तें प्रेम राम के दूना॥

दोहा

रघुपति कर संदेस अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर॥ ६॥

६—विषाद = दुःख। स्रवनामृत = कान में अमृत के समान मधुर लगनेवाली। बिसमय = विस्मय, शंका। सहिदानी = निशानी। पुलकावलि = रोमांच। जलयाना = नौका। बानि = स्वभाव। निपट = बिल्कुल। ऊना = कम। गदगद भयउ = गला भर आया।

चौपाई

कहेउ राम, बियोग तव सीता। मो कहँ सकल भये बिपरीता॥
नव-तरु-किसलय मनहुँ कृसानू। काल-निसा-समनिसि.ससि भानू॥
कुबलय-बिपिन कुंत-बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जेहि हित रहे करत तेइ पीरा। उरग-स्वास सम त्रिबिध समीरा॥
कहे ते कछु दुख घाटि न होई। काहि कहउँ यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मन मोरा॥
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति-रस एतनहिं माहीं॥
प्रभु-संदेस सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन-सुधि नहिं तेही॥
कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक-सुख-दाता॥
उर आनहु रघुपति-प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन सहित अइहहिं रघुबीरा॥
निसिचर मारि तोहि लेइ जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जस गैहहिं॥

× × × ×

आसिष दीन्हि राम-प्रिय जाना। होहु तात बल-सील-निधाना॥
अजर अमर गुन-निधि सुत होहू। करहिं बहुत रघुनायक छोहू॥
'करहिं कृपा प्रभु' अस सुनि काना। निर्भर प्रेममगन हनुमाना॥
बार बार नायेसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥

७—विपरीता=प्रतिकूल, उलटा, दु:खदायी। कृसानू=कृशानु, आग। ससि भानू=चंद्रमा सूर्य की तरह मालूम होता है। कुबलय=कमल, कोईं। कुंत=भाला, काँटा। तपत=तप्त, गरम। उरग=साँप। तत्व=रहस्य। कदराई=कातरता, अधीरता। गैहहिं=गावेंगे। अजर=जो कभी वृद्ध न हो। छोहू=स्नेह। निर्भर=पूर्ण। कीसा=बंदर। अमोघ=सफल, सार्थक। रूखा=पेड़।

सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥

दोहा

देखि बुद्धि-बल-निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति-चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु॥ ७॥

[रामचरितमानस]

राग केदारा

देखी जानकी जब जाइ।
परम धीर समीर-सुत के प्रेम उर न समाइ॥
कृस सरीर सुभाय-सोभित, लगी उड़ि-उड़ि धूलि।
मनहुँ मनसिज मोहनी-मनि गयो भोरे भूलि॥
रटति निसिबासर निरंतर राम राजिवनैन।
जात निकट न बिरहिनी-अरि अकनि ताते बैन॥
नाथ के गुन-गाथ कहि कपि दई मुदरी डारि।
कथा सुनि उठि लई कर वर रुचिर नाम निहारि॥
हृदय हरष विषाद अति पति मुद्रिका पहिचानि।
दास तुलसी दसा सो केहि भाँति कहै बखानि?॥ ८॥

हौं रघुबंस-मनि को दूत।
मातु मानु प्रतीति जानकि! जानि मारुत-पूत॥
मैं सुनी बातें असैली जे कहीं निसिचर नीच।

रजनीचर = राक्षस। सुभट = बड़ा योद्धा।

८—समीर-सुत = हनुमान। कृस = दुर्बल। सुभाय-सोभित = स्वभाव से ही, बिना ही शृंगार के सुंदर। मनसिज = कामदेव। भोरे = धोखे से। बिरहिनी-अरि = कामदेव। अकनि = सुनकर।

९—प्रतीति = विश्वास। असैली = नीतिविरुद्ध।

क्यों न मारै गाल बैठ्यौ काल-डाढ़नि बीच ॥
निदरि अरि रघुबीर-बल लै जाउँ जौं हठि आज ।
डरौं आयसु-भंग तें, अरु बिगरि है सुर-काज ॥
बाँधि बारिधि, साधि रिपु दिन चारि में दोउ बीर ।
मिलहिंगे कपि-भालु-दल सँग, जननि उर धरु धीर ॥
चित्रकूट-कथा कुसल कहि सीस नायो कीस ।
सुहृद सेवक नाथ को लखि दई अचल असीस ॥
भये सीतल स्रवन तन मन सुने बचन-पियूष ।
दासतुलसी रही नयननि दरसही की भूख ॥ ९ ॥

सत्य बचन सुनि मातु जानकी !

जन के दुख रघुनाथ दुखित अति, सहज प्रकृति करुनानिधान की ॥
तुव बियोग-संभव दारुन दुख, बिसरि गई महिमा सुबान की ।
नतु कहु कहँ रघुपति-सायक-रवि, तम-अनीक कहँ जातुधान की ॥
कहँ हम पसु साखामृग चंचल, बात कहौं मैं विद्यमान की ।
कहँ हरि सिव-अज-पूज्य ज्ञानघन, बिसरति नहिं वह लगनि कानकी॥
तुव दरसन, सँदेस सुनि हरिको बहुत भई अवलंब प्रानकी ।
तुलसिदास गुन सुमिरि राम के प्रेम-मगन नहिं सुधि अपानकी॥१०॥

[गीतावली]

गाल मारे = गप लगावे । वारिधि = समुद्र । चित्रकूट-कथा = जयंत की कथा की ओर संकेत है । कीस = बंदर ।

१०-संभव = उत्पन्न । नतु = नहीं तो । अनीक = सेना । जातुधान = राक्षस । साखामृग = बंदर । विद्यमान की = वर्त्तमान समय की, हाल ही की । अज = ब्रह्मा । ज्ञानघन = ज्ञानपुंज, ज्ञानस्वरूप । अपान = अपनापन, शरीर की सुधि ।

बरवा छंद

[सीता–बचन]—बिरह–आगि उर ऊपर जब अधिकाइ ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिन देहिं बुझाइ ॥
डहकु न, है उजियरिया निसि नहिं, घाम ।
जगत जरत अस लागु मोहि बिनु राम ॥
अब जीवन कै है कपि आस न कोइ ।
कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ ॥ ११ ॥

[बरवै रामायण]

कवित्त

बासव–बरुन–बिधि–बन तें सुहावनो
दसानन को कानन बसंत को सिंगारु सो ।
समय पुराने पात परत डरत बात,
पालत, ललात रति–मारु को बिहारु सो ॥
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव
राग–बस भो बिरागी पवन-कुमारु सो ।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक तर
तुलसी बिलोक्यो सो तिलोक-सोक-सारु सो ॥१२॥

*

माली मेघमाल बनपाल बिकराल भट
नीके सब काल सींचै सुधासार नीर को ।

११–उजियरिया······घाम = यह चाँदनी रात नहीं है, यह तो दिन की धूप है । कनगुरिया = छोटी उँगली । कनगुरिया······कंकन = दुर्बलता का आधिक्य दिखाया गया है ।

१२–बासव = इंद्र । बरुन = वरुण, जल-देवता । कानन = उपवन । बात = पवन । रति = कामदेव की स्त्री । मारु = मार, कामदेव । बनाव = सजावट । बापिका = बावड़ी । तड़ाग = तालाब ।

मेघनाद तें दुलारो प्रान त पियारो बाग,
अति अनुराग जिय जातुधान धीर को ॥
तुलसी सो जानि सुनि, सीय को दरस पाइ
पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को ।
विद्यमान देखत दसानन को कानन सो
तहस-नहस कियो साहसी समीर को ॥१३॥

[कवितावली]

चौपाई

दसमुख-सभा दीखि कपि जाई । कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ॥
देखि प्रताप न कपि-मन संका । जिमि अहिगन महँ गरुड़ असंका॥
कह लंकेस कवन तैं कीसा । केहि के बल घालेहि बन खीसा ॥
मारे निसिचर केहि अपराधा । कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा ॥
सुन रावन ! ब्रह्माण्ड-निकाया । पाइ जासु बल बिरचति माया ॥
जाके बल बिरंचि हरि ईसा । पालत, सृजत, हरत दससीसा ॥
जा बल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरि कानन ॥
धरे जो बिबिध देह सुरत्राता । तुम्ह से सठन्ह सिखावन-दाता॥
हर-कोदंड कठिन जेहि भंजा । तोहि समेत नृप-दल-मद गंजा ॥

दोहा

जाके बल-लव-लेस तें, जितेहु चराचर-झारि ।
तासु दूत मैं, जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि ॥ १४ ॥

१३—बजाइ = घोषित करके, हुंकार देकर । तहस-नहस कियो = तोड़-ताड़ कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया ।

१४—घालेहि = नष्ट किया, उजाड़ डाला । बाधा = शंका, भय । निकाया = समूह । सृजत = रचता है । सुरत्राता = देवों का रक्षक । हर-कोदंड = शिवजी का धनुष । गंजा = नष्ट किया । झारि = समूह, पूरा ।

चौपाई

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत-भय-हारी॥
जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बैरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै॥

दोहा

प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि।
गये सरन प्रभु राखिहहिं, सब अपराध बिसारि॥ १५॥
मोह-मूल बहु सूल-प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपासिंधु भगवान॥ १६॥

चौपाई

सुनि कपि-बचन बहुत खिसियाना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाये। सचिवन्ह सहित बिभीषन आये॥
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति-बिरोध, न मारिय दूता॥
आन दंड कछु करिय गोसाईं। सबही कहा मंत्र भल भाई॥
सुनत बिहँसि बोला दसकंधर। अंगभंग करि पठइय बंदर॥

दोहा

कपि कै ममता पूँछ पर सबहिं कहेउ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥ १७॥

चौपाई

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहिं लेइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हेसि बहुत बड़ाई। देखेउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥

देखहु...... विचारी = अपने उच्च कुल की ओर देखो; तुम पुलस्त्य ऋषि के वंशज हो, यह क्या नीच काम करते हो?

१६—मोहमूल = अज्ञान को उत्पन्न करनेवाला। तम = अंधकार-रूप।

१७—बहूता = बहुत। पट = कपड़ा।

जातुधान सुनि रावन-बचना। लागे रचइ मूढ़ सोइ रचना॥
रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आये पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछि पजारी॥
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता॥
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक-अटारी। भईं सभीत निसाचर-नारी॥
देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ि धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥
'तात! मातु! हा' सुनिय पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरे सुर कोई॥१८॥

[रामचरितमानस]

कवित्त

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
"जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे॥
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगावो जागि जागि रे"।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"बार बार कह्यौ पिय कपि सों न लागि रे"॥१९॥

*

१८—पजारी = जलाई। निबुकि = निकल कर, छूट कर। अटारी = अट्टालिका।
१९—बुबुक = हूँक कर। बुबुकारी = हूँक, हाँक। निकेत = घर। भामिनी = स्त्री। छोरा = छोकड़ा, बच्चा। महिष = भैंसा। वृषभ = बैल।

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं पराति, गति जानि गजचालि है।
बसन बिसारैं, मनि भूषन सँभारत न
आनन सुखाने कहैं "क्योंहू कोऊ पालिहै?"
तुलसी मँदोवै मींजि हाथ, धुनि माथ कहै
"काहू कान कियो न मैं कह्यों केतो कालि है।"
बापुरो बिभीषन पुकारि बार बार कह्यो
"बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै" ॥ २० ॥

*

रावन की रानी जातुधानी बिलखानी कहैं
"हा हा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों।
काहे मेघनाद, काहे काहे रे महोदर! तू
धीरज न देत, लाइ लेत क्यों न हाथ सों॥
काहे अतिकाय, काहे काहे रे अकंपन!
अभागे तिय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ सों।
तुलसी बराय बादि सरल तें बिसाल बाहैं,
याही बल बालिसो! बिरोध रघुनायक सों!" ॥२१॥

*

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं न बिलोकि बेष केसरी-कुमार को।

२०—परानी जाति हैं = भागी जा रही हैं। मंदोवै = मंदोदरी। मींजि = मल कर। बापुरो = बेचारा। घालिहै = नष्ट करेगा।

२१—बीसबाहु दसमाथ = बीस हाथ और दस सिर वाला रावण। महोदर, मेघनाद, अतिकाय, अकंपन = बड़े-बड़े योद्धा राक्षस। बादि = व्यर्थ। बालिस = मूर्ख, छोकड़ा। बिरोध = वैर।

२२—डाढ़त = जलती हुई। केसरी-कुमार = केशरी नामके वानर के पुत्र हनुमान्।

मींजि मींजि हाथ, धुनैं माथ दसमाथ-तिय,
तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को ॥
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो त न काढ़ो,
जिय की परी सँभार, सहन भँडार को ?
खीझति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनाद,
'बयो लुनियतु सब याही दाढ़ीजार को' ॥२२॥

*

लपट कराल ज्वाल-जाल-माल दहूँ दिसि,
धूम-अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे ?
पानी को ललात, बिललात जरे गात जात,
" परे पाइमाल जात, भ्रात तू निबाहि रे ॥
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ तू पराहि, बाप
बाप तू पराहि, पूत पूत तू पराहि रे । "
तुलसी बिलोकि लोग ब्याकुल बिहाल कहैं
"लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे" ॥२३॥

*

एक करै धौज, एक कहै काढ़ौ सौंज
एक औंजि पानी पीकै कहै 'बनत न आवनो ।'
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े, एक
देखत हैं ठाढ़े, कहैं ' पावक भयावनो ' ॥

तिलौ = एक तिल भी । अगार = आगार, घर । डाढ़ो = जल गया । लुनियतु है = काटते हैं, पा रहे हैं ।

२३-दहूँ = दसों । बिललात = बिलख रहे हैं । पाइमाल जात = नष्ट हुए जाते हैं । पराहिं = भाग जा । चख = आँख ।

२४-धौज = दौड़धूप । सौंज = सामग्री ।

तुलसी कहत एक "नीके हाथ लाए कपि
अजहूँ न छाँड़ै बाल गाल को बजावनो।
धाओ रे, बुझाओ रे, कि बावरे हौ रावरे, या
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो" ॥२४॥

*

पान पकवान विधि नाना को, सँधानो, सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखार ही।
कनक-किरीट कोटि, पलँग, पिटारे पीठ
काढ़त कहार, सब जरे भरे भार ही॥
प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै,
झपट लपट भरै भवन भँडार ही।
तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो,
हाथी हथिसार जरे, घोर घोरसार ही ॥२५॥

[कवितावली]

चौपाई

उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मँझारी॥

दोहा

पूँछि बुझाइ खोइ स्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनक-सुता के आगे ठाढ़ भयउ कर जोरि॥ २६॥

गाल को बजावनो = गप का हाँकना। औंजि = घडे में से उड़ेल कर, ऊमस से घबरा कर। सावनो = सावन मास की मूसलधार वर्षा।

२५—बखार = अनाज रखने का स्थान। अगार = आगार, घर।

चौपाई

मोहि मातु दीजै कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥
कहेउ तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीनदयालु बिरद्-संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥
तात सक्र-सुत-कथा सुनायहु। बान-प्रताप प्रभुहिं समुझायहु॥
मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावा॥
कहु कपि केहि बिधि राखउँ प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतल भइ छाती। पुनि मो कहँ सोइ दिनु सोइ राती॥

दोहा

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरज दीन्ह।
चरनकमल सिरु नाइ कपि गवँनु राम पहँ कीन्ह॥ २७॥

[रामचरितमानस]

राग मारू

तौलौं, मातु! आपु नीके रहिबो।
जौलौं हौं ल्यावौं रघुबीरहिं, दिन दस और दुसह दुख सहिबो॥
सोखि कै, खेत कै, बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो।
प्रबल दनुज-दल दलि पल आध में, जीवत दुरित-दसानन गहिबो॥
बैरि-बृन्द-बिधवा बनितनिको देखिबो बारि-बिलोचन बहिबो।
सानुज सेन समेत स्वामि-पद निरखि परम मुद मंगल लहिबो।
लंकदाह उर आनि मानिबो साँचु राम-सेवक को कहिबो।
तुलसी प्रभु सुर सुजस गाइहैं, मिटि जैहै सबको सोचु-दव-दहिबो॥२८॥

[गीतावली]

२७—चूड़ामणि = चोटी में गूथने की मणि। बिरुद संभारी = प्रतिज्ञा निभानेवाले। सक्रसुत = इंद्र का पुत्र जयन्त। गवँनु = गमन, जाना।

२८—बोहित = जहाज़। बारि-बिलोचन = बिलोचन-बारि, आँसू। सानुज = अनुज लक्ष्मण के साथ। दनुज = राक्षस। दुरित = पाप, कष्ट। दव = अग्नि।

कवित्त

" दिवस छ सात जात जानिबे न, मातु धरु
धीर, अरि–अंत की अवधि रही थोरिकै।
बारिधि बँधाय सेतु ऐहैं भानु–कुल–केतु,
सानुज कुसल कपि–कटक बटोरि कै " ॥
बचन बिनीत कहि सीता को प्रबोध करि
तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।
" जै जै जानकीस दशशीस–करि–केसरी "
कपीस कूद्यो बातघात बारिधि हलोरि कै ॥ २९ ॥

*

आयो हनुमान प्रानहेतु, अंकमाल देत,
लेत पग–धूरि एक चूमत लँगूल हैं।
एक बूझै बार बार सीय–समाचार कहे,
पवन–कुमार भो बिगत–स्रम–सूल हैं ॥
एक भूखे जानि आगे आने कंद मूल फल,
एक पूजे बाहुबल तोरि मूल फूल हैं।
एक कहैं तुलसी ' सकल सिधि ताके जाके
कृपापाथ-नाथ सीतानाथ सानुकूल हैं' ॥३०॥

[कवितावली]

२९–भानु-कुल-केतु = सूर्यवंश में श्रेष्ठ, श्रीराम । कटक = सेना । त्रिकूट = एक पहाड़, जिस पर लंका बसी थी। डफोरिकै = हाँक देकर। करि = हाथी।

३०–प्रानहेतु = प्राण बचानेवाला; यदि हनुमान् काम करके न लौट आते, तो सुग्रीव अपने हाथ से सब का, प्रतिज्ञानुसार, बध कर डालते। लँगूल = पूँछ। बिगत = रहित। कृपा-पाथ-नाथ = कृपा के समुद्र। सानुकूल = कृपालु।

चौपाई

पवन-तनय के चरित सुहाये। जामवंत रघुपतिहि सुनाये॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाये। पुनि हनुमान हरषि हिय लाये॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

दोहा

नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज-पद-जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट ॥३१॥

चौपाई

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनक-कुमारी॥
अनुज समेत गहेउ प्रभु-चरना। दीनबंधु प्रनतारति-हरना॥
"मन-क्रम-बचन चरन-अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी॥
अवगुन एक मोर मैं जाना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥
बिरह-अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जाइ छन माह सरीरा॥
नयन स्रवहिं जल निज हित लागी। जरइ न पाव देह बिरहागी।"
सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहे भलि दीनदयाला॥

दोहा

निमिष-निमिष करुनानिधि, जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिय, भुज-बल खल-दल जीति ॥३२॥

३१—जंत्रित = यंत्रित, ताला लगा हुआ है। बाट = रास्ता।

३२—बारि = जल, आँसू। प्रणतारतिहरना = शरण में आये हुए के दुःख को नाश करनेवाले। क्रम = कर्म से। पयाना = प्रयाण, कूच। नयन......लागी = नेत्र अपने स्वार्थ से अश्रु-जल बरसा कर विरहाग्नि को बुझा देते हैं। स्वार्थ यह है कि एक-न-एक दिन तो श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन होगा ही। निमिष = पल।

चौपाई

सुनि सीता-दुख प्रभु सुख-अयना। भरि आये जल राजिव-नयना॥
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रतिउपकार करउँ का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
पुनि पुनि चितव कपिहि सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥

दोहा

सुनि प्रभु-बचन बिलोकि मुख, गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि-त्राहि भगवंत॥ ३३॥

[रामचरितमानस]

राग केदारा

रघुकुल-तिलक, वियोग तिहारे।
मैं देखी जब जाइ जानकी मनहुँ बिरह-मूरति मन मारे॥
चित्र से नयन, गढ़े से चरन कर, मँढ़े से स्रवन नहिं सुनत पुकारे।
रसना रटति नाम, कर सिर चिर रहै, नित निज-पद-कमल निहारे॥
दरसन-आस-लालसा मनमहँ राखे प्रभु-ध्यान प्रान-रखवारे।
तुलसिदास पूजति त्रिजटा नीके रावरे गुन-गन-सुमन सँवारे॥३४॥

राग केदारा

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि! जानौं कछु, पै सकौं कहि हौं न॥

३३—उरिन = उऋण, जिसने ऋण चुका दिया है। त्राता = रक्षक। त्राहि = रक्षा करो; संस्कृत में इस शब्द का शुद्धरूप 'त्रायस्व' है, पर हिंदी में 'त्राहि' प्रचलित हो गया है।

३४—चिर = सदा। त्रिजटा = लंका की एक राक्षसी जो सीताजी के साथ सहानुभूति रखती थी। गुन-गन-सुमन = गुण-समूह रूपी फूल।

लोचन-नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचनन-कोन।
'हा धुनि'-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन॥
जेहि बाटिका बसति तहँ खगमृग तजि-तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहुँ तेहि मग पगु न धर्‍यो तिहुँ पौन॥
तुलसिदास प्रभु! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस दूरि कीजै दुख हौ, तुम आरत-आरति-दौन॥ ३५॥

[गीतावली]

बरवै

सिय-बियोग-दुख केहि बिधि कहउँ बखानि।
फूल-बान तें मनसिज बेधत आनि॥
सरद चाँदनी सँचरत चहुँ दिसि आनि।
बिधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि॥ ३६॥

[बरवै रामायण]

चौपाई

कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु-दूत बिसेखा॥
ताहि राखि कपीस पहिं आये। समाचार सब ताहि सुनाये॥

३५—कृपिन = कृपण, कंजूस। खगी = पक्षिणी, चिड़िया। हा धुनि......मौन = मौनरूपी बहेलिये ने 'हाय-हाय' रूपी चिड़िया को लज्जारूपी पिंजड़े में बंद कर रखा है, अर्थात् वे मौन साधे रहती हैं, लज्जा के मारे 'हाय-हाय' तक नहीं करती हैं। पुरातन = प्राचीन। भोरेहु = धोखे भी। आरति-दौन = दुःख का दमन अर्थात् नाश करनेवाले।

३६—मनसिज = कामदेव। सँचरत = फैलती है। विधुहि......जानि = विरह में वे चंद्रमा को कुल-गुरु (सूर्यवंश के आदिपुरुष) समझ कर उसकी वंदना किया करती हैं, शीतल चंद्रमा उनकी दृष्टि में प्रचंड सूर्य है।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । आवा मिलन दसानन-भाई ॥
कह प्रभु सखा बूझिये काहा । कहइ कपीस सुनहु नरनाहा ॥
जानि न जाइ निसाचर-माया । कामरूप केहि कारन आया ॥
भेद हमार लेन सठ आवा । राखिअ बाँधि मोहि अस भावा ॥
सखा नीति तुम्ह नीक बिचारी । मम पन सरनागत-भय-हारी ॥

दोहा

सरनागत कहँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावँर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि ॥ ३७ ॥

चौपाई

कोटि-बिप्र-बध लागहि जाहू । आये सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहिं जबहीं । जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥
जौं सभीत आवा सरनाई । रखिहउँ ताहिं प्रान की नाईं ॥

दोहा

उभय भांति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत ।
जय कृपालु कहि कपि चले, अंगद-हनू-समेत ॥ ३८ ॥

चौपाई

सादर तेहि आगे करि बानर । चले जहाँ रघुपति करुनाकर ॥
दूरिहिं तें देखे दोउ भ्राता । नयनानंद-दान के दाता ॥
बहुरि राम छबि-धाम बिलोकी । रहेउ ठठकि एकटक पल रोकी ॥
भुज प्रलंब कंजारुन-लोचन । स्यामल गात प्रनत-भय-मोचन ॥

३७–कामरूप = जैसा चाहे वैसा रूप धारण कर लेनेवाला । पन = प्रण, प्रतिज्ञा । पावँर = पामर, पापी ।

३८–हनू = हनुमान् ।

३९–प्रलंब = बड़े लंबे । कंजारुन = अरुण अर्थात् लाल कमल । मोचन = छुड़ानेवाले ।

सिंह-कंध आयत उर सोहा। आनन अमित-मदन-मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर-बंस-जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहिं तम पर नेहा॥

दोहा

स्रवन सुजसु सुनि आयउँ, प्रभु भंजन-भव-भीर।
त्राहि-त्राहि आरति-हरन, सरन सुखद रघुबीर॥ ३९॥

चौपाई

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेखा॥
दीन बचन सुनि, प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा॥
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत-भय-हारी॥
सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर-द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे॥
जद्यपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन-बृष्टि नभ भई अपारा॥

दोहा

रावन-क्रोध-अनल निज, स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषन राखेउ, दीन्हेउ राज अखंड॥ ४०॥

[रामचरितमानस]

आयत = चौड़ा। त्राता = रक्षक। तामस = तमोगुणमयी, राक्षसी। जथा = यथा, जैसे। तम = अँधेरा।

४०—भुसुंडि = काकभुसुंडि नाम के एक परम राम-भक्त। गिरिजाऊ = गिरिजा (पार्वती) भी। सद्य = तुरंत, तत्क्षण। अमोघ = सफल। सारा = किया। अनल = आग।

राग केदारा

महाराज राम पहँ जाउँगो।
सुख स्वारथ परिहरि करिहउँ सोइ ज्यों साहिबहि सुहाउँगो ॥
सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं, हौं निपटहि सुकुचाउँगो।
राम गरीबनिवाज निवाजिहैं, जानिहैं ठाकुर ठाउँ गो ॥
धरिहैं नाथ हाथ माथे एहि तें केहि लाभ अघाउँगो?
सपनो सो अपनो न कछू लखि, लघु लालच न लोभाउँगो ॥
कहिहौं बलि, रोटिहा रावरो, बिनु मोलही बिकाउँगो।
तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो ॥ ४१ ॥

*

रामहिं करत प्रनाम निहोरिकै।
उठे उमँगि आनंद प्रेम-परिपूरन बिरद बिचारि कै ॥
भयो बिदेह बिभीषन उत, इत प्रभु अपनपौ बिसारिकै।
भली भाँति भावते भरत ज्यों भेंट्यो भुजा पसारिकै ॥
सादर सबहिं मिलाइ समाजहिं निपट निकट बैठारिकै।
बूझत छेम-कुसल सप्रेम अपनाइ भरोसे भारि कै ॥
नाथ! कुसल कल्यान सुमंगल बिधि सुख सकल सुधारिकै।
देत, लेत जे नाम रावरो बिनय करत मुख चारि कै ॥
जो मूरति सपने न बिलोकत मुनि महेस मन मारिकै।
तुलसी येहि हौं लियो अंक भरि, कहत कछू न सँवारिकै ॥ ४२ ॥

*

४१–निपटहि = बिल्कुलही। रोटिहा = रोटी के टुकड़ों से पला हुआ। ऊतरे = उतरे हुए। उबरी = बची हुई।

४२–निहोरि कै = विनीत भाव से। बिरद = बाना, प्रण। बिदेह भयो = देह रहते भी देह की सुधि न रही। भावते = प्यारे। मुखचारि कै = ब्रह्मा चारों मुखों से। मन मारिकै = योगाभ्यास आदि साधनों से मनको अपने वश में करके।

[illegible]षन की बनी ।
कियो कृपालु अभय कालहु तें गइ संसृति-साँसति घनी ॥
सखा लषन हनुमान संभु गुरु धनी राम कोसल-धनी ।
हियही और और कीन्हीं बिधि, राम कृपा औरै ठनी ॥
कलुष-कलंक कलेस-कोस भयो जो पद पाय रावन रनी ।
सोइ पद पाय बिभीषन भो भव-भूषन दलि दूषन-अनी ॥
बाहँ-पगार उदार-सिरोमनि नत-पालक पावन-पनी ।
सुमन बरषि रघुबर-गुन बरनत हरषि देव दुंदुभी हनी ॥
रंक-निवाज रंक राजा किये, गए गरब गरि-गरि गनी ।
राम प्रनाम महा महिमा-खनि सकल सुमंगल-मनि जनी ॥
होय भलो ऐसेहि अजहुँ गये राम-सरन परिहरि मनी ।
भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी ॥ ४३ ॥

*

अति भाग बिभीषन के भले ।
एक प्रनाम प्रसन्न राम भए दुरित दोष दारिद दले ॥
रावन कुंभकरन बर मांगत सिव बिरंचि बाचा छले ।
राम-दरस पायो अबिचल पद, सुदिन सगुन नीके चले ॥

४३—संसृति-साँसति = संसार की जन्म—मरण—रूपी यातना । घनी = बहुत, बड़ी । कलेस—कोस = क्लेशों का खजाना, क्लेशरूप, परम पीड़ित । रनी = रणी, योद्धा । भवभूषण = संसार भरमें श्रेष्ठ । अनी = सेना । नतपालक = शरणागतों को पालनेवाले । पनी = प्रण निभाने वाले । दुंदुभी हनी = नगाड़े बजाए । गरि गरि = गलगल कर । गनी = अमीर । जनी = पैदा की । साखि = गवाह । भनी = कही, गाई । पगार = रक्षार्थ बनी हुई दीवार ।

४४—दुरित = कष्ट । दले = नष्ट किये । वाचा = वाणी से । अविचल पद = ध्रुव पद, मोक्ष पद ।

मिलनि बिलोकि स्वामि-सेवक की उकठे तरु फूले फले।
तुलसी सुनि सनमान बंधु को दसकंधर हँसि हिये जले ॥ ४४ ॥

[गीतावली]

राग केदारा

कहु कबहुँ देखिहौं आली ! आरज-सुवन ।
सानुज सुभग-तनु, जबतें बिछुरे बन, तबतें दवसी लगी तीनिहूँ भुवन ॥
मूरति सूरति किये प्रकट प्रीतम हिये, मनके करन चाहैं चरन छुवन ।
चित चढ़ि गो बियोग, दसा न कहिबे जोग, पुलक गात, लागे लोचन चुवन ॥
तुलसी त्रिजटा जानी सिय अति अकुलानी मृदुबानी कह्यौ ऐहैं दवन-दुवन
तमीचर-तमहारी सुरकंज सुखकारी, रवि-कुल-रवि अब चाहत उवन ४५

[गीतावली]

दोहा

सकल-सुमंगल-दायक, रघुनायक-गुन-गान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव-सिंधु बिना जलजान ॥ ४६ ॥

[रामचरितमानस]

उकठे = जड़ से उखड़े हुए । दसकंधर = रावण ।

४५—आरजसुवन = आर्य्यपुत्र; पति । दव = आग । लागे लोचन चुवन = आँखें आँसू बरसाने लगी हैं । त्रिजटा = एक राक्षसी; देखो टिप्पणी ३४ । दवन-दुवन = दुवन-दवन, दुर्जनों का नाश करनेवाले । तमीचर = राक्षस । चाहत उवन = उदय होना चाहता है ।

४६—जलजान = जलयान, नौका ।

लंका काण्ड

चौपाई

इहां सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सैन सहित अति भीरा॥
सैल-सृंग एक सुन्दर देखी। अति उतंग सम सुभ्र बिसेखी॥
तहँ तरु-किसलय-सुमन सुहाये। लछिमन रचि निज हाथ डसाये॥
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहि आसन आसीन कृपाला॥
प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा॥
दुहुँ कर-कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥
बड़भागी अंगद हनुमाना। चरनकमल चाँपत बिधि नाना॥
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥

दोहा

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहिं देखहु ससिहि, मृगपति-सरिस असंक॥१॥

चौपाई

पूरब-दिसि-गिरि-गुहा-निवासी। परमप्रताप-तेज-बल-रासी॥
मत्त-नाग-तम-कुंभ-बिदारी। ससि-केसरी गगन-बन-चारी॥

१—सृंग = शृंग, शिखर। उतंग = ऊँचा। शुभ्र = स्वच्छ। किसलय = कोमल पत्ते। डसाये = बिछा दिये। आसीन = विराजमान। प्रभु कृत……उछंगा = रामचंद्रजीका सिर सुग्रीव अपनी गोद पर रखे हैं। चाप = धनुष। निषंग = तरकस। लंकेश = विभीषण से आशय है। मयंक = चंद्रमा। मृगपति = सिंह।

२—गुहा = गुफा। नाग = हाथी। कुंभ = हाथी का मस्तक। गगन-वन = आकाश रूपी वन।

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि-सुन्दरी केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महँ मेचकताई। कहहु काह निज-निज मति भाई॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महँ प्रगट भूमि कै झाईं॥
मारेहु राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥
कोउ कह जबबिधिरतिमुख कीन्हा। सारभाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु-उर माहीं। तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं॥
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निजउर दीन्ह बसेरा॥
बिष-संयुत कर-निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर-नारी॥

दोहा

कह मारुत-सुत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु-उर बसति, सोइ स्यामता भास॥ २॥
पवन-तनय के बचन सुनि, बिहँसे राम सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु, बोले कृपानिधान॥ ३॥

चौपाई

देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी-बिलासा॥
लंका सिखर रुचिर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा॥
छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोई जनु जलद-घटा अति कारी॥
मंदोदरी—स्रवन-ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका॥
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना॥

मेचकताई = कालापन। झाईं = छाया। रति = कामदेव की स्त्री। इंदु = चंद्र। गरल = हालाहल विष; चंद्रमा और हालाहल की उत्पत्ति समुद्र से मानी जाती है, अतः दोनो सहोदर हैं। कर—निकर = किरणों का समूह। स्यामताभास = कालिमा की छाया।

४—६—आगार = महल। अखारा = अखाड़ा। ताटंक = कर्णफूल। रव = शब्द।

दोहा

छत्र मुकुट ताटंक तब, हते एकही बान।
सबके देखत महि परे, मरम न कोऊ जान ॥ ४ ॥
अस कौतुक करि रामसर प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब, देखि महा रस-भंग ॥ ५ ॥

× × × × ×

चौपाई

मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जबतें स्रवनपूर महि खसेऊ ॥
सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी ॥
कंत ! राम-विरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि मन हठ धरहू ॥

दोहा

बिस्वरूप रघुबंस-मनि, करहु बचन बिस्वासु।
लोक-कल्पना बेद कर, अंग-अंग प्रति जासु ॥ ६ ॥

चौपाई

पद पाताल, सीस अजधामा। अपर लोक अँग अँग बिस्रामा ॥
भृकुटि-बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर, कच घनमाला ॥
जासु घ्रान अस्विनी-कुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
स्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास, निगम निज बानी॥
अधर लोभ, जम दसन कराला। माया हास, बाहु दिगपाला ॥

हते=मार गिराये। मरम=भेद। स्रवनपूर=कर्णफूल। खसेऊ=गिर पड़ा। ७-अज-धाम=ब्रह्मलोक। अपर=और, दूसरा। दिवाकर=सूर्य। कच=बाल। घ्रान=नाक। अश्विनीकुमार=सूर्य के पुत्र; यह बड़े सुन्दर माने गये हैं। निमेष=पल। मारुत=पवन। निगम=वेद। जम=यम। दिगपाल=दिशाओं के स्वामी, जैसे कुबेर, अग्नि आदि।

आनन अनल, अंबुपति जीहा। उतपति-पालन-प्रलय समीहा॥
रोमराजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल, सरिता नस-जारा॥
उदर उदधि, अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहु कलपना॥

दोहा

अहंकार सिव, बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास चर-अचर-मय, रूप राम भगवान॥ ७॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति, प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर-पद, मम अहिबात न जाइ॥ ८॥

चौपाई

बिहँसा नारि-बचन सुनि काना। अहो मोह-महिमा बलवाना॥
नारि-सुभाउ सत्य कबि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर बसहीं॥
सहसा, अनृत, चपलता, माया। भय, अबिवेक, असौच, अदाया॥
रिपुकर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥
सो सब प्रिया सहज बस मोरे। समुझि परा प्रसाद अब तोरे॥
जानेउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि मिसु कहेउ मोरि प्रभुताई॥
तव बतकही गूढ़ मृग-लोचनि। समुझत सुखद सुनत भयमोचनि॥
मंदोदरि मन महँ अस ठयऊ। पियहि कालबस मति-भ्रम भयऊ॥

अनल = आग। अंबुपति = समुद्र, वरुण। समीहा = पूर्ण इच्छा। रोमराजि = बालों की पंक्ति, रोमावली। भारा = वृक्ष, वनस्पति आदि। सैल = शैल, पहाड़। जारा = जाल। उदधि = समुद्र। अध-गो = नीचे की इंद्रियाँ। कलपना = कल्पना, रूपक। अज = ब्रह्मा।

८-बयरु = वैर, शत्रुता। अहिबात = सौभाग्य।

९-मोह = अज्ञान। सहसा = एकाएक कोई काम कर डालना। अनृत = असत्य। असौच = अपवित्रता। प्रसाद = कृपा। मिसु = बहाना। बतकही = बातचीत। ठयऊ = निश्चय हो गया।

दोहा

एहि बिधि करत विनोद बहु, प्रात प्रगट दसकंध ।
सहज असंक सुलंकपति, सभा गयउ मद-अंध ॥ ९ ॥

[रामचरितमानस]

झूलना

कनक-गिरि-सृंग चढ़ि देखि मर्कट-कटक,
बदति मंदोदरी परम भीता ।
" सहस-भुज-मत्त-गजराज-रनकेसरी
परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता ॥
दासतुलसी समर-सूर कोसल धनी
ख्याल ही बालि बलसालि जीता ।
कंत ! तृन दंत गहि सरन श्रीराम कहि
अजहुँ यहि भाँति लै सौंपु सीता ॥ १० ॥

*

रे नीच ! मारीच बिचलाइ, हति ताड़का
भंजि सिव-चाप सुख सबहि दीन्हों ।
सहस-दस-चारि खल सहित खर दूषनहि
पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्हों ॥

मद-अंध = घमंड से अंधा ।

१०—मर्कट-कटक = बंदरों की सेना । वदति = कहती है । भीता = डरी हुई । सहस-भुज = सहस्रार्जुन नाम का हजार हाथवाला हैहयवंशी एक राजा, जिसे परशुराम ने मारा था । बीता = नष्ट होगया । बलसालि = बलशाली, बलवान् । कंत = कांत, पति ।

११—बिचलाई = वाण से समुद्र-पार फेंक कर । सहस दसचारि = चौदह हजार । तउ = तोभी ।

मैं जु कहौं कंत सुनु संत भगवंत सों
बिमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्हों ?
बीस भुज सीस दस खीस गये तबहिं
जब ईस के ईस सों बैरु कीन्हों ॥ ११ ॥

कवित्त

कानन उजारि, अच्छ मारि, धारि धूरि कीन्हीं
नगर प्रजार्यो सो बिलोक्यों बल कीस को ।
तुम्हैं विद्यमान जातुधान-मंडली में कपि
कोपि राख्यो पाँउ, सो प्रभाव तुलसीस को ॥
कंत ! सुनु मंत, कुल-अंत किये अंत हानि,
हातो कीजै हीयतें भरोसो, भुजबीस को ।
तौलौं मिलु बेगि जौलौं चाप न चढ़ायो राम,
रोषि बान काढ्यो न दलैया दससीसको ॥ १२ ॥

सवैया

राम सों साम किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे ।
आपनि सूक्ति कहौं प्रिय ! बूझिए, जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे ॥
नाथ ! सुनी भृगुनाथ-कथा, बलि बालि गए चलि बात के साँठे ।
भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनी सायर-काँठे ॥ १३ ॥

[कवितावली]

खीस गये = नष्ट होगये । ईसको ईस = शिव का भी स्वामी, श्रीराम ।
१२—अच्छ = अक्षय नामक रावण का एक पुत्र । धारि = सेना । प्रजार्यो = जला डाला । कीस = बंदर । कपि कोपि रोप्यों पाँव = अंगदने क्रोध कर जब अपना पैर रखकर सब राक्षसों से उठाने को कहा । हातो कीजै = दूर कीजिए ।
१३—साम = मेल, संधि । टाँठे = कठोर काम । नाठे = नष्ट । ठाहरु = ठौर । भृगुनाथ = परशुराम । साँठे = पकड़े रहने से । सायर = समुद्र । काँठे = किनारे ।

सवैया

(अंगद वचन)—
तोसों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ-बिरोध न कीजिय बौरे ॥
बालि बली खर दूषन और अनेक गिरे जे-जे भीति में दौरे।
ऐसिय हाल भई तोहिधौं, नतु लै मिलु सीय चहै सुख जौ रे॥
राम के रोष न राखि सकैं तुलसी बिधि, श्रीपति, संकर सौ रे ॥१४॥

*

तू रजनीचर-नाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौं हौं ।
बलवान है स्वान गली अपनी, तेहिं लाज न गाल बजावत सौहौं ॥
बीसभुजा दससीस हरौं न, डरौं प्रभु-आयसु-भंगते जौ हौं।
खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल बालि को बालक तौ हौं ॥१५॥

कवित्त

रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर-बल,
लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है ।
तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है ॥
महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि,
तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकतु है ।
कमठ कठिन पीठि, घठा परो मंदर को,
आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥ १६ ॥

[कवितावली]

१४—बौरे=पागल । गिरे=पतित हुए, मिट्टीमें मिलगये । श्रीपति=विष्णु ।
१५—हौं हौं=मैं हूँ । सौहौं=सामने । खेत=रणक्षेत्र । केहरि=सिंह ।
१६—पैज=प्रण । धरनिधर=पहाड़ । धराधर=शेषनाग । घठा=घट्टा। कमठ···काम=समुद्र मथते समय कच्छप की पीठ पर मंदराचल का जो घट्टा पड़ गया था, वही आज काम देरहा है, नहीं तो बेचारे कच्छप का भी न जाने, क्याहाल होता ।

चौपाई

रिपु के समाचार जब पाये। राम सचिव सब निकट बोलाये॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिय करहु बिचारा॥
तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदय दिन-कर-कुल-भूषन॥
करि विचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि-कटक बनावा॥
जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥
प्रभु-प्रताप कहि सब समुझाये। सुनि कपि सिंहनाद करि धाये॥
गरजहिं तरजहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा॥
लंका भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहँकारी॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई॥
सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू। धरि-धरि भालु कीस सब खाहू॥
चले निसाचर आयसु मांगी। गहि कर भिंडिपाल वर साँगी॥
तोमर, मुदगर, परिघ प्रचंडा। सूल, कृपान, परसु गिरि-खंडा॥

दोहा

नानायुध सर-चाप-धर जातुधान बलबीर।
कोट-कँगूरनि चढ़ि गये कोटि-कोटि रनधीर॥१७॥

चौपाई

कोटि-कँगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे॥
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होहि भटन्ह मन चाऊ॥
देखि न जाइ कपिन्ह के ठट्टा। अति विसाल तनु भालु सुभट्टा॥
धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। परबत फोरि करहिं गहि बाटा॥

१७–सचिव = मंत्री। दृढ़ावा = निश्चित किया। अनी = सेना। जूथप = यूथप, सेनापति। भिंडिपाल = अस्त्रविशेष। परिघ = ब्यौंड़ा, परेग। तोमर = बरछा। कृपान = तलवार। नानायुध = बहुत तरह के हथियार।
१८–बैसे = बैठे हुए हैं। चाऊ = चाव, उमंग। ठट्टा = झुंड। बाट = रास्ता।

कटकटाहिं कोटिन्ह भट गरजहिं । दसन ओठ काटहिं अति तरजहिं॥
उत रावन इत राम-दोहाई । जयति जयति जय परी लराई ॥

छंद

धरि कुधर-खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं ।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि प्रचारहीं ॥
अति तरल तरुन प्रताप तरजहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गये ।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्हि जहँ तहँ रामजसु गावत भये ॥१८॥
[रामचरितमानस]

सवैया

रजनीचर मत्तगयंद-घटा बिघटै मृगराज के साज लरै ।
झपटै, भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै ॥
तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर को धीर धरै ?
बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु कालसों बूझि परै ॥१९॥

कवित्त

हाथिन सों हाथी मारै, घोरे घोरे सों सँहारे;
रथनि सों रथ विदरनि बलवान की ।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं
हहरानी फौजैं भहरानी जातुधान की ॥

कुधर=पहाड़ । गढ़=किला । प्रचारहीं=ललकारते हैं । तमकि=क्रोध करके ।

१९-रजनीचर=राक्षस । बिघटै=नाश करता है । हाँक देत=ललकारता है । बिरुझों=हठपूर्वक लड़ता ह । बिरुदैत=बानेवाला । मारुत को=पवनपुत्र हनुमान् । बूझि परै=मालूम पड़ता है ।

२०-बिदरनि=चीर फाड़ डालना । हहरानी=घबरा गई ।

बार-बार सेवक–सराहना करत राम,
तुलसी सराहै रीति साहेब सुजान की।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ, लखन! लरनि हनुमान की ॥२०॥

*

दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,
मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक,
चीरि-फारि डारे, एक मींजि मारे लात हैं ॥
तुलसी लखत राम-रावन बिबुध, बिधि,
चक्रपानी, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।
बड़े बड़े बानइत बीर बलवान बड़े,
जातुधान जूथप निपाते बातजात हैं ॥ २१ ॥

छप्पय

कतहुँ बिटप भूधर उपारि पर-सेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि, मर्दि गजराज करक्खत ॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि-उर-सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत ॥

सराहना = प्रशंसा। लूम = पूँछ। भहरानी = तीन तेरह होकर भाग गई। २१–मगन = मूर्च्छित। मही = धरती। बिबुध = देवता। चक्रपानि = विष्णु। चंडीपति = शिव। चंडिका = काली। सिहात हैं = ललचाते हैं, डाह करते हैं। बानइत = बानेवाले। निपाते = मारडाले। बातजात = पवनपुत्र हनुमान्। २२–पर-सेन = शत्रु-सेना। भूधर = पहाड़। बरक्खत = वर्षाते हैं। करक्खत = खींचते हैं। बिद्दरत = विदीर्ण करता है।

लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवन-नंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥२२॥
[कवितावली]

चौपाई

लछिमन मेघनाद दोउ जोधा। भिरहिं परस्पर करि अति क्रोधा॥
एकहि एक सकहि नहिं जीती। निसिचर छल बल करइ अनीती॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता॥
नाना बिधि प्रहार करि सेषा। राच्छस भयउ प्रान-अवसेषा॥
रावन-सुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहि मम प्राना॥
बीर-घातिनी छाँड़ेसि साँगी। तेजपुंज लछिमन-उर लागी॥
मुरछा भई सक्ति के लागे। तब चलि गयउ निकट भय त्यागे॥

दोहा

मेघनाद-सम कोटि सत, जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार अनंत किमि उठइ, चले खिसिआइ॥ २३ ॥

चौपाई

संध्या भई फिरी दोउ बाहिनी। लगे सँभारन निज-निज अनी॥
व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमनु कहाँ बूझ करुनाकर॥
तब लगि लेइ आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥
जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रहइ कोउ पठइय लेना॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥

लंगूर = पूँछ। भट = योद्धा।

२३—अनंता = शेषावतार लक्ष्मण। सेषा = शेष। प्रानअवसेषा = प्राणावशेष, मृतप्राय। जगदाधार = संसार भर का बोझ सँभालनेवाले।

२४—बाहिनी = सेना। अनी = सेना।

दोहा

रघुपति-चरन-सरोज सिरु, नायउ आय सुषेन ।
कहा नाम गिरि-औषधी, जाहु पवन-सुत लेन ॥ २४ ॥

चौपाई

राम-चरन-सरसिज उर राखी । चलेउ प्रभंजन-सुत बल भाखी ॥
देखा सयल न औषध चीन्हा । सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ । अवध-पुरी ऊपर कपि गयऊ ॥

दोहा

देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि ।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप स्रवन लगि तानि ॥ २५ ॥

चौपाई

परेउ मुरछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ॥
सुनि प्रिय बचन भरत उठि धाये । कपि समीप अति आतुर आये ॥
बिकल बिलोकि कीस उर लावा । जागत नहिं बहु भाँति जगावा ॥
मुख मलीन मन भये दुखारी । कहत बचन लोचन भरि बारी ॥
जेहिबिधिराम-बिमुखमोहिकीन्हा । तेहि पुनि यह दारुन दुख दीन्हा ॥
जौ मोरे मन बच अरु काया । प्रीति राम-पद-कमल अमाया ॥
तौ कपि होउ बिगत-स्रम-सूला । जौ मोपर रघुपति अनुकूला ॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा । कहि जय जयति कोसलाधीसा ॥

सोरठा

लीन्ह कपिहि उर लाइ, पुलकित तन लोचन सजल ।
प्रीति न हृदय समाइ, सुमिरि राम रघु-कुल-तिलक ॥ २६ ॥

सुषेन = रावण का राजवैद्य ।

२५—प्रभंजन-सुत = पवन-पुत्र हनुमान् । सयल = शल, पहाड़ । फर = फल, नोक ।

२६—सायक = वाण । अमाया = निष्कपट । अनुकूला = कृपालु ।

चौपाई

तात कुशल कहु सुखनिधान की । सहित अनुज अरु मातु जानकी ॥
कपि सब चरित समास बखाने । भये दुखी मन महँ पछिताने ॥
अहह ! दैव मैं कत जग जायउँ । प्रभु के एकहु काज न आयउँ ॥

दोहा

भरत-बाहु-बल-सील-गुन, प्रभु-पद-प्रीति अपार ।
मन महँ जात सराहत, पुनि-पुनि पवन-कुमार ॥ २७ ॥

चौपाई

उहाँ राम लछिमनहिं निहारी । बोले बचन मनुज-अनुहारी ॥
अर्धराति गइ कपि नहिं आयउ । राम उठाइ अनुज उर लायउ ॥
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ । बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ ॥
ममहितलागि तजेहु पितु-माता । सहेउ बिपिन हिम आतप बाता ॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई । उठहु न सुनि मम बच-बिकलाई ॥
जौं जनतेउँ बन बंधु-बिछोहू । पिता-बचन मनतेउँ नहिं ओहू ॥
सुत बित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता । मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥
जथा पंख बिनु खग अति दीना । मनि बिनु फनि, करिबर कर हीना ॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही । जौं जड़ दैव जियावइ मोही ।
जैहउँ अवध-कवन मुँह लाई । नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई ॥

२७—समास = संक्षेप में । जायउँ = जनमा, पैदा हुआ । जात सराहत = बड़ाई करते जाते हैं ।

२८—अनुहारी = समान । मृदुल = कोमल । हिम = जाड़ा । आतप = गर्मी, धूप । बाता = वात, हवा । बच-बिकलाई = वचन की व्याकुलता । बित = धन-संपत्ति । फनि = साँप । करिबर = गजेन्द्र । कर-हीना = बिना सूँड़ के ।

बरु अपजसु सहतेउँ जग माहीं। नारि-हानि बिसेष छति नाहीं॥
अब अपलोक सोक सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा। तात! तासु तुम्ह प्रान-अधारा॥
सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परमहित जानी॥
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥
बहुबिधि सोचत सोच-बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव-दल-लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई। नरगति भगत-कृपालु देखाई॥

सोरठा

प्रभु-प्रलाप सुनि कान, बिकल भये बानर-निकर।
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुना महँ बीर रस॥ २८॥

चौपाई

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥
हृदय लाइ भेंटेउ प्रभु भ्राता। हरषे सकल भालु-कपि-ब्राता॥ २९॥

[रामचरितमानस]

राग केदारा

राम लषन उर लाय लये हैं।
भरे नीर राजीवनयन सब अँग परिताप तये हैं॥
कहत ससोक बिलोकि बंधु-मुख बचन प्रीति-गुथये हैं।
सेवक सखा भगति भायप गुन चाहत अब अथये हैं॥
निज कीरति करतूति, तात! तुम सुकृती सकल जये हैं।

बरु = चाहे। छति = क्षति, हानि। अपलोक = कलंक, निंदा, अयश। गहि-पानी = हाथ पकड़ाकर। स्रवत······लोचन = कमल जैसे नेत्रों से आँसू बहते हैं। उमा = पार्वती। प्रलाप = विलाप।

२९—ब्राता = समूह।

३०—तये हैं = जले हैं। सुकृती = पुण्यात्मा। जये हैं = जीत लिये हैं।

मैं तुम्ह बिनु तनु राखि लोक अपने अवलोक लये हैं ॥
मेरे पन की लाज इहां लौं हठि प्रिय प्रान दये हैं।
लागति साँगि बिभीषन-ही पर सीपर आपु भये हैं ॥
सुनि प्रभु-बचन भालु-कपि-गन सुर सोच सुखाइ गये हैं।
तुलसी आइ पवन-सुत-बिधि मानो फिरि निरमये नये हैं ॥३०॥

राग सोरठ

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति-बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ?
सुनु सुग्रीव, साँचेहूँ मो पर फेर्‌यो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर—संकट हौं तज्यौ लषन सो भ्राता ॥
गिरि कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज-सँघाती।
ह्वैहै कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ॥
तुलसी सुनि प्रभु-बचन भालु-कपि सकल बिकल हिय हारे।
जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे ॥ ३१ ॥

राग केदारा

कौतुक ही कपि कुधर लियो है।
चल्यो नभ नाइ माथ रघुनाथहि, सरिस न बेग बियो है ॥
देख्यो जात जानि निसिचर बिनु फर सर हयो हियो है।
पर्‌यो कहि राम, पवन राख्यो गिरि पुर तेहि तेज पियो है ॥
जाइ भरत भरि अंक भेंटि निज जीवन-दान दियो है।

सांगि = शूल। सीपर = ढाल। (फ़ारसी शब्द)। निरमये = बनाये, रचे।

३१—समर = युद्ध। साखामृग = बंदर। अनुज-सँघाती = भाई के साथ स्वर्ग जाने वाला। हिय हारे = निराश हो गये। प्रचारे = बुलाये।

३२—कुधर = पहाड़; द्रोणाचल से तात्पर्य है। बियो = दूसरा। फर = फल, नोक। हयो = मारा।

दुख लघु लषन मरम-घायल सुनि, सुख बड़ो कीस जियो है॥
आयसु इतहि स्वामि-संकट उत, परत न कछू कियो है।
तुलसिदास बिहर्यो अकास सो कैसे कै जात सियो है॥ ३२॥

*

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामि-काज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं॥
सुवन-सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे हैं।
छिन-छिन गात सुखात छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं॥
कपि सों कहति सुभाय अंब के अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि घनु दुसरे हैं॥
'तात! जाहु कपि सँग' रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिवस सुढर ढरे हैं॥
अंब-अनुज-गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं॥ ३३॥

[गीतावली]

कवित्त

मानी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट,
आपने-अपन पुरुषारथ न ढील की।
घायल लषन लाल लखि बिलखाने राम,
भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की॥

कीस = बंदर; हनुमान् से अभिप्राय है। बिहर्यो = फटाहुआ।

३३—लोहा = रण, लड़ाई। गात सुखात = अंग सोच से सूखते हैं। होत हरे हैं = प्रसन्नता से प्रफुल्लित होते हैं। अंब = सुमित्रा माता। अंबक = नेत्र। अंबु = पानी; आँसू। घनु = शत्रुघ्न से आशय है। पैंत = पासा। पवनज = पवन-पुत्र हनुमान्। गरे हैं = गले हैं।

३४—मानी = घमंडी। । दील = दिल, हृदय।

भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस
कहैं " मैं बिभीषन की कछु न सबील की "।
लाज बाहँ बोले की, नेवाजे की सँभार सार,
साहेब न राम से, बलैया लेउँ सील की ॥ ३४ ॥

सवैया

कानन-बास, दसानन सो रिपु, आनन-श्री ससि जीति लियो है।
बालि महा बलसालि दल्यो, कपि पालि, विभीषन भूप कियो है ॥
तीय हरी, रन बंधु पर्यो, पै भर्यो सरनागत-सोच हियो है।
बाहँ-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है ॥ ३५ ॥

*

लीन्हों उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुत-नंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो ॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो ॥३६॥

[कवितावली]

दोहा

दुहुँ दिसि जय-जयकार करि, निज-निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रघुपतिहिं, उत रावनहिं बखानि ॥ ३७ ॥

सबील=प्रबंध। बाँह बोले की=शरण में लेने की। सील=शील।

३५—श्री=सोभा। पगार=दीवाल, आड़, ओट।

३६—मारुत-नंदन=हनुमान्। खगराज=गरुड़। तुरा=त्वरा, वेगता। लीक=लकीर। धुकि धायो=शीघ्रता से दौड़ा।

चौपाई

रावन रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहिं तनु-पद-त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम पर-हित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस-भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिज्ञान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र-गुरु-पूजा। यहि सम बिजय-उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके॥

दोहा

महा अजय संसार-रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर॥ ३८॥
सुनि प्रभु-बचन बिभीषन, हरषि गहे पद-कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु, राम कृपा-सुख-पुंज॥ ३९॥
उत प्रचारि दसकंधर, इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि, करि निज-निज प्रभु-आन॥ ४०॥

× × × × ×

३८—बिरथ = रथरहित। तनु-पद-त्राना = कवच और जूता। स्यंदन = रथ। सौरज = शौर्य्य। चाका = चक्र, पहिया। दम = इंद्रियों को वशमें करने का साधन। घोरे = घोड़े। रजु = रस्सी। बिरति-चर्म = वैराग्य रूपी ढाल। को-दंड = धनुष। त्रोन = कवच। सिलीमुख = वाण। जम = यम, संयम। अभेद = अभेद्य, जो छेदा न जा सके।

४०—प्रचारि = ललकार कर। आन = सौगंद, दुहाई।

चौपाई

जटा जूट दृढ़ बाँधे माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाँथे॥
अरुन नयन बारिद-तनु-स्यामा। अखिल-लोक लोचन-अभिरामा॥
कटि तट परिकर कसेउ निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥

छंद

सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कसेउ।
भुज दंड पीन मनोहरायत उर धरा सुर-पद लसेउ॥
कह दासतुलसी जबहिं प्रभु सरचाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥ ४१॥

दोहा

हरषे देव त्रिलोकि छवि, बरषहिं सुमन अपार।
जय जय प्रभु गुन-ग्यान-बल-धाम हरन महिभार॥४२॥

चौपाई

देखि चले सनमुख कपि भट्टा। प्रलय काल के जनु घनघट्टा॥
बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दस दिसि दामिनी दमंकहिं॥
गजरथ-तुरग चिकार कठोरा। गरजहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥
कपि-लंगूर बिपुल नभ छाये। मनहुँ इन्द्रधनु उये सुहाये॥
उठइ धूरि मानहुँ जलधारा। बान बुंद भई वृष्टि अपारा॥

४१—गाँथे = गूथे हुए। लोचन-अभिरामा = नेत्रों में सुंदर लगनेवाले, नेत्रों को सुख देनेवाले। कटितट = कमर के चारो ओर, कमर में। परिकर = फेंट। सारंग = वाण। सिलीमुखाकर = वाणों की खान, तरकस। पीन = पुष्ट। आयत = चौड़ा। धरासुर-पद = भृगुमुनि के चरण का चिन्ह। कमठ = कच्छप। अहि = शेषनाग। भूधर = पहाड़।

४३—भट्टा = भट, योद्धा। घट्टा = घटा। तुरग = घोड़ा। बलाहक = मेघ। लंगूर = पूँछ। उये = उदय हुए।

दुहुँ दिसि परबत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥
रघुपति कोपि बान-झर लाई। घायल भे निसिचर-समुदाई॥
लागत बान बीर चिक्करहीं। घुरमि घुरमि जहँ तहँ महि परहीं॥
स्रवहि सयल जनु निर्झर-बारी। सोनित-सरि कादर-भय-कारी॥

छंद

कादर-भयं-कर रुधिर-सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल, रथ रेत, चक्र-अवर्त बहति भयावनी॥
जलजंतु गज, पदचर तुरग, खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प, चाप तरंग, चर्म कमठ घने॥ ४३॥

दोहा

बीर परहिं जनु तीरतरु, मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डराहिं तेहि, सुभटन के मन चेन॥ ४४॥

चौपाई

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लेइ भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लेइ खाहीं॥
खैंचहिं गीध आँत तट भये। जनु बनसी खेलहिं चित दये॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥
जोगिनि भरि-भरि खप्पर संचहिं। भूत-पिसाच-बधू नभ नंचहिं॥
भट कपाल कर ताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं॥

घुरमि-घुरमि = चक्कर खा-खा कर। स्रवहिं = बहाते हैं। सयल = शैल, पहाड़। निर्झर = झरना। सोनित-सरि = रक्त की नदी। दल = सेना। चक्र अर्वत = रथों के पहिए ही जल की भँवरे हैं। पदचर = पैदल। तोमर = बरछा। चर्म कमठ = ढाल ही कछुवा है।

४४—मजा = चर्बी।

४५—प्रमथ = शिवजीके गण। झोटिंग = शिवजी के भूतों की जाति। कंक = गीध। नावरि = नाव का खेल।

जंबुक-निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं॥
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोलहिं। सीस परे महि जय जय बोलहिं॥

[रामचरितमानस]

कवित्त

लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ-तहाँ,
मानहुँ गिरिन गेरु-झरना झरत हैं।
सोनित-सरित घोर, कुंजर करारे भारे,
कूल तें समूल बाजि-बिटप परत हैं॥
सुभट सरीर नीरचारी भारी-भारी तहाँ,
सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं।
फेकरि-फेकरि फेरु फारि-फारि पेट खात,
काक-कंक-बालक कोलाहल करत हैं॥ ४६॥

सवैया

राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी॥
सोनित-छींटि-छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी।
मानौ मरक्कत-सैल बिसाल में फैरि चली बर बीर-बहूटी॥ ४७॥

[कवितावली]

जंबुक = शृगाल, सियार। कटक्कट कट्टहिं = दाँत कटकटाते हैं। हुआहिं = जोर से चिल्लाते हैं।

४६—सोनित = रुधिर। कुंजर = हाथी। बाजि-बिटप = घोड़ा रूपी पेड़। नीरचारी = जल के जीव। फेकरि-फेकरि = बोल-बोलकर। फेरु = सियार। कंक = गीध।

४७—हड़ावरी = हाड़ों की अवली। जूटी = जुट गईं। सोनित-छींटि = रक्त की बूँदें। मरकत = मरकत, नीलम मणि। बीर-बहूटी = इंद्र-बधू, बरसात में निकलनेवाले लाल-लाल कीड़े।

दोहा

काटे सिर भुज बार बहु, मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त मुनि सिद्ध सुर व्याकुल देखि कलेस ॥ ४८ ॥

चौपाई

काटत बढ़हिं सीस-समुदाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥
मरइ न रिपु स्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा ॥
सुनु सर्बग्य चराचर-नायक। प्रनतपाल सुर-मुनि-सुखदायक॥
नाभी-कुंड सुधा बस या के। नाथ जियत रावन बल ताके ॥
सुनत बिभीषन-बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला ॥

दोहा

खैंचि सरासन स्रवन लगि, छाँड़े सर एकतीस।
रघुनायक-सायक चले, मानहुँ काल फनीस ॥ ४९ ॥

चौपाई

सायक एक नाभि-सर सोखा। अपर लगे सिर भुज करि रोखा॥
लेइ सिर बाहु चले नाराचा। सिर-भुज-हीन रुंड महि नाचा ॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु-सर हनि कृत युगखंडा ॥
गरजेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ राम रन हतउँ प्रचारी ॥
डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ॥
तासु तेज समान प्रभु-आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन ॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल-भुज-दंडा ॥
बरषहिं सुमन देव-मुनि-बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा ॥

४९—स्रवनि लगि = कान तक। फनीस = साँपों का राजा।

५०—अपर = अन्य, दूसरे। रोखा = रोष, क्रोध। नाराच = वाण। कृत युग खंडा = दो टुकड़े कर दिये। प्रचारी = ललकार कर। सरि = नदी। भूधर = पहाड़। चतुरानन = ब्रह्मा। मुकुंद = विष्णु का एक नाम।

छंद

सिर जटा-मुकुट प्रसून बिच-बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर-कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं विपुल सुख आपने॥ ५०॥

दोहा

कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु, अभय किये सुरवृन्द।
भालु कीस सब हरषे, जय सुखधाम मुकुन्द॥ ५१॥

[रामचरितमानस]

राग कान्हरा

राजत राम काम-सत-सुंदर।
रिपु रन जीति अनुज सँग सोभित, फेरत चाप बिसिख बनरुह-कर॥
स्याम सरीर रुचिर स्रम-सीकर, सोनित-कन बिच बीच मनोहर।
जनु खद्योत-निकर हरिहित-गन, भ्राजत मरकत-सैल-सिखर पर॥
घायल बीर बिराजत चहुँदिसि, हरषित सकल ऋच्छ अरु बानर।
कुसुमित किंसुक-तरु-समूह महँ, तरुन तमाल बिसाल बिटप-बर॥
राजिव-नयन बिलोकि कृपा करि, किए अभय मुनि नाग बिबुध नर।
तुलसिदास यह रूप अनूपम, हिय-सरोज बसि दुसह बिपतिहर॥५२॥

[गीतावली]

प्रसून = फूल। तड़ित = बिजली। पटल = बादल। उडुगन = तारागण। रायमुनी = एक तरह की लाल चिड़िया।

५२-बिसिख = वाण। बनरुह = कमल। सम-सीकर = पसीना। खद्योत = जुगनू। निकर = समूह। हरिहित = इंद्रवहूटी। मरकत = नीलमणि। किंसुक = पलास का पेड़। विबुध = देवता। हिय-सरोज = हृदयरूपी कमल।

सवैया

कुंभकरन्न हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधर, कंधर तोरे ।
पूषन-वंस-बिभूषन-पूषन, तेज-प्रताप गरे अरि-ओरे ॥
देव निसान बजावत गावत, सावत गो, मनभावत भोरे !
नाचत बानर भालु सबै तुलसी, कहि "हारे ! हहा भइया, होरे !" ५३

कवित्त

मारे रन रातिचर, रावन, सकुल दल,
अनुकूल देव मुनि फूल बरषतु हैं ।
नाग नर किन्नर बिरंचि, हरि, हर हेरि
पुलक सरीर, हिये हेतु, हरषतु हैं ॥
बाम ओर जानकी कृपानिधान के बिराजैं,
देखत बिषाद मिटै मोद करषतु हैं ।
आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै,
तुलसी निहाल कैकै दियो सरषतु हैं ॥ ५४ ॥

[कवितावली]

चौपाई

तब हनुमान राम पहिं जाई । जनकसुता कै कुसल सुनाई ॥
सुनि संदेस भानु-कुल-भूषन । बोलि लिये जुवराज बिभीषन ॥
मारुत-सुत के संग सिधावहु । सादर जनक-सुतै लेइ आवहु ॥
तुरतहिं सकल गये जहँ सीता । सेवहिं सब निसिचरी बिनीता ॥

५३—कंधर = ग्रीवा । पूषण = सूर्य । अरि—ओरे = शत्रुरूपी ओले । गरे = गल गये, नष्ट होकर बिला गये । निसान = बाजा । साँवत = सामंतपना, अधीनता ।
५४—रातिचर = राक्षस । किन्नर = देवतों की एक जाति । निहाल कै कै = कृतार्थ कर कर । सरषतु = परवाना ।

बेगि बिभीषन तिन्हहिं सिखावा। सादर तिन्ह सीतहिं अन्हवावा ॥
बहु प्रकार भूषन पहिराये। सिविका रुचिर साजि पुनि लाये ॥
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी ॥

दोहा

तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुरबाद।
सुनत जातुधानी सब, लागीं करइ बिषाद ॥ ५५ ॥

चौपाई

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन-क्रम-बचन-पुनीता ॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ॥
सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह-बिबेक-धरम-जुति-सानी ॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ॥
देखि राम-रुख लछिमन धाये। पावक प्रगट काठ बहु लाये ॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष, कछु भय नहिं तेही ॥
जौं मन-बच-क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं ॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहँ होउ स्त्रिखंड समाना ॥

छंद

स्री-खंड-सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस-बंदित-चरन रति अति निरमली ॥

५५—सिविका = पालकी। अनल = आग। दुरवाद = बुरे वचन, निंदा की बातें। जातुधानी = राक्षसी।

५६—कृशानु = आग। श्रीखंड = चंदन। मैथिली = सीताजी। रति = प्रीति। प्रतिबिम्ब = छाया; खर, दूषण आदि दैत्यों को मारने के पहले दण्डकारण्यमें श्री रामचन्द्रजी ने सीताजी को अग्नि-वास करने की आज्ञा दी थी और उनको छायामात्र अपने पास रखी थी। कहते हैं, उसी छाया को रावण हर ले गया था। खरे = खड़े। पानि = हाथ। स्री = श्री, लक्ष्मी।

प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महँ जरे।
प्रभु-चरित काहु न लखे सुर नभ सिद्ध मुनि देखत खरे॥
धरि रूप पावक पानि गहि स्त्री सत्य स्रुति जग-बिदित जो।
जिमि छीर-सागर इंदिरा रामहिं समरपी आनि सो॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली॥

दोहा

बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किन्नर सुरबधू नाचहिं चढ़ी बिमान ॥५६॥
स्त्री जानकी समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखत हरषे भालु कपि जय रघुपति सुखसार ॥ ५७ ॥

[रामचरितमानस]

राग सोरठ

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता॥
दूध–भात की दोनी दैहौं, सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय-सहित बिलोकि नयन भरि राम- लषन उर लैहौं॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ पांइ परि पूछति प्रेम-मगन मृदुबानी॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो॥५८॥

[गीतावली]

इंदिरा = लक्ष्मी। कनकपंकज = पीला कमल। सुर-वधू = अप्सरा।
५८–फुरि = सच्ची। आतुर = अधीर। गनक = गणक, ज्योतिषी।

दोहा

समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान ॥ ५९॥

[रामचरितमानस]

उत्तर काण्ड

चौपाई

हरषि भरत कोसलपुर आये। समाचार सब गुरुहिं सुनाये॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई॥
सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु-कुसल भरत समुझाई॥
समाचार पुर-बासिन्ह पाये। नर अरु नारि हरषि सब धाये॥
जो जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल-बृद्ध कहँ संग न लावहिं॥
अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥
भइ सरजू अति-निरमल नीरा। बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा॥

दोहा

हरषित गुरु परिजन अनुज भू-सुर-बृन्द समेत॥
चले भरत अति प्रेम मन सनमुख कृपा-निकेत॥ १॥
बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान॥२॥

५९–विवेक = सत्य–असत्य के निर्णय का ज्ञान। विभूति = ऐश्वर्य।

१–३–मंदिर = राज–महल। त्रिविध समीर = शीतल, मंद और सुगंध पवन। भूसुर = ब्राह्मण। कृपानिकेत = कृपा के स्थान, अत्यंत कृपालु। राकाससि = पूर्णिमा का चंद्रमा। कोलाहल = शोर। तरंग = लहर।

राकाससि-रघुपति पुर-सिंधु देखि हरषान।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु नारि-तरंग समान ॥ ३ ॥

चौपाई

इहाँ भानु-कुल-कमल-दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर ॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद-पुरान-विदित जग जाना ॥
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ॥
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु-बानी। धन्य अवध जो राम बखानी ॥

दोहा

आवत देखि लोग सब, कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान ॥४॥

चौपाई

आये भरत संग सब लोगा। कृसतन श्रीरघुबीर-बियोगा ॥
बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु-सायक ॥
धाइ धरे गुरु-चरन-सरोरुह। अनुज सहित अतिपुलक-तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया ॥
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धरम-धुरंधर रघु-कुल-नाथा ॥
गहे भरत पुनि प्रभु-पद-पंकज। नमत जिन्हहिंसुरमुनिसंकरअज ॥
परे भूमि नहिं उठत उठाये। बल करि कृपासिंधु उर लाये ॥
स्यामलगात रोम भये ठाढ़े। नव-राजीव-नयन--जल बाढ़े ॥

४—दिवाकर = सूर्य। लंकेस = विभीषण। प्रसंग = रहस्य। ममधामदा = साकेत लोक को देनेवाली। प्रेरेउ = प्रेरणाकी, आज्ञा दी।

५—सरोरुह = कमल। तनोरुह = रोम। अज = ब्रह्मा।

छंद

राजीव लोचन स्रवत जल तनु ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन-धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुखमा लही ॥ ५ ॥

दोहा

पुनि प्रभु हरषित सत्रुहन, भेंटे हृदय लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब, परम प्रेम दोउ भाइ ॥ ६ ॥

चौपाई

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह-संभव दुख मेटे ॥
सीता-चरन भरत सिर नावा। अनुज समेत परम सुख पावा ॥
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित-बियोग बिपति सब नासी॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी ॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहिं कृपाला ॥
कृपा-दृष्टि रघुबीर बिलोकी। किये सकल नर-नारि बिसोकी ॥
छन महँ सबहिं मिले भगवाना। उमा मरमु यह काहु न जाना ॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगे चले सील-गुन-धामा ॥
कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं ॥

छंद

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गईं।
दिन-अंत पुररुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं ॥

राजीव = कमल। स्रवत = बहता है। धनी = स्वामी। सुषमा = शोभा।
७—संभव = जनित, उत्पन्न। जनित-वियोग = वियोग-जनित। खरारी = खर दैत्य के शत्रु श्रीराम। बिसोकी = शोकरहित, सुखी। लवाईं = हालकी बियानी गाय। चरन = चरने को। रुख = तरफ।

अति प्रेम प्रभु सब मातु भेंटी बचन मृदु बहुबिधि कहे ।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥७॥

दोहा

भेंटेउ तनय सुमित्रा, राम-चरन-रति जानि ।
रामहिं मिलत कैकई, हृदय बहुत सकुचानि ॥ ८ ॥
लछिमन सब मातन्ह मिलि, हरषे आसिष पाइ ।
कैकइ कहँ पुनि-पुनि मिले, मनकर छोभ न जाइ ॥ ९ ॥

चौपाई

सासुन्ह सबन्ह मिली बैदेही । चरनन्हि लागि हरष अति तेही ॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता । होहु अचल तुम्हार अहिवाता ॥
सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं । मंगल जानि नयनजल रोकहिं ॥
कनक-थार आरती उतारहिं । बार बार प्रभु-गात निहारहिं ॥
नाना भाँति निछावरि करहीं । परमानंद हरष उर भरहीं ॥ १० ॥

[रामचरितमानस]

राग टोड़ी

आजु अवध आनंद बधावन रिपुरन जीति राम आए ।
सजि सुबिमान निसान बजावत मुदित देव देखन धाए ॥
घर घर चारु चौक चंदन मनि, मंगल कलस सबनि साजे ।
ध्वज पताक तोरन बितान बर, बिबिध भाँति बाजन बाजे ॥
राम-तिलक सुनि दीप-दीप के नृप आए उपहार लिये ।
सीय सहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरष हिये ॥

बिषम = दारुण । बियोग-भव = बियोग-जनित ।

१०—अहिवात = सौभाग्य । कनक = सोना । गात = अंग ।

११—निसान = बाजा । कलस = घड़े । तोरन = बंदनवार । बितान = मंडप ।

दीप-दीप = द्वीप द्वीपांतर । उपहार = भेंट । आसीन = बिराजमान ।

मंगल गान, बेद धुनि, जय-धुनि मुनि-असीस-धुनि भुवनभरे ।
बरषि सुमन सुर सिद्ध प्रसंसत, सबके सब संताप हरे ॥
राम-राज भइ कामधेनु महि सुख-संपदा लोक छाए ।
जनम-जनम जानकी-नाथ के गुनगन तुलसीदास गाए ॥११॥

[गीतावली]

चौपाई

कृपासिंधु जब मंदिर गये । पुर-नर-नारि सुखी सब भये ॥
गुरु बसिष्ठ द्विज लिये बोलाई । आज सुघरी सुदिन सुभदाई ॥
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन । रामचंद्र बैठहिं सिंहासन ॥
मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाये । सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाये ॥
कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका । जग-अभिराम राम-अभिषेका ॥
अब मुनिवर बिलंबु नहिं कीजइ । महाराज कहँ तिलक करीजइ ॥
अवधपुरी अति रुचिर बनाई । देवन्ह सुमन-वृष्टि झरि लाई ॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे । अंग अनंग कोटि छबि लाजे ॥
प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा । तुरत दिव्य सिंहासन मांगा ॥
रबिसम तेज सो बरनि न जाई । बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ॥
जनक—सुता—समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनि—समुदाई ॥
बेद-मंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ॥
प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा । पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारी । बारबार आरती उतारी ॥

भुवन = लोक । संताप = कष्ट । कामधेनु = स्वर्ग की एक गाय, जो सब इच्छाएँ पूरी कर देती हैं ।

१२—अनुसासन = आज्ञा । जग—अभिराम = संसार को आनन्द देनेवाला । अनंग = कामदेव । प्रहरषे = बड़े प्रसन्न हुए ।

बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंहासन पर त्रिभुवन-साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाईं॥

छंद

नभ दुंदुभी बाजहिं बिपुल गंधर्ब किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपछरा-बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥ १२॥
श्री-सहित दिनकर-बंस-भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव-अंबु धर-बर-गात अंबर पीत-मुनि-मन मोहई॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोज-नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥ १३॥

दोहा

वह सोभा समाज-सुख कहत न बनइ खगेस।
बरनइ सारद सेष स्रुति सो रस जान महेस॥ १४॥

[रामचरितमानस]

राग सोरठ

बनतें आइ कै राजा राम भए भुवाल।
मुदित चौदह भुवन, सब सुख सुखी सब सब काल॥

जाचक······कीन्हे = मांगनेवालों को इतना दिया कि फिर उन्हें और कहीं कुछ मांगने की जरूरत न रही। दुंदुभी = बाजा। बिपुल = बहुत। अपछरा = अप्सरा। चामर = चँवर। व्यजन = पंखा। असि = तलवार। चर्म = ढाल। अंबुधर = मेघ।

१३-अंबर = वस्त्र। मुकुटांगद = मुकुट और अंगद अर्थात् बाजूबन्द। अंभोज = कमल। निरखंति = देखते हैं।

मिटे कलुष कलेस कुलषन कपट कुपथ कुचाल।
गए दारिद दोष दारुन दंभ दुरित दुकाल॥
कामधुक महि, कामतरु तरु, उपल मनिगन लाल।
नारि-नर तेहि समय सुकृती भरे भाग सुभाल॥
बरन-आस्रम-धरम-रत, मन बचन बेष मराल।
राम—सिय—सेवक सनेही साधु सुमुख रसाल॥
राम—राज—समाज बरनत सिद्ध सुर दिगपाल।
सुमिरि सो तुलसी अजहुँ हिय हरष होत बिसाल॥ १५॥

[गीतावली]

चौपाई

राम राज बैठे त्रय लोका। हरषित भये गये सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम-प्रताप बिषमता खोई॥

दोहा

बरनास्रम निज-निज-धरम-निरत बेद-पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख, नहिं भय सोक न रोग॥१६॥

चौपाई

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधरम-निरत स्रुतिरीती॥

१५—कुलषन=कुलक्षण। दुरित=पाप। कामधुक=कामधेनु। कामतरु=कल्प वृक्ष। उपल=पत्थर। सुकृती=पुण्यात्मा, सत्कर्म करनेवाले। मन बचन-बेष मराल=मन एवं वचन दोनों से ही हंस के समान उज्ज्वल हैं, ऐसे नहीं कि मन से बगुले हों और बचन से हंस अर्थात् कपटी।

१६—बिषमता=भेद-भाव। निरत=लगे हुए।

चारिहु चरन धरम जगमाहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम-भगति-रत सब नर नारी । सकल परम गति के अधिकारी ॥
अलप मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ॥
सब निर्दंभ धरम-रत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट-सयानी ॥
भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुवन अनेक रोम प्रति जासू । यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी । यह बरनत हीनता घनेरी ॥
सब उदार सब पर-उपकारी । बिप्र-चरन-सेवक नर नारी ॥
एक नारि-ब्रत-रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति-हित-कारी ॥

दोहा

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नरतक नृत्य-समाज ।
जितहु मनहिं अस सुनिय जग रामचंद्र के राज ॥१७॥

चौपाई

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक सँग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज बैरु बिसराई । सबन्हि परसपर प्रीति बढ़ाई ॥
कूजहिं खग मृग नाना बृन्दा । अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा । गुंजत अलि लेइ चलि मकरंदा ॥

१७—अघ = पाप । परमगति = मुक्ति । बिरुज = नीरोग । अबुध = मूर्ख । पुनी = पुण्यात्मा । भूमि······मेखला = सात समुद्र पर्यंत पृथ्वी । लच्छनहनि = अभागा । मेखला = सीमा से अभिप्राय है । झारी = समूह, संपूर्ण । जतिन्ह कर = यति अर्थात् संन्यासियों का। नरतक = नाचनेवाला । दंड जतिन्ह······राज = यहाँ परिसंख्यालंकार है ।

१८—पंचानन = सिंह । मकरंद = पराग ।

लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मन-भावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि-संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भई कृतयुग कै करनी॥
प्रगटी गिरिन्ह बिबिध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वादु सुखकारी॥
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज-संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥

दोहा

बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनहिं काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचंद्र के राज॥ १८॥

चौपाई

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥
स्रुति-पथ-पालक धरम-धुरंधर। गुनातीत अरु भोग-पुरंदर॥
पति-अनुकूल सदा रह सीता। सोभा-खानि सुसील बिनीता॥
जानति कृपासिंधु-प्रभुताई। सेवति चरन-कमल मन लाई॥
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र-आयसु अनुसरई॥
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवाबिधि जानइ॥
कोसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥

दोहा

जासु कृपा-कटाच्छु सुर, चाहत चितवन सोइ।
राम-पदारबिंद-रति, करति सुभावहिं खोइ॥ १६॥

स्रवहीं = चुवाते हैं, देते हैं। सवहीं = देती हैं। ससि = शस्य, धान्य। कृतजुग = सत्ययुग। जगदात्मा = विश्वात्मा, सर्वव्यापी। तड़ाग = तालाब। सरासिज–संकुल = कमलों से पूर्ण। मयूख = किरण।

१९–बाजिमेध = अश्वमेधयज्ञ। गुनातीत = निर्गुण ब्रह्म, मायात्मक गुणों से रहित। पुरन्दर = इन्द्र। परिचरजा = परिचर्य्या, सेवा, काम-काज। श्री = सीताजी। सुभावहिं खोई = लक्ष्मी, अपनी सहज चञ्चलता छोड़कर, निश्चल भावसे।

चौपाई

सेवहिं सानुकूल सब भाई । राम-चरन-रति अति अधिकाई ॥
प्रभु-मुख-कमल बिलोकत रहहीं । कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं ॥
राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती । नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा । करहिं सकल सुर-दुरलभ भोगा ॥
अहनिसि बिधिहिं मनावत रहहीं । श्रीरघुबीर-चरन-रति चहहीं ॥
नर अरु नारि राम-गुन-गानहिं । करहिं दिवसनिसिजातमनजानहिं॥

दोहा

अवध-पुरी-बासिन्ह कर, सुख-संपदा-समाज ।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम बिराज ॥ २० ॥

[रामचरितमानस]

राग केदारा

देखत अवध को आनंद ।
हरषि बरषत सुमन दिन-दिन देवतनि को बृन्द ॥
नगर-रचना सिखन को बिधि तकत बहु बिधि बंद ।
निपट लागत अगम ज्यों जलचरहि गमन सुछंद ॥
मुदित पुर-लोगनि सराहत निरखि सुखमाकंद ।
जिन्ह के सुअलि-चख पियत राम-मुखारबिंद-मरंद ॥
मध्य ब्योम बिलंबि चलत दिनेस, उडुगन, चंद ।
रामपुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख-द्वंद ॥ २१ ॥

२०—अहनिसि=दिन रात । रति=प्रीति ।

२१—बंद=बंध, रचना के भेद । अलि-चख=नेत्ररूपी भौंरे । मरन्द=पराग । व्योम=आकाश । बिलंबि=देर करके, ठहर करके । उडुगन=तारागण ।

राग आसावरी

साँझ समय रघुबीर-पुरी की सोभा आजु बनी ।
ललित दीपमालिका बिलोकहिं हितकरि अवध-धनी ॥
फटिक भीति सिखरन पर राजति कंचन-दीप-अनी ।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहस-फनी ॥
प्रतिमंदिर कलसनि पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी ।
मानहुँ प्रगटि बिपुल लोहितपुर पठइ दिए अवनी ॥
घर घर मंगल चार एकरस हरषित रंक गनी ।
तुलसिदास कल कीरति गावहिं जो कलि-मल-समनी ॥ २२ ॥

[गीतावली]

राग कल्यान

देखु सखि ! आजु रघुनाथ-सोभा बनी ।
नील-नीरद-बरन—बपुष, भुवनाभरन,
पीत-अंबर-धरन हरन-दुति-दामिनी ॥
सरजु मज्जन किए, संग सज्जन लिए,
हेतु जन पर हिये, कृपा कोमल घनी ।
सजनि, आवत भवन, मत्त-गजवर-गवन.
लंक मृगपति-ठवनि, कुवँर कोसल-धनी ॥

२२—हितकरि = प्रेमपूर्वक । अनी = पंक्ति । अहिनाथ = शेष नारायण । लोहित पुर = मङ्गल-लोक । अवनी = पृथ्वी । गनी = धनी, अमीर । समनी = शमन अर्थात् नाश करनेवाली ।

२३—नीरद = मेघ । बपुष = शरीर । दामिनी-दुति = बिजली की कांति । हेतु = प्रेम । लंक = कटि, कमर । मृगपति = सिंह ।

सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल
करनि बिबरत चतुर सरस सुखमा जनी ।
ललित अहि-सिसु-निकर मनहुँ ससिसन समर
लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी ॥
भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन, पलक
चारु भ्रू नासिका सुभग सुक-आननी ।
चिबुक सुन्दर, अधर अरुन, द्विज-दुति सुघर,
बचन गंभीर, मृदु हास भव-भाननी ॥
स्रवन कुण्डल, बिमल गंड-मंडित चपल,
कलित कल कांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी ।
जुगल कंचन-मकर मनहुँ बिधुकर मधुर,
पियत पहिचानि करि सिंधु-कीरति भनी ॥
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुबिसाल चहुँ पास बनि गजमनी ।
स्याम नव जलद पर निरखि दिनकर-कला
कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन-अनी ॥
मंदिरनि पर खरी नारि आनँद-भरी,
निरखि बरषहिं बिपुल कुसुम कुंकुम-कनी ।

कुटिल = घूँघर वाले । चिकुर = बाल । बिलुलित = उलझे हुए । करनि बिबरत = हाथों से सुलझा रहे हैं । सुखमा = शोभा । धरहरि करत = बीच बचाव करते हैं । फनी = साँप; दोनो हाथों से तात्पर्य है । भ्रू = भौंह । सुक–आननी = तोते की चोंच । द्विज = दाँत ।
सुघर = सुगढ़, एक से । भव–भाननी = संसार अर्थात् जन्म–मरण के दुःख को नष्ट करने वाली । गंड = कपोल का ऊपरी भाग । तनी = तानी, फैलाई । बिधुकर = चंद्र–किरण । उरसि = हृदय पर । गजमनी = गजमुक्ता ।

दासतुलसी राम परमकरुना-धाम,
काम-सत-कोटि-मद हरति छबि आपनी ॥ २३ ॥

राग केदारा

सखि रघुनाथ-रूप निहारु ।
सरद्-विधु-रवि-सुवन-मनसिज-मान-भंजनिहारु ॥
स्याम सुभग सरीर जनु मन-काम-पूरनिहारु ।
चारु चंदन मनहुँ मरकत-सिखर लसत निहारु ॥
रुचिर उर उपबीत राजत, पदिक गजमनि-हारु ।
मनहुँ सुर-धनु नखत गन बिच तिमिर-मंजनिहारु ॥
बिमल पीत दुकूल दामिनि-दुति-बिनिंद निहारु ।
बदन-सुषमा-सदन सोभित मदन-मोहनिहारु ॥
सकल अंग अनूप नहिं कोउ सुकबि बरननिहारु ।
दासतुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनिहारु ॥

राग भैरव

राम-चरन अभिराम कामप्रद तीरथराज बिराजै ।
संकर-हृदय भगति-भूतल धर प्रेम-अछयबट भ्राजै ॥
स्याम बरन पद-पीठ, अरुन तल, लसति बिसद नख-स्रेनी ।
जनु रबि-सुता, सारदा, सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी ॥

२४—रवि-सुवन = अश्विनीकुमार; यह बड़े सुन्दर माने गये हैं। मनसिज = कामदेव । मरकत = नीलम मणि । उपवीत = जनेऊ । गजमनि = गजमुक्ता । सुरधनु = इंद्रधनुष । मंजनिहारु = स्वच्छ करनेवाला । दुकूल = वस्त्र । विनिंदनिहारु = लजानेवाला । सुषमा = शोभा । सदन = स्थान ।

२५—तीरथराज = प्रयाग से अभिप्राय है । अछयबट = अक्षयवट । अरुन तल = लाल तलुवे । नख-स्रेनी = नहों की पंक्ति । रवि-सुता = श्याम वर्णकी यमुना । सारदा = लाल वर्ण की सरस्वती । सुरसरि = श्वेत वर्ण की गंगा ।

अंकुस कुलिस कमल धुज सुंदर भँवर तरंग बिलासा।
मज्जहिं सुर-सज्जन-मुनि-जन-मन मुदित मनोहर बासा॥
बिनु बिराग जप जाग जोग व्रत, बिनु तप, बिनु तनु त्यागे।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु-पद-प्रयाग अनुरागे॥२५॥

राग बसंत

खेलत बसंत राजाधिराज। देखत नभ कौतुक सुर-समाज॥
सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ। झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ॥
बाजहिं मृदंग डफ ताल बेनु। छिरकैं सुगंध-भरे मलय रेनु॥
उत जुवति-जूथ जानकी संग। पहिरे पट भूषन सरस रंग।
लिए छरी बेंत सोधैं बिभाग। चाँचरि झूमक कहैं सरस राग॥
नूपुर-किंकिनि-धुनि अति सोहाइ। ललना-गन जब जेहि धरइँ धाइ॥
लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ। छाँड़हिं नचाइ हाहा कराइ॥
चढ़े खरनि बिदूषक स्वाँग साजि। करैं कूटि, निपट गइ लाज भाजि॥
नर नारि परसपर गारि देत। सुनि हँसत राम भाइन समेत॥
बरषत प्रसून बर बिबुध बृन्द। जय जय दिनकर-कुल-कुमुद-चंद
ब्रह्मादि प्रसंसत अवध-बास। गावत कल कीरत तुलसिदास॥

[गीतावली]

अंकुस······ धुज = चरण-चिन्ह।। जाग = याग, यज्ञ। सद्य = तुरन्त।
२६-बेनु = वंशी। मलय-रेनु = चन्दन का चूर्ण। सोंधैं = सुगंधित चीजें।
चाँचरि झूमक = फागोत्सव गाने के राग। किंकिणि = करधनी। ललना = स्त्री।
बिदूषक = भाँड़। कूटि = छल, कपट। प्रसून = फूल। बिबुध = देवता।
कल = सुन्दर।

दोहा

मो सम दीन न दीन-हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भव-भीर ॥ २७ ॥
कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुबंस-निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥ २८ ॥

[रामचरितमानस]

२७-बिषम = दारुण। भीर = पीड़ा। भव भार = जन्म-मरण की यातना।

श्रीकृष्ण–चरित

राग बिलावल

माता लै उछंग गोविंद-मुख बार-बार निरखै।
पुलकित तनु आनंदघन छन-छन मन हरषै॥
पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई।
अतिसय सुख जा तें तोहि मोहि कहु समुझाई॥
देखत तव बदन-कमल मन अनंद होई।
कहै कौन रसन मौन जानै कोई-कोई॥
सुन्दर मुख मोहिं देखाउ, इच्छा अति मोरे।
मम समान पुन्यपुंज बालक नहिं तोरे॥
तुलसी प्रभु प्रेमबस्य मनुज-रूप-धारी।
बाल-केलि लीलारस ब्रज-जन-हितकारी॥ १॥

राग आसावरी

तोहिं स्याम की सपथ जसोदा आइ देखु गृह मेरे।
जैसी हाल करी यह ढोटा छोटे निपट अनेरे॥
गोरस-हानि सहौं न कहौं कछु यहि ब्रजबास बसेरे।
दिनप्रति भाजन कौन बेसाहै? घर निधि काहूके रे॥

१–उछंग = गोद। रसन = रसना, जीभ, वाणी। पुन्य-पुञ्ज = पुण्यों का समूह, परम पुण्यात्मा, पुण्यों का फल। प्रेमबस्य = प्रेम के अधीन।

२–ढोटा = बच्चा। गोरस = दूध। दिनप्रति = नित्य। भाजन = पात्र, बर्तन। बेसाहैं = खरीदेगा।

किये निहारो हँसत, खिझेतें डाटत नयन तरेरे।
अबहीं ते ये सिखे कहा धौं चरित ललित सुत तेरे॥
बैठो सकुचि साधु भयो चाहत मातु-बदन तन हेरे।
तुलसिदास प्रभु कहौं ते बातें जे कहि भजे सबेरे॥ २॥

*

मोकहँ झूठेहु दोष लगावहिं।
मैया! इन्हहिं बानि परगृह की, नाना जुगुति बनावहिं॥
इन्ह के लिये खेलिबो छाँड्यौ तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस देन उरहनो आवहिं॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि मिस करि उठि-उठि धावहिं।
करहिं आपु सिर धरहिं आनके बचन बिरंचि हरावहिं॥
मेरी टेव बूझि हलधर को, संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहिं काहू को ते सिसु मोहि न भावहिं॥
सुनि-सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि हँसि-हँसि बदन दुरावहिं।
बाल गोपाल केलि-कल-कीरति तुलसिदास मुनि गावहिं॥३॥

राग केदारा

अबहिं उरहनो दै गई, बहुरो फिरि आई।
सुनु मैया! तेरी सौं करौं, याकी टेव लरनकी, सकुच बेंचि सी खाई॥
या ब्रज में लरिका घने, हौंही अन्याई।

तरेरे = गुस्सा से चढ़ाये हुए। साधु = सीधा-सादा, सरल। बदन तन = मुख की ओर। भजे = भागे।

३—बानि = आदत। जुगुति = युक्ति। उबरन पावहिं = बचने पाते हैं। पानि = हाथ। बचन······हरावहिं = बात ऐसी-ऐसी बनाती हैं कि जिन्हें सुनकर ब्रह्मा भी हार जाय! टेव = आदत, स्वभाव। हलधर = बलभद्र, श्रीकृष्ण के अग्रज।

४—सौं करौं = शपथ खाता हूँ। सकुच = शील-संकोच, लाज-शरम। घने = बहुत।

मुहँ लाए मूड़हि चढ़ी अंतहु अहिरिनि तू सूधी करि पाई ॥
सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई ।
तुलसिदास ग्वालिनी ठगी,आयो न उतर कछु कान्ह ठगौरीलाई ४

राग गौरी

छाँड़ो, मेरे ललित ललन ! लरिकाई ।
ऐहैं सुत देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह की बात चलाई ॥
डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि, हँसिहैं नई दुलहिया सुहाई ।
उबटौं न्हाहु गुहौं चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहिं बड़ाई ॥
मातु कह्यो करि कहत बोलि दै, भई बड़ि बार कालि तौ न आई ।
जब सोइबो तात यों हाँ कहि नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई ॥
उठि कह्यौ भोर भयो झँगुली दै, मुदित महरि लखि आतुरताई ।
बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि लगे जननी-उर धाई ॥५॥

राग केदारा

हरिको ललित बदन निहारु ।
निपटहि डाँटति निठुर ज्यों, लकुट कर तें डारु ॥
मंजु अंजन सहित जल-कन चुवत लोचन चारु ।
स्यामसारस मग मनो ससि स्रवत सुधा-सिंगारु ॥
सुभग उर दधि-बुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु ।

लाये=लगाने से । उतर=उत्तर ।

५—देखुवार=देखनेवाले, वर को देखनेवाले । बबै=नंद बाबा ने भी । उबटौं=बटना लगाए देती हूँ । बलि=बलैया लेती हूँ । महरि=ग्वालिनी, यशोदाजी ।

६—डारु=डाल दे, फेंक दे । मंजु=सुन्दर । जलकन=आसू । सुधा-सिंगारु=अमृत और शृंगार रस ; साहित्य में अमृत का श्वेत और शृंगार का श्याम रङ्ग माना गया है । यहां अंजन-मिश्रित आंसुओं से सुधा और शृंगार की उपमा दी गई है । अपनपौ=संज्ञा, ज्ञान, सुध ।

मनहुँ मरकत-मृदु-सिखर पर लसत बिसद तुषारु ॥
कान्हहू पर सतर भौहैं महरि मनहिं बिचारु ।
दासतुलसी रहति क्यों रिस निरखि नंदकुमारु ॥ ६ ॥
(श्रीकृष्णगीतावली)

राग गौरी

टेरि कान्ह गोवर्धन चढ़ि गैया ।
मथि-मथि पियो बारि चारिक मैं भूख न जाति अघाति न घैया ॥
सैल-सिखर चढ़ि चितै चकित चित अति हित बचन कह्यौ बलभैया ।
बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया ॥
बलदाऊ देखियत दूरि ते आवति छाक पठाई मेरी मैया ।
किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों, कूदत कपि कुरंग की नैया ॥
खेलत खात परसपर डहकत छीनत कहत करत रोगदैया ।
तुलसी बालकेलि-सुख निरखत बरषत सुमन सहित सुरसैया ॥७॥

राग नट

गावत गोपाललाल नीके राग नट हैं ।
चलि री आली देखन लोयन-लाहु पेखन ठाढ़े सुरतरु-तर तटिनीकेतट हैं॥
मोरचंदा चारु सिरमंजु गुंजा-पुंज धरे बनि बनधातु तन ओढ़े पीतपट हैं।

मरकत = नीलम । सतर = टेढ़ी, गुस्सा से भरी हुई ।

७-घैया = ताजे, बिना मथे हुए दूध के ऊपर उतराते, हुए मक्खन के इकट्ठा करने की क्रिया । सैल-सिखर = पहाड़ की चोटी । बेनु = मुरली । धुकि धैया = जल्दी से दौड़ आई । छाक = दोपहर का भोजन । कुरङ्ग = मृग । नैया = नाई, तरह । रोगदैया = बेईमानी । सहित = प्रेम से । सुरसैया = देवतों का स्वामी, इन्द्र ।

८-नट = एक राग का नाम । लोयन-लाहु = आंखों का लाभ । सुरतरु-तर = कल्प-वृक्ष के नीचे; यहां कदम्ब वृक्ष से अभिप्राय है । तटिनी = नदी; यमुना से आशय है । मोरचन्दा = मोर-पंख । गुंजा = घुंघुची । बनि बन-धातु = गेरू, रज आदि से शरीर को रंग कर ।

मुरली तान तरंग मोहे कुरंग बिहंग, जोहैं मूरति त्रिभंग निपटनिकटहैं॥
अंबर अमर हरषत बरषत फूल, सनेह-सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं।
तुलसी प्रभु निहारि जहँ तहँ ब्रजनारि ठगी ठाढ़ी मग लिये रीतेभरे घटहैं ८

राग बिलावल

आजु उनींदे आये मुरारी।
आलसवंत सुभग लोचन सखि छिन मूँदत, छिन देत उघारी॥
मनहुँ इंदु पर खंजरीट दोउ कछुक अरुन बिधि रचे सँवारी।
कुटिल अलक जनु मार फंद कर गहे सजग है रह्यो सँभारी॥
मनहुँ उड़न चाहत अति चंचल पलक पंख छिन देत पसारी।
नासिक-कीर, बचनपिक सुनि करि संगति मनु गुनि रहत बिचारी॥
रुचिर कपोल, चारु कुंडल बर, भ्रुकुटि सरासन की अनुहारी।
परम चपल तेहि त्रास मनहुँ खग प्रगटत दुरत न मानत हारी॥
जदुपति मुख-छबि कलप कोटि लगि कहि न जाइ जाके मुख चारी।
तुलसिदास जेहि निरखि ग्वालिनी भजी तात पति तनय बिसारी॥९॥

राग गौरी

गोपाल गोकुल-बल्लभी-प्रिय गोप-गोसुत-बल्लभं।
चरनारविंदमहं भजे भजनीय सुर-मुनि-दुर्लभं॥
घनस्याम काम-अनेक-छबि, लोकाभिराम मनोहरं।

बिहंग = पक्षी। जोहैं = देखते हैं। अंबर = आकाश, स्वर्ग। ठट = समूह। रीते = खाली।

९—इन्दु = चंद्रमा। खंजरीट = खजन पक्षी। मार = कामदेव। नासिक-कीर = नाकरूपी तोता। वचन-पिक = वचनरूपी कोयल। सरासन = धनुष। अनुहारी = समान। जाके मुख चारी = चार मुखवाला ब्रह्मा। भजी = भागी। तनय = पुत्र।

१०—चरनारबिंदमहं = चरणारविन्दम्+अहम्, चरण-कमलों को मैं। भजे = भजता हूँ। अभिराम = सुन्दर।

किंजल्क-बसन, किसोर-मूरति, भूरि गुन करुनाकरं ॥
सिर केकि-पच्छ बिलोल कुंडल अरुन बनरुह-लोचनं ।
गुंजावतंस विचित्र, सब अँग धातु भव-भय-मोचनं ॥
कच कुटिल, सुंदर तिलक भ्रू राका-मयंक-समाननं ।
अपहरन तुलसीदास त्रास बिहार वृंदाकाननं ॥ १० ॥

[श्रीकृष्णगीतावली]

राग बिलावल

बिछुरत श्रीब्रजराज आजु इन नयननि की परतीति गई ।
उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि, ह्वै न गये सखि स्याममई ॥
रूप-रसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौ न भई ।
साँचेहु कूर कुटिल, सित मेचक, वृथा मीन-छबि छीनि लई ॥
अब काहे सोचत मोचत जल, समय गये चित सूल नई ।
तुलसिदास तब अपहुँ से जड़ भये, जब पलकनि हठ दगा दई ॥ ११ ॥

राग धनाश्री

सखि तेँ सीतल मोको लागै माई री ! तरनि ।
याके उए बरत अधिक अँग अँग दव, वाके उए मिटति रजनि-जनित जरनि

किंजल्क = कमल- केसर के रंग का, पीला । भूरि = बहुत । केकि = मोर । बिलोल = चंचल । वनरुह = कमल । गुंजावतंस = गुंजा+अवतंस, गुंजाओं के भूषण । धातु = बनधातु; गेरु, रज आदि । कच = बाल । राका मयंक समाननं = पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाले को । बृन्दाकानन = वृन्दावन ।

११—परतीति = प्रतीति, विश्वास । मेचक = काला । वृथा''''''लई = मछली से नेत्रों की उपमा दी गई है; मछली बिना जल के मरजाती है, पर ये नेत्र अब भी जीवित हैं, अत: यह उपमा व्यर्थ है । मोचत जल = आंसू बहाते हैं । दगा = धोखा ।

१२—तरनि = सूर्य । उए = उदय होने पर । दव = आग । जनित = उत्पन्न । जरनि = जलन ।

सब विपरीत भये माधव बिनु, हित जो करत अनहित की करनि ।
तुलसिदास स्यामसुंदर-बिरहकी दुसह दसा सो मोपै परति नहीं बरनि१२

राग मलार

कोउ सखि नई चाह सुनि आई ।
यह ब्रजभूमि सकल सुरपति सों मदन मिलिक करि पाई ॥
घन-धावन, बगपाँति पटो-सिर, बैरख-तड़ित सोहाई ।
बोलत पिक नकीब, गरजनि मिस मानहुँ फिरत दोहाई ॥
चातक मोर चकोर मधुप सुक सुमन समीर सहाई ।
चाहत कियो बास बृन्दाबन बिधि सों कछु न बसाई ॥
सींव न चाँपि सको कोऊ तब जब हुते राम कन्हाई ।
अब तुलसी गिरिधर बिनु गोकुल कौन करिहि ठकुराई ॥१३॥

राग सोरठ

मधुकर ! कहहु कहन जो पारो ।
नाहिंन, बलि, अपराध रावरो, सकुचि साध जनि मारो ॥
नहिं तुम ब्रज बसि नंदलाल को बालबिनोद निहारो ।
नाहिन रास-रसिक-रस चाख्यो, तातें डेल सो डारो ॥
तुलसी जो न गए प्रीतम सँग प्रान त्याग तनु न्यारो ।
तौ सुनिबो देखिबो बहुत अब, कहा करम सों चारो ॥ १४ ॥

१३—चाह = चर्चा । मिलिक = जागीर, ज़मीन मुआफ़ी । धावन = दूत, हरकारा । पटोसिर = शिर की (सफेद) पगड़ी 'दीन' जी की सम्मति से 'पटो सखि !' पाठ मानने से 'पटो' का अर्थ 'पट्टा' । बैरख = सेना का झंडा, पताका । नकीब = राजाओं के आगे-आगे चलने तथा विरुदावली कहनेवाला; चारण, भाट । सींव = सीमा, हद । हुते = थे ।

१४—पारो = सको । साध = इच्छा । डेल सो डारो = पत्थर सा मारते हो; योग की बातें कहते हो ।

राग मलार

मधुप ! तुम कान्ह ही की कही क्यों न कही है ?
यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरीऐ रही है ॥
कब ब्रज तज्यौ, ग्यान कब उपज्यौ, कब बिदेहता लही है ।
गए बिसारि रीति गोकुल की, अब निर्गुन गति गही है ॥
आयसु देहु करहिं सोइ सिर धरि प्रीति-परिमिति निरबही है।
तुलसी परमेस्वर न सहैगो, हम अबलनि जो सही है ॥१५॥

*

दीन्हीं है मधुप सबहिं सिख नीकी ।
सोइ आदरौ आस जाके जिय बारि बिलोवत घी की ॥
बूझी बात कान्ह कुबरी की, मधुकर कछु जनि पूछौ ।
ठालीं ग्वालि जानि पठए, अलि, कह्यो है पछोरन छूछौ ॥
हमहूँ कछुक लखी ही तबकी औरेबैं नंदलला की ।
ये अब लही चतुर चेरी पै चोखी चालि चलाकी ॥
गए कर तें, घर तें, आँगन तें ब्रजहू त ब्रजनाथ ।
तुलसी प्रभु गयो चहत मनहु तें सो तो है हमारे हाथ ॥१६॥

राग केदारा

ऐसे हौंहु जानत भृंग ।
नाहिंनै काहू लह्यौ सुख प्रीति करि इक अंग ॥
कौन भीर जो नीरदहि जेहि लागि रटत बिहंग ।

१५—बतकही = बात । चेरी = दासी; कूबरी से अभिप्राय है । चरेरीऐ = चापलूसी ही । निर्गुन = प्राकृत गुणों से रहित । परमिति = प्रमाण । अबलनि = अबला स्त्रियों ने ।

१६—आदरौ = आदर करे । ठाली = खाली, बिना काम-काज का । औरेबैं = टेढी चालें ।

१७—भीर = कष्ट । नीरद = मेघ । बिहंग = पपीहे से अभिप्राय है ।

मीन जल बिनु तलफि तनु तजै, सलिल सहज असंग ॥
पीर कछू न मनिहिं जाके बिरह-बिकल भुअंग ।
ब्याध-बिसिष बिलोक नहिं कलगान-लुबुध कुरंग ॥
स्यामघन गुनवारि छबि-मनि मुरलि-तान-तरंग ।
लग्यो मन बहु भाँति तुलसी होइ क्यो रसभंग ? ॥१७॥

*

ऊधो ! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुखदीन ?
सुनत समुझत कहत हम सब भईं अति अप्रवीन ॥
अहि कुरंग पतंग पंकज चारु चातक मीन ।
बैठि इनकी पाँति अब सुख चहत मन मतिहीन ।
निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न ॥
दासतुलसी सोच निज नित प्रेम जानि मलीन ॥१८॥

[श्रीकृष्णगीतावली]

सवैया

जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याम सों स्यानी सखी हठि हौं बरजी ।
नहिं जान्यों बियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं, तेहि सों तरजी ॥
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा-दरजी ।
ब्रजराज-कुमार बिना सुनु भृंग ! अनंग भयो जिय को गरजी ॥ १९ ॥
जोग-कथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी ॥

सहज असंग=स्वभाव से ही (मछली के प्रति) विरक्त है । भुवंग=साँप ।
बिसिष=वाण । लुबुध=लुब्ध, मोहित ।

१८–अप्रवीन=मूर्ख । अहि=सांप । पतंग=दीपक में जल जानेवाले कीड़े ।
चातक=पपीहा ।

१९–हौं बरजी=मुझे रोका । देह भईपट=शरीर, कपड़े की तरह, झीना अर्थात् दुबला हो गया । नेह के घाले सों=प्रेम की चोट से । अनंग=कामदेव ।
जिय को गरजी=जी लेना चाहता है ।

ऊधोजू ! क्यों न कहैं कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी ॥
जाहि लगै पर जानै सोई, तुलसी सो सुहागिनि नंदलला की ।
जानी है जानपनी हरि की, अब बाँधियैगी कछु मोटि कला की ॥२०॥

कवित्त

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ
खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बालको ।
ग्यान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार-
खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उर-साल को ॥
प्रीति को बधिक, रसरीति को अधिक नीति-
निपुन, बिबेक है निदेस देसकाल को ॥
तुलसी कहे न बनै, सहेही बनैगी सब,
जोग भयो जोग को बियोग नंदलाल को ॥२१॥

[कवितावली]

राग गौरी

मोको अब नयन भए रिपु, माई ।
हरि-वियोग तनु तजेहि परमसुख ए राखहि सोइ है बरियाई ।
बरु मन कियो बहुत हित मेरो बारहि बार काम दव लाई ॥
बरषि नीर ये तबहिं बुझावहि स्वारथ-निपुन अधिक चतुराई ॥

२०—हलाकी = घातक । जानपनी = समझ । बांधियैगी = बाँधें हीगी, बाँधेगीही । मोटि = गठरी ।

२१—छपद = भौंरा; उद्धव से आशय है । गिरा = वाणी । उरसाल = हृदय का कष्ट । जोग = (१) अवसर, संयोग (२) योग; योग—विद्या ।

२२—माई = सखी । बरियाई = ज़बरदस्ती, हठ से । बरु = यद्यपि । दव = आग । स्वारथ-निपुन = नेत्र स्वार्थ-साधन में बड़े चतुर हैं; वे श्रीकृष्ण को देखना चाहते हैं, इसी आशा से विरहाग्नि से जलते शरीर को आँसुओं से बुझा देते हैं ।

ज्ञान-परसु दै मधुप पठायो बिरह-बेलि कैसेहु कठिनाई।
सो थाक्यो बरह्यों एकहि तक देखत इनकी सहज सिंचाई॥
हारत हू न हार मानत, सखि, सठ-सुभाव कंदुक की नाईं।
चातक जलज मीनहुँ ते भोरे समुझत नहिं उनकी निठुराई॥
ए हठ-निरत दरस-लालच-बस परे जहाँ बुधि-बल न बसाई।
तुलसिदास इन्ह पर जो द्रवहिं हरि तौ पुनि मिलौं बैरु बिसराई॥२२॥

[श्रीकृष्णगीतावली]

राग आसावरी

गहगह गगन दुंदुभी बाजी।
बरषि सुमन सुरगन गावत जस, हरष-मगन मुनि सुजन-समाजी॥
सानुज सगन ससचिव सुजोधन भए मुख मलिन खाइ खल खाजी।
लाज गाज उनवनि कुचाल कलि परी बजाइ कहुँ कहुँ गाजी॥
प्रीति प्रतीति द्रुपद-तनया की भली भूरि भय भभरि न भाजी।
कहि पारथ-सारथिहि सराहत गई-बहोरि गरीब-निवाजी॥
सिथिल-सनेह मुदित मनहीं मन बसन बीच बिच बधू बिराजी।
सभासिंधु 'जदुपति-जय जय' जनु रमा प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी॥
जुग-जुग जग साके केसव के समन-कलेस कुसाज-सुसाजी।
तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्ण-कृपालु-भगति-पथ राजी?॥२३॥

[श्रीकृष्णगीतावली]

बरह्यों = बरहे में। एकहि तक = लगातार। कंदुक = गेंद। भोरे = भोले, सीधे, मूर्ख। हठ-निरत = बड़े हठीले। बसाई = वश।

२३—गहगह = सघन, जोर से, खूब। सानुज = भाई अर्थात् दुःशासन सहित। सुजोधन = दुर्योधन। खाजी = खाद्य। खाइ खाजी = मुँह की खाकर। द्रुपद-तनया = द्रौपदी। भूरि······भाजी = बड़े भारी भय से घबरा कर भागी नहीं, स्थिर रही। पारथ-सारथी = अर्जुन का रथ हांकनेवाले श्रीकृष्ण। बधू = द्रौपदी से आशय है। रमा = लक्ष्मी। साके = यश।

श्रीशिव-चरित्र

—*०*—

चौपाई

एक बार त्रेतायुग माहीं। संभु गये कुंभज रिषि पाहीं॥
संग सती जग-जननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेश्वर जानी॥
राम-कथा मुनि-बर्ज बखानी। सुनी महेस परमसुख मानी॥
मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छ-कुमारी॥
तेहि अवसर भंजन-महि-भारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
पिता-बचन तजि राज-उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी॥

दोहा

हृदय बिचारत जात हर, केहि बिधि दरसनु होइ।
गुपुत रूप अवतरेउ प्रभु, गये जान सब कोइ॥ १॥

सोरठा

संकर-उर अति छोभु, सती न जानइ मरम सोइ।
तुलसी दरसन-लोभु, मन डर लोचन लालची॥ २॥

चौपाई

जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥
एहि बिधि भये सोच-बस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपट-कुरंगा॥

१–कुम्भज = अगस्त्य। रिषि = ऋषि। सती = दक्ष प्रजापति की पुत्री एवं शिवजी की पत्नी। अखिलेश्वर = सबके स्वामी। मुनिबर्ज = मुनिवर्य, मुनि–श्रेष्ठ। त्रिपुरारी = शिवजी। उदासी = विरक्त।

२–छोभु = क्षोभ। मरम = भेद।

३–दससीस = रावण। मारीच = एक मायावी राक्षस।

करि छल मूढ़ हरी बैदेही । प्रभु-प्रभाउ तस बिदित न तेही ॥
मृग बधि बंधु सहित प्रभु आये । आस्रमु देखि नयन जल छाये ॥
बिरह-बिकल नर इव रघुराई । खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई ॥
संभु समय तेहि रामहिं देखा । उपजा हिय अति हरषु बिसेखा ॥
भरि लोचन छबि-सिंधु निहारी । कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी ॥
जय सच्चिदानंद जगपावन । अस कहि चलेउ मनोज-नसावन ॥
चले जात सिव सती समेता । पुनि-पुनि पुलकत कृपानिकेता ॥
सती सो दसा संभु कै देखी । उर उपजा संदेहु बिसेखी ॥
संकर जगत-बंद्य जगदीसा । सुर नर मुनि सब नावत सीसा ॥
तिन्ह नृप-सुतहिं कीन्ह परनामा । कहि सच्चिदानंद परधामा ॥
भये मगन छबि तासु बिलोकी । अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ॥

दोहा

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद ॥ ३ ॥

चौपाई

बिष्णु जो सुर-हित नर-तनु-धारी । सोउ सरबग्य जथा त्रिपुरारी ॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी । ग्यान-धाम श्रीपति असुरारी ॥
संभु-गिरा पुनि मृषा न होई । सिव सरबग्य जान सब कोई ॥
अस संसय मन भयउ अपारा । होइ न हृदय प्रबोध-प्रचारा ॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी । हर अंतरजामी सब जानी ॥

इव = समान । मनोज-नसावन = कामदेव को भस्म करनेवाले शिवजी । परनामा = प्रणाम । परधामा = सब लोकों से परे; परब्रह्म । बिरज = राग-रहित । अज = जन्म न लेनेवाला । अकल = कला-रहित, अखंड । अनीह = इच्छा-रहित ।

४—जथा = यथा । गिरा = वाणी, वचन । मृषा = झूठ । अंतरजामी = अंतर्यामी, हृदय की बात जाननेवाले ।

सुनहि सती तब नारि-सुभाऊ । संसय अस न धरिय उर काऊ ॥
जासु कथा कुंभज रिषि गाई । भगति जासु मैं मुनिहिं सुनाई ॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा । सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥
जौं तुम्हरे मन अति संदेहू । तौं किन जाइ परिच्छा लेहू ॥
जैसे जाइ मोह भ्रम भारी । करेहु सो जतन बिबेक बिचारी ॥
चली सती सिव-आयसु पाई । करइ बिचार करउँ का भाई ॥

दोहा

पुनि पुनि हृदय बिचार करि धरि सीता कर रूप ।
आगे होइ चलि पंथ तेहि, जेहि आवत नरभूप ॥ ४ ॥

चौपाई

लछिमन दीख उमाकृत बेषा । चकित भये भ्रम हृदय बिसेषा ॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा । प्रभु-प्रभाउ जानत मतिधीरा ॥
सती-कपट जानेउ सुर-स्वामी । समदरसी सब अंतरजामी ॥
निज मायाबल हृदय बखानी । बोले बिहँसि राम मृदु बानी ॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥

दोहा

राम-बचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति संकोचु ।
सती सभीत महेस पहँ, चली हृदय बड़ सोचु ॥ ५ ॥

चौपाई

जाना राम सती दुख पावा । निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥
सती दीख कौतुक मग जाता । आगे राम सहित श्री भ्राता ॥

काऊ = कभी । कुंभज = अगस्त्य । परिच्छा = परीक्षा ।
५—जोरि पानि = हाथ जोड़ कर । बृषकेतू = शिवजी । सभीत = डरी हुई ।
६—कौतुक = तमाशा । श्री = सीताजी ।

फिर चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा ॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥
पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेषा। रामरूप दूसर नहिं देखा ॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता-सहित न बेष घनेरे ॥
सोइ रघुबर सोइ लछमन सीता। देखि सती अति भई सभीता ॥
हृदय कंप तन-सुधि कछु नाहीं। नयन मूंदि बैठी मग माहीं ॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी ॥
पुनि-पुनि नाइ राम-पद सीसा। चली तहाँ जहँ रहे गिरीसा ॥
सती समुझि रघुबीर-प्रभाऊ। भय-बस सिव सन कीन्ह दुराऊ ॥
कछु न परिच्छा लीन्हि गुसाईं। कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं ॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना ॥
सती कीन्ह सीता कर बेषा। सिव-उर भयेउ बिषाद बिसेषा ॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति-पथ होइ अनीती ॥

परम प्रेम तजि जाइ नहिं, किये प्रेम बड़ पाप।
प्रगटि न कहत महेश कछु, हृदय अधिक संताप ॥ ६ ॥

चौपाई

तब शंकर प्रभु-पद सिरु नावा। सुमिरत राम हृदय अस आवा ॥
एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं ॥
अस बिचारि संकर मति धीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा ॥

दोहा

सती हृदय अनुमान किय, सब जानेउ सरबग्य।
कीन्हु कपट मैं संभु सन, नारि सहज जड़ अग्य ॥ ७ ॥

आसीना = विराजमान। घनेरे = बहुत। दच्छ-कुमारी = दक्ष प्रजापति की पुत्री सती। गिरीश = शिवजी। दुराऊ=छिपाव। सन=से, साथ। संताप=दुःख। ७—नावा = झुकाया। संकल्प = प्रतिज्ञा। जड़ = मूर्ख। अग्य = अज्ञ, ज्ञान-रहित, मूढ़।

सोरठा

जल पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति की रीति भलि ।
बिलग होइ रस जाइ, कपट-खटाई परत पुनि ॥ ८ ॥

चौपाई

हृदय सोच समुझत निज करनी । चिंता अमित जाइ नहिं बरनी ॥
कृपासिंधु सिव परम अगाधा । प्रगट कहेउ न मोर अपराधा ॥
नित नव सोच सती-उर भारा । कब जइहउँ दुख-सागर पारा ॥
मैं जो कीन्ह रघुपति-अपमाना । पुनि पति-बचन मृषा करि जाना ॥
सो फल मोहि बिधाता दीन्हा । जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ॥
जौं प्रभु दीनदयाल कहावा । आरति-हरन बेद जस गावा ॥
तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी । छूटउ बेगि देह यह मोरी ॥
जौं मोरे सिव-चरन सनेहू । मन क्रम बचन सत्य ब्रत एहू ॥

दोहा

तौ समदरसी सुनहु प्रभु, करउ सो बेगि उपाइ ।
होइ मरन जेहि बिनहिं स्रम, दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥ ९ ॥

[राम-चरित-मानस]

पिता-भवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होइ ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ ॥ १० ॥

८-पय = दूध । बिलग = अलग ।

९-अगाधा = बहुत गहरा, महान् । भारा = भारी । मृषा = असत्य । आरति = कष्ट । क्रम = कर्मणा, कर्म से । बिहाइ = नष्ट हो ।

१०-कृपायतन = कृपाके स्थान, परमकृपालु ।

चौपाई

कहेहु नीक मोरेहु मन भावा । यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाई । हमरे बैर तुम्हउ बिसराई ॥
ब्रह्म-सभा हमसन दुख माना । तेहितें अजहुं करहिं अपमाना ॥
जौं बिन बोले जाहु भवानी । रहइ न सील सनेह न कानी ॥
जदपि मित्र-प्रभु-पितु-गुरु-गेहा । जाइय बिनु बोलेहु न सँदेहा ॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई । तहाँ गये कल्यान न होई ॥
भांति अनेक संभु समुझावा । भावी-बस न ग्यान उर आवा ॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाये । नहिं भलि बात हमारेहि भाये ॥

दोहा

करि देखा हर जतन बहु, रहइ न दच्छ-कुमारि ।
दिये मुख्यगन संग तब, बिदा कीन्हि त्रिपुरारि ॥११॥

चौपाई

पिता-भवन जब गई भवानी । दच्छ-त्रास काहु न सनमानी ॥
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता । सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सती जाइ देखेउ तब जागा । कतहुँ न दीख संभुकर भागा ॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ । प्रभु-अपमान समुझि उर दहेऊ ॥
पाछिल दुख अस हृदय न ब्यापा । जस यह भयउ महा परितापा ॥
जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सबतें कठिन जाति-अपमाना ॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा । बहुबिधि जननी कीन्ह प्रबोधा ॥

११—ब्रह्म-सभा = ब्रह्माकी सभा । दुःख = बैर । कानी = मर्यादा । कल्याण = भला । भावी = होनहार । भाये = समझ में । त्रिपुरारि = शिवजी ।

१२—त्रास = भय । सनमानी = सम्मान किया । गाता = अंग । जागा = याग, यज्ञ । भागा = यज्ञ-बलि । परिताप = कष्ट ।

दोहा

सिव-अपमान न जाइ सहि, हृदय न होइ प्रबोध ।
सकल सभहिं हठि हटकि तब, बोली बचन सक्रोध ॥ १२ ॥

चौपाई

सुनहु सभासद सकल मुनिन्दा । कही सुनी जिन्ह संकर-निंदा ॥
सो फलु तुरत लहब सब काहू । भलीभाँति पछिताब पिताहू ॥
संत—संभु—श्रीपति—अपवादा । सुनिय जहाँ तहँ असि मरजादा ॥
काटिय तासु जीभ जो बसाई । स्रवन मूंदि नत चलिय पराई ॥
जगदातमा महेस पुरारी । जगत-जनक सबके हितकारी ॥
पिता मंदमति निंदत तेही । दच्छ-सुक्र-संभव यह देही ॥
तजिहउँ देह तुरत तेहि हेतू । उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू ॥
अस कहि जोग-अगिनि तनु जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा ॥

दोहा

सती-मरन सुनि संभु-गन, लगे करन मख खीस ।
जग्य-बिधंस बिलोकि भृगु, रच्छा कीन्हि मुनीस ॥ १३ ॥

[रामचरितमानस]

सभहिं = सभा को । हटकि = रोककर ।

१३—मुनिन्द = मुनीन्द्र, बड़े मुनि । श्रीपति = विष्णु । अपवाद = निंदा । मरजादा = मर्यादा, प्रमाण । बसाई = वश । नत = नहीं तो । चलिय पराई = भागजाय। जगदातमा = विश्वात्मा, विश्वव्यापी । पुरारी = शिवजी । जनक = पिता, उत्पन्न करनेवाला । सुक्र—संभव = वीर्य से उत्पन्न । चन्द्रमौलि = मस्तक पर चन्द्रमा धारण करनेवाले शिव । मख = यज्ञ । खीस = नष्ट-भ्रष्ट । बिधंस = विध्वंस, नाश । भृगु = भृगु मुनि ।

चौपाई

उर धरि उमा प्रान-पति-चरना । जाइ बिपिन लागी तप करना ॥
अति सुकुमार न तनु तपजोगू । पति-पद सुमिरि तजेउ सबभोगू ॥
नित नव चरन उपज अनुरागा । बिसरी देह तपहि मन लागा ॥
देखि उमहिं तप-खीन सरीरा । ब्रह्म-गिरा भइ गगन गँभीरा ॥

दोहा

भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराज-कुमारि ।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥ १४ ॥

× × × × ×

चौपाई

रिषिन गौरि देखी तहँ कैसी । मूरतिवंत तपस्या जैसी ॥
बोले मुनि सुनु सैल-कुमारी । करहु कवन कारन तप भारी ॥
केहि अवराधहु, का तुम्ह चहहू । हमसन सत्य मरमु किन कहहू ॥
सुनत रिषिन्ह के बचन भवानी । बोलीं गूढ़ मनोहर बानी ॥
मनु हठ परा न सुनइ सिखावा । चहत बारि पर भीति उठावा ॥
देखहु मुनि अबिबेक हमारा । चाहिअ सिवहि सदा भरतारा ॥

दोहा

सुनत बचन बिहँसे रिषय, गिरि-संभव तव देह ।
नारद कर उपदेस सुनि, कहहु बसेउ को गेह ॥ १५ ॥

१४–जोगू = योग्य । खीन = क्षीण । गिरा = वाणी । परिहरु = छोड़दे ।

१५–रिषिन = ऋषियों ने । अवराधहु = आराधना करती हो । मरमु = मर्म, भेद । बारि = पानी । भीति = दीवाल । अविवेक = अज्ञान । भरतार = पति । गिरि-संभव = पहाड़ अर्थात् पत्थर से उत्पन्न, जड, मूर्ख । गेह = घर ।

चौपाई

निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥
कहहु कवन सुख अस बर पाये। भल भूलेहु ठग के बौराये॥
अजहूं मानहु कहा हमारा। हम तुम्हकहँ बर नीक बिचारा॥
अति सुन्दर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं बेद जासु जस-लीला॥
दूषनरहित सकल—गुन—रासी। श्रीपति पुर–बैकुण्ठ–निवासी॥
अस बर तुम्हहि मिलाउब आनी। सुनत बचन कह बिहँसि भवानी॥
सत्य कहेहु गिरि-भव तनु एहा। हठ न छूट छूटइ बरु देहा॥
नारद-बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ॥

दोहा

महादेव अवगुन-भवन, विष्णु सकल-गुन-धाम।
जेहिकर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम॥ १६॥

चौपाई

अब मैं जनम संभु-हित हारा। को गुन दूषन करइ बिचारा॥
जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु नतु रहउँ कुमारी॥
मैं पाँ परउँ कहइ जगदंबा। तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा॥
देखि प्रेम बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी॥

१६–निर्गुन = (१) मूर्ख (२) मायात्मक गुणों से रहित निर्विकार ब्रह्म। कपाली= नरमुंड धारण करनेवाला। अगेह = गृह-रहित। दिगम्बर=नंगा। व्याली= सांप पहननेवाला। बौराये = भुला देने से। श्रीपति = विष्णु। भव = उत्पन्न। बरु = चाहे। उजरउ = उजड़ जाय।

१७–रगर = रगड़। बरउं = वरण करूँ। पाँ = पैर। जगदम्बा = जगत् की माता।

दोहा

तुम्ह माया भगवान सिव, सकल-जगत-पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि-पुनि हरषत गातु ॥ १७ ॥

[रामचरितमानस]

मंगल छंद

देखि सराहहिं गिरिजहिं मुनिवर मुनि बहु।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ ॥
काहू न देख्यो कहहिं यह तपु जोगु फल फल चारिका।
नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि कुधर-कुमारिका ॥
बटु-बेष पेखन प्रेमपन ब्रत नेम ससिसेषर गये।
मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि, बचन मृदु बोलत भये ॥१८॥
"देवि, करौं कछु बिनय सो बिलगु न मानब।
कहौं सनेह सुभाय साँच जिय जानब ॥
जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु-पिताकर।
तीय-रतन तुम्ह उपजेहु भव-रतनाकर ॥
जौं बर लागि करहु तपु तौ लरिकाइय।
पारस जौं घर मिलइ तौ मेरु कि जाइय?
मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि।
सुधा कि रोगिहि चाहहि, रतन कि राजहि?

१८—सराहहिं = प्रशंसा करते हैं। फल चारि = अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। कुधर = पहाड़, हिमांचल से तात्पर्य है। बटु = ब्रह्मचारी। पेखन = देखने-को। ससिसेखर = चन्द्रभाल शिवजी।

१९—बिलगु = बुरा। भव-रतनाकर = संसार-रूपी समुद्र। मेरु = देव-पर्वत सुमेरु। सुधा = अमृत।

कहहु काह सुनि रीझिहु वरु अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु-पितु-हीनहिं॥
भीख मांगि भव खाहिं, चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं॥
भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं।
जोगी, जटिल, सरोष, भोग नहिं भावहिं॥
सुमुखि सुलोचनि! हर मुख पंच, तिलोचन।
बामदेव फुर नाम. काम-मद-मोचन॥
एकउ हरहिं न बर-गुन, कोटिक दूषन।
नर-कपाल, गज-खाल, ब्याल, बिष भूषन॥
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल बेषु बिसेषु भयावन॥
जो सोचहि ससि-कलहिं सो सोचहि रौरेहि?
कहा मोर मन धरि, न बरिय बर बौरेहि॥
हिये हेरि हरु तजहु, हठै दुख पैहहु।
ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु॥"
बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ।
अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ?॥
करन-कटुक बटु-बचन बिसिष सम हिय हये।
अरुन नयन चढ़ि भ्रकुटि, अधर फरकत भये॥

भव = शिवजी। पिशाच = भूत। जोवहिं = देखती हैं। छार = राख। जटिल = जटावाला। तिलोचन = तीन नेत्रवाला। वामदेव = (१) (वाम = प्रतिकूल, दुष्ट + देव) अहितकर देवता। (२) शिवजी। फुर = सत्य, सार्थक। कपाल = मुंड, खोपड़ी। ब्याल = साँप। विष = हालाहल। रौरेहि = आपको भी। बौरेहि = पागल को। अचल–सुता = पर्वत की पुत्री। बयारि = हवा। विसिष = वाण। हये = मारे।

बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तन थरथर।
" आलि ! बिदा करु बटुहि बेगि, बड़ बरबर॥
कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि ?
बौरेहि के अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि॥
दोष-निधान इसानु सत्य सब भाखेउ।
मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ?"
को करि बाद-बिवाद बिषाद बढ़ावइ ?
मीठ काह कबि कहहिं जाहि जोइ भावइ॥
भइ बड़ि बार आलि कहुँ काज सिधारहि।
बकि जनि उठहि बहोरि, कुजुगुति सँवारहि॥
जनि कहहि कछु बिपरीत जानत प्रीति रीति न बात की।
सिव-साधु-निंदक मंद अति जो सुनै सोउ बड़ पातकी॥"
सुनि बचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अबिचल पावनो।
भये प्रगट करुनासिंधु संकर, भाल-चंद्र सुहावनो॥ १९॥
सुंदर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल बिसाल बदनु मनु मोहइ॥
सैल-कुमारि निहारि मनोहर मूरति।
सजल नयन हिय हरष पुलक तनु पूरति॥
पुनि पुनि करै प्रनाम, न आवत कछु कहि।
"देखौं सपन कि सौंतुख ससिसेखर, सहि !"
जैसे जनम-दरिद्र महामनि पावइ।

बरबर = बर्बर, निर्दय, मूर्ख, बकवादी। इसानु = ईशान, शिवजी। आँकु = अंक, लकीर। कुजुगुति = कुयुक्ति, कुतर्क। पावनो = पावन, पवित्र।

२०—भूति = विभूति, भस्म। सौंतुख = जाग्रतावस्थामें, प्रत्यक्ष। सहि = सही, सच्चा। महामनि = चिंतामणि।

पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीति न आवइ ॥
देखि रूप अनुराग महेस भये बस।
कहत बचन जनु सानि सनेह-सुधा-रस ॥
" हमहिं आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ ।
पार्बती तप प्रेम मोल मोहिं लीन्हेउ ॥
अब जो कहहु सो करउँ बिलंब न यहि घरि।"
सुनि महेस-मृदु-बचन पुलकि पायँन परि ॥
परि पाँय ससिमुखि कहि जनायो आप बाप-अधीनता ।
परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति-नीति-प्रबीनता ॥
हर हृदय धरि घर गौरि गवनी, कीन्ह बिधि मनभावनो।
आनंद प्रेमसमाज मंगलगान बाजु बधावनो ॥ २० ॥
[पार्वती-मंगल]

दोहा

लगे सँवारन सकल सुर, बाहन बिबिध बिमान ।
होहिं सगुन मंगल सुखद, करहिं अपछरा गान ॥ २१ ॥

चौपाई

सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि-मौर सँवारा ॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि-छाला ॥
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपवीत भुजंगा ॥
गरल कंठ उर नर-सिर माला। असिव वेष सिव-धाम कृपाला ॥

प्रतीति = विश्वास । कनउड़ = वश, अधीन। घरि = घड़ी। परितोषि = प्रसन्न करके । प्रवीनता = चतुराई । गौरि = पार्वती ।

२१—अपछरा = अप्सरा ।

२२—केहरि—छाला = सिंह की खाल । ललाट = मस्तक । उपवीत भुजंगा = साँपोंका जनेऊ । गरल = हालाहल । असिव = अशुभ । सिव = शुभ, कल्याण ।

कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहिं सुर-तिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥
बिष्णु बिरंचि आदि सुर-ब्राता। चढ़ि-चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर-समाज सब भांति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥

दोहा

बिष्णु कहा अस बिहँसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग-बिलग होइ चलहु सब, निज-निज सहित समाज॥२२॥

चौपाई

बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करइहहु पर-पुर जाई॥
बिष्णु-बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज-निज सेन सहित बिलगाने॥
मनही मन महेस मुसुकाहीं। हरि के ब्यंग बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥
सिव-अनुसासन सुनि सब आये। प्रभु-पद-जलज सीस तिन्ह नाये॥
नाना बाहन नाना बेषा। बिहँसे सिव समाज निज देखा॥
कोउ मुखहीन बिपुलमुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहुपद बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयन-बिहीना। हृष्ट पुष्ट कोउ अति तनखीना॥

सोरठा

नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥ २३॥

डमरु = एक प्रकार का बाजा। बसह = बैल। बिरंचि = ब्रह्मा। ब्राता = झुंड। अनुरूप = उपयुक्त। दिसिराज = कुबेर, वरुण आदि दिग्पाल।

२३-अनुहारि = अनुरूप। भृंगी = शिवजी का मुख्य गण। प्रेरि = भेजकर। टेरे = बुलाये। अनुसासन = आज्ञा। बिपुल = बहुत। खीना = क्षीण, दुर्बल। तरंगी = मौजी।

चौपाई

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभर सोभा अधिकाई ॥
करि बनाव सब बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना ॥
हिय हरषे सुर-सेन निहारी। हरिहि देखि अति भये सुखारी ॥
सिव-समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे ॥
धरि धीरज तहँ रहे सयाने। बालक सब लेइ जीव पराने ॥
गये भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय-कंपित गाता ॥
कहिय कहा कहि जाइ न बाता। जमकर धारि किधौं बरियाता ॥
बर बौराह बरद असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥

दोहा

समुझि महेस-समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिं।
बाल बुझाये बिबिध बिधि, निडर होहु डर नाहिं ॥ २४ ॥

चौपाई

मैना सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी ॥
बिकट बेष रुद्रहिं जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेखा ॥
भागि भवन पैठी अति त्रासा। गये महेस जहाँ जनवासा ॥
मैना हृदय भयउ दुख भारी। लीन्ही बोलि गिरीस-कुमारी ॥
अधिक सनेह गोद बैठारी। स्याम-सरोज नयन भरि बारी ॥
जेहि-बिधि तुम्हहिं रूप अस दीन्हा। तेहि जड़ बर बाउर कस कीन्हा ॥

२४—खरभर = खलभल, हलचल। अगवाना = आगे बढ़कर स्वागत करनेवाले। बिडरिचले = तितर-बितर होकर भागे। पराने = भाग गये। धारि = सेना। बरियाता = बारात। बौराह = पागल। बरद = बैल। बुझाये = समझा दिये।

२५—मैना = पार्वतीजी की माता। रुद्र = शिव। जनवासा = बारात के ठहरने का स्थान। जड़ = मूर्ख।

दोहा

भईं बिकल अबला सकल, दुखित देखि नर नारि ।
करि बिलाप रोदति बदति, सुता-सनेह सँभारि ॥ २५ ॥

चौपाई

जननिहिं बिकल बिलोकि भवानी । बोली जुत बिबेक मृदु बानी ॥
अस बिचारि सोचहि मति माता । सो न टरइ जो रचइ बिधाता ॥
करम लिखा जो बाउर नाहू । तौ कत दोष लगाइय काहू ॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका । मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥

दोहा

तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि सप्त समेत ।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवने तुरत निकेत ॥ २६ ॥

चौपाई

तब नारद सब ही समुझावा । पूरब-कथा-प्रसंग सुनावा ॥
मैना ! सुनहु सत्य मम बानी । जगदंबा तव सुता भवानी ॥
अजा अनादि शक्ति अबिनासिनि । सदा शंभु-अरधंग-निवासिनि ॥
जग-संभव-पालन-लय-कारिनि । निज इच्छा लीला-वपु-धारिनि ॥
जनमीं प्रथम दच्छ-गृह जाई । नाम सती सुंदर तनु पाई ॥
तहउँ सती संकरहि बिबाहीं । कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं ॥

अबला = स्त्री । रोदति = रोती है । बदति = कहती है ।

२६—जुतबिबेक = विवेकयुक्त, ज्ञानमय । मति = मत, नहीं । नाहू = नाथ, पति । सहित = (स + हित = प्रेम) प्रेम के साथ । तुहिनगिरि = हिमालय पर्वत । निकेत = घर ।

२७—पूरब—कथा = पूर्वजन्म की कथा । अजा = जो जन्म नहीं लेती है । अर—धंग—निवासिनि = आधे अंग में रहनेवाली, वामांग में वसनेवाली । संभव = उत्पत्ति । लय = प्रलय, नाश । बपु = शरीर । तहउँ = वहां भी ।

दोहा

सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा बिषाद ।
छन महँ ब्यापेउ सकल पुर, घर-घर यह संबाद ॥ २७ ॥
[रामचरितमानस]

मंगल छंद

सुनि मैना भइ सुमन, सखी देखन चलीं ।
जहँ तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गलीं ॥
लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर ।
भये सुंदर सतकोटि-मनोज-मनोहर ॥
नील निचोल छाल भइ, फनि मनि-भूषन ।
रोम-रोम पर उदित रूपमय पूषन ॥
गन भये मंगल बेष मदन-मन-मोहन ।
सुनत चले हिय हरषि नारि नर जोहन ॥
संभु सरद राकेस, नखतगन सुरगन ।
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुरजन ॥ २८ ॥
[पार्वती-मंगल]

चौपाई

जसि बिबाह कै बिधि स्रुति गाई । महा मुनिन्ह सो सब करवाई ॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी । भवहि समरपी जानि भवानी ॥
पानि-ग्रहन जब कीन्ह महेसा । हिय हरषे तब सकल सुरेसा ॥

२८—सुमन = प्रसन्न । सोहर = शुभ अवसर । मनोज = कामदेव । निचोल = वस्त्र । फनि = साँप । पूषन = पूषण, सूर्य । जोहन = देखने को । राकेस = पूर्णिमा का चंद्रमा ।

२९—स्रुति = श्रुति, वेद । गिरीश = हिमालय के राजा । कुस = कुश। भवहिं = शिवजी को । पानि-ग्रहन = पाणि-ग्रहण, विवाह के समय पत्नी का हाथ पकड़ना ।

बेदमंत्र मुनिवर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं॥
बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमन-बृष्टि नभ भई बिधि नाना॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥

× × × ×

जननी उमा बोलि तब लीन्ही। लेइ उछंग सुंदर सिख दीन्ही॥
करेहु सदा संकर-पद-पूजा। नारि-धरम पतिदेव न दूजा॥
बचन कहत भरि लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥
कत बिधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं॥
भई अति-प्रेमबिकल महतारी। धीरज कीन्ह कुसमउ बिचारी॥
पुनि-पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेम कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि भेंटि भवानी। जाइ जननि-उर पुनि लपटानी॥

दोहा

चले संग हिमवंत तब, पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोष करि, बिदा कीन्ह बृषकेतु॥ २९॥

चौपाई

जबहिं संभु कैलासहिं आये। सुर सब निज-निज लोक सिधाये॥
जगत-मातु-पितु संभु-भवानी। तेहि सिंगारु न कहउँ बखानी॥
करहिं-बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥

दोहा

चरित-सिंधु गिरिजा-रमन, बेद न पावहिं पारु।
बरनइ तुलसीदास किमि, अतिमति-मंदगँवारु॥ ३०॥

[रामचरितमानस]

गिरिजा = पार्वती। उछाहू = उत्साह, आनंद। उछंग = गोद। सृजी = बनाई। बिकल = विह्वल, अधीर। हेतु = प्रेम। बृषकेतु = शिवजी।
३०—सिंगारु = शृंगार; रति-केलि। गिरिजारमन = पार्वती-वल्लभ शिवजी।

मंगल छंद

उमा महेस-बियाह-उछाह भुवन भरे।
सब के सकल मनोरथ बिधि पूरन करे॥
प्रेम-पाट-पट-डोरि गौरि-हर-गुन-मनि।
मंगल-हार रचेउ कबि-मति-मृगलोचनि॥

मृगनयनि बिधु-बदनी रचेउ मनि मंजु मंगल हार सो।
उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक सोभा-सार सो॥
कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहैं।
तुलसी उमा-संकर-प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं॥ ३१॥

[पार्वती-मंगल]

ध्यान-बिन्दु

भगवद्-ध्यान

दोहा

राम बामदिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर ॥ १ ॥

[दोहावली]

नीलसरोरुह, नीलमनि, नील-नीर-धर-स्याम।
लाजहिं तनु-सोभा निरखि, कोटि-कोटि सत काम ॥ २ ॥

चौपाई

सरद्-मयंक-बदन छबि-सींवाँ। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवाँ ॥
अधर अरुन रद सुन्दर नासा। बिधुकर-निकर-बिनिंदक हासा ॥
नव-अंबुज-अंबक-छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जीकी ॥
भृकुटि मनोज-चाप-छबि-हारी। तिलक ललाट-पटल दुतिकारी ॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप-समाजा ॥

३१—पाट—पट = रेशम। गुन—मनि = गुणरूपी मणि। मंगल—हार = "पार्वती-मंगल" रूपी हार। कवि—मति—मृगलोचनि = कविकी बुद्धि-रूपी मृगनयनी स्त्री। बिधु—बदनी = चंद्रमुखी। मंजु = सुन्दर। प्रसाद = कृपा।

२—सरोरुह = कमल। नीरधर = मेघ। काम = कामदेव।

३—मयंक = चद्रमा। सींवाँ = सीमा। ग्रीवाँ = ग्रीवा, कंठ। रद = दाँत। निकर = समूह। अंबक = आँख। भावती = प्यारी। दुतिकारी = प्रकाशमय।

उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला॥
केहरिकंधर चारु जनेऊ। बाहु-बिभूषन सुन्दर तेऊ॥
करि-कर-सरिस सुभग भुजदंडा। कटि-निषंग कर सर कोदंडा॥

दोहा

तड़ित-बिनिंदक पीतपट, उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन-भवँर-छबि छीनि॥ ३॥

चौपाई

पद-राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि-मन-मधुप बसहिं जिन्ह माहीं॥

[रामचरितमानस]

*

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग-अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव-राजीव-अरुन मृदु चरना। पदजरुचिरनखससि-दुति-हरना॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रव-कारी॥
चारु पुरट-मनि-रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥

दोहा

रेखा त्रय सुन्दर उदर, नाभि रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध, बाल बिभूषन बीर॥ ५॥

पदिक = जुगनू नाम का गले में पहनने का गहना। केहरि = सिंह।
करि-कर = हाथी की सूँड़। कोदंड = धनुष।
४—राजीव = कमल।
५—मरकत = नीलम। कलेवर = शरीर। पदज = पैर की उँगली।
अंक = चिन्ह। पुरट = सोना। मुखर = शब्दायमान। आयत = चौड़ा, बड़ा

चौपाई

अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
कंध बालकेहरि दर ग्रीवां। चारुचिबुक आनन छबि सींवां॥
कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ-दुइ दसन बिसद बर बारे॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि-करसम हासा॥
नीलकंज-लोचन भव-मोचन। भ्राजत भालतिलक गोरोचन॥
बिकट भृकुटि सम स्रवन सुहाये। कुंचित कच मेचक छबि छाये॥
पीत झीनि झिंगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही॥
रूप-रासि नृप-अजिर-बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥६॥

[रामचरितमानस]

राग ललित

सादर सुमुखि, बिलोकि राम-सिसु-रूप, अनूप भूप लिए कनियाँ।
सुंदर स्याम-सरोज-बरन तनु, नखसिख सुभग सकल सुखदनियाँ॥
अरुन चरन नख-जोति जगमगति, रुनुझुनु करति पाँय पैंजनियाँ।
कनक-रतन-मनि-जटित रटति कटि-किंकिनि, कलित पीतपट तनियाँ॥
पहुँची करनि, पदक हरि-नख उर, कठुला कंठ, मंजु गजमनियाँ।
रुचिर चिबुक, रद अधर मनोहर, ललित नासिका लसति नथुनियाँ॥

६—करज = हाथ की उँगली। दर = शंख। कलबल = तोतले। ससि-कर = चंद्र-किरण। बिसद = स्वच्छ, सफ़ेद। कुंचितकच = घुँघराले बाल। मेचक = काला। झिंगुली = बच्चों का कुरता। अजिर = आँगन।

७—कनियाँ = गोद। दनियाँ = दानी, देनेवाला। रुनुझुनु = शब्द विशेष। रटति = ध्वनि करती है, बजती है। किंकिनि = करधनी। तनियाँ = कछनी, जाँघिया। पहुँची = कलाई पर पहनने का एक गहना। पदिक = हार। हरि-नख = शेर का नह। गजमनियाँ = गज-मुक्ताएँ। रद = दाँत। नथुनियाँ = बुलाक से तात्पर्य है।

बिकट भृकुटि, सुखमानिधि आनन, कल कपोल, काननि नग-फनियाँ।
भाल तिलक मसिबिंदु बिराजत, सोहति सीस लाल चौतनियाँ॥
मनमोहिनी तोतरी बोलनि, मुनि-मन-हरनि हँसनि किलकनियाँ।
बाल सुभाय बिलोल बिलोचन, चोरति चितहिं चारु चितवनियाँ॥
सुनि कुलबधू झरोखनि झाँकति रामचंद्र-छबि चंद्रबदनियाँ।
तुलसिदास प्रभु देखि मगन भईं प्रेमबिबस कछु सुधि न अपनियाँ॥७॥

राग कल्यान

रामराज राजमौलि मुनिबर-मन-हरन सरन
लायक, सुखदायक रघुनायक देखौ री।
लोक-लोचनाभिराम, नीलमनि-तमाल-स्याम,
रूप सीलधाम, अंग छबि अनंग को री? ॥
भ्राजत सिर मुकुट पुरट-निर्मित मनि-रचित चारु,
कुंचित कच रुचिर परम, सोभा नहिं थोरी।
मनहुँ चंचरीक-पुंज कंज-बृन्द प्रीति लागि,
गुंजत कल गान तान दिनमनि रिझयो री॥
अरुन-कंज-दल-बिसाल लोचन, भ्रू तिलक भाल,
मंडित स्रुति कुंडल वर सुंदर तर जोरी।
मनहुँ संबरारि मारि ललित मकर-जुग बिचारि,
दीन्हें ससि कहँ पुरारि, भ्राजत दुहुँ ओरी॥
सुंदर नासा, कपोल, चिबुक, अधर अरुन, बोल,

विकट=टेढ़ी। नगफनियां=कर्णभूषण। मसिबिंदु=दिठौना। चौतनियां=टोपी। विलोल=चंचल। अपनियां=अपना, आपे की।

८—मौलि=शिर, श्रेष्ठ। लोचनाभिराम=नेत्रों को सुंदर लगनेवाले। अनंग=कामदेव। पुरट=सोना। चंचरीक=भौंरा। दिनमनि=सूर्य। भ्रू=भौं। जोरी=जोड़ी। संबरारि=कामदेव। मकर=कामदेव की ध्वजा का मछली के आकार का चिन्ह। पुरारि=शिव।

मधुरे, दसन राजत जब चितवत मुख मोरी।
कंज-कोस भीतर जनु कंजराग-सिखर-निकर,
रुचिर रचित बिधि बिचित्र तड़ित रंग बोरी॥
कंबु कंठ, उर बिसाल, तुलसिका नवीन माल,
मधुकर बर बास बिबस उपमा सुनु सो, री।
जनु कलिंदजा सुनील सैल तें धँसी समीप,
कंद-बृंद बरषत छबि मधुर घोरि-घोरी॥
निर्मल अति पीत चैल दामिनि जनु जलद नील,
राखी निज सोभा हित बिपुल बिधि निहोरी।
नयनन्हि को फल बिसेष, ब्रह्म अगुन सगुन बेष,
निरखहु तजि पलक, सफल जीवन लेखौ, री॥
सुन्दर सीता-समेत सोभित करुना-निकेत,
सेवक सुख देत, लेत चितवत चित चोरी।
बरनत यह अमित रूप थकित निगम नागभूप,
तुलसिदास छबि बिलोकि सारद भइ भोरी॥८॥

[गीतावली]

राग गौरी

श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन, हरन-भव-भय-दारुणं।
नवकंज लोचन, कंजमुख, करकंज, पद कंजारुणं॥
कंदर्प-अगणित-अमित-छबि, नवनील-नीरज-सुन्दरं।

कंजराग = पद्मराग मणि। तड़ित = बिजली। कंबु = शंख। कलिंदजा = यमुना। कंद = बादल। घोरि-घोरी = गरज-गरज कर। चैल = वस्त्र। बिपुल = बहुत। अगुन = निर्गुण। तजि पलक = टक लगाकर। निगम = वेद। नागभूप = शेष भगवान्।

१.-कंज = कमल। कंदर्प = कामदेव। नीरज = कमल।

पटपीत मानहुँतड़ित-रुचि शुचि नौमि जनक-सुता-वरं ।
भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य-बंश-निकंदनं ।
रघुनंद आनदकंद कोशलचंद दसरथ-नदनं ॥
सिर मुकुट, कुंडल तिलक चारु, उदारु अंग-विभूषणं ।
आजानुभुज सर-चाप-धर, संग्राम जित खरदूषणं ॥
इति बदति तुलसीदास, संकर-शेष मुनि-मन-रंजनं ।
मम हृदय-कंज निवास करु कामादि-खल-दल-गंजनं ॥९॥

राग आसावरी

इहै परम फल परम बड़ाई ।
नखसिख रुचिर बिंदुमाधव-छबि निरखहिं नयन अघाई ॥
बिसद किसोर पीन सुंदर बपु स्याम सुरुचि अधिकाई ।
नील कंज बारिद तमाल मनु इन तनु तें दुति पाई ॥
मृदुल चरन सुभ चिन्ह पदज नख अति अद्भुत उपमाई ।
अरुन-नील पाथोज-प्रसव जनु मनिजुत दल समुदाई ॥
जातरूप मनि-जटित मनोहर नूपुर जन-सुखदाई ।
जनु हर-उर हरि बिबिध रूप धरि रहे बर भवन बनाई ॥
कटि तट रटति चारु किंकिनि, रव अनुपम बरनि न जाई ।
हेम जलज कल कलिन मध्य जनु मधुकर मुखर सोहाई ॥
उर बिसाल भृगुचरन चारु अति सूचत कोमलताई ।

रुचि = छवि । नौमि = नमस्कार करता हूँ । निकंदनं = नाशक को । उदारु = विशाल, सुंदर । इति = ऐसा । बदति = कहता है । रंजनं = प्रसन्न-कर्त्ता को । गंजनं = नाशक को ।

१०-पीन = पुष्ट । वपु = शरीर । पदज = पैर से उत्पन्न; पैर की उँगली । पाथो-ज = कमल । प्रसव = उत्पन्न । जातरूप = स्वर्ण । मुखर = शब्दायमान; ध्वनि करनेवाला, बजनेवाला ।

कंकन चारु बिबिध भूषन बिधि रचि निज कर मन लाई ॥
गज-मनि-माल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई ।
जनु उडुगन-मंडल बारिद पर नवग्रह रची अथाई ॥
भुजँग-भोग भुज-दंड, कंज दर चक्र गदा बनिआई ।
सोभा-सींव ग्रीव चिबुकाधर बदन अमित छबि छाई ॥
कुलिस-कुन्द-कुड्मल-दामिनि-दुति दसननि देखि लजाई ।
नासा नयन कपोल ललित, श्रुति कुण्डल भ्रू मोहिं भाई ॥
कुंचित कच सिर मुकुट भाल पर तिलक कहौं समुझाई ।
अलप तड़ित जुग रेख इंदु महँ रहि तजि चंचलताई ॥
निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई ।
बहु मनि-जुत गिरि-नील-सिखर पर कनक-बसन रुचिराई ॥
दच्छभाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई ।
हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई ॥
सत सारदा सेस स्रुति मिलि करि सोभा कहि न सिराई ।
तुलसिदास मतिमंद द्वंदरत कहै कौन बिधि गाई ॥ १० ॥

राग जयतिश्री

मन इतनोई या तनु को परम फलु ।
सब अँग सुभग बिंदुमाधव-छबि तजि सुभाउ अवलोकु एक पलु ॥
तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु, नख-दुति हृदय-तिमिरहारी ।

निकाई = सुंदरता । अथाई = (बुंदेलखण्डी) बैठने की जगह । भुजँग-भोग = सर्प-शरीर । कुलिस = यहाँ हीरे से तात्पर्य है, वज्र से नहीं । कुड्मल = कली । कुंचित = टेढ़ा, घुंघराला । इन्दिरा = लक्ष्मी । निचोल = वस्त्र ।
११—इतनोई = इतनाही । सब अँग = सर्व भाव से । तजि सुभाउ = चंचलता छोड़ कर, एकवृत्त होकर । अंभोज = कमल । तिमिर = अंधकार, अज्ञान ।

कुलिस-केतु-जव-जलज-रेखबर, अंकुस मन-गज-बसकारी ॥
कनक-जटित-मनि नूपुर, मेखल, कटि-तट रटति मधुर बानी।
त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी ॥
उर बनमाल पदिक अति सोभित, विप्र-चरन चित कहँ करषै।
स्याम-तामरस-दाम-बरन बपु, पीत बसन सोभा बरषै ॥
कर कंकन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी।
गदा-कंज-दर-चारु-चक्रधर, नाग-सुंड सम भुज चारी ॥
कंबु-ग्रीव, छबिसींव चिबुक द्विज, अधर अरुन, उन्नत नासा।
नव-राजीव-नयन, ससि-आनन, सेवक-सुखद बिसद हासा ॥
रुचिर कपोल, स्रवन कुण्डल, सिर मुकुट, सुतिलक भाल भ्राजै।
ललित भृकुटि, सुन्दर चितवनि, कच निरखि मधुप-अवली लाजै ॥
रूप-सील-गुन-खानि दच्छ दिसि सिंधु-सुता रतपद-सेवा।
जाकी कृपा-कटाच्छ चहत सिव, बिधि, मुनि, मनुज, दनुज, देवा ॥
तुलसिदास भव-त्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै।
नाहित दीन मलीन हीन-सुख कोटि जनम भ्रमि-भ्रमि भटकै ॥११॥

[विनयपत्रिका]

कुलिस......अंकुस = भगवान् के चरण-चिन्ह । कनक = स्वर्ण । मेखल = मेखला, करधनी । तट = निकट, में । त्रिवली = तीन रेखाएँ, जो पेट पर पड़ी होती हैं । बिरंचि = ब्रह्मा । पदिक = मणिजटित सोने की चौकी, जो छाती पर पहनी जाती है । विप्रचरन = भृगु के चरण-चिन्ह से तात्पर्य है । करषै = खींचता है, मोहित करता है । तामरस = कमल । केयूर = बाजूबंद । मुद्रिक = अंगूठी । दर = शंख । नाग = हाथी । कबु = शंख । सींव = सीमा । द्विज = दांत, राजीव = कमल । बिसद = शुभ्र । रुचिर = सुन्दर । कच = बाल । दच्छ = दाहिनी । सिंधु-सुता = लक्ष्मी । दनुज = दानव । अटकै = लग जाय ।

शिव-ध्यान

चौपाई

कुन्द-इन्दु-दर-गौर सरीरा । भुज प्रलंब परिधन मुनि-चीरा ॥
तरुन-अरुन-अंबुज सम चरना । नखदुति-भगत हृदय-तम-हरना ॥
भुजग-भूति-भूषन त्रिपुरारी । आनन सरद-चंद-छबि-हारी ॥

दोहा

जटा-मुकुट सुरसरित सिर लोचन-नलिन बिसाल ।
नीलकंठ लावन्य-निधि सोह बालबिधु भाल ॥ १ ॥

[रामचरितमानस]

छप्पय

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर ।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूखन भुजंगवर ॥
मुण्डमाल, बिधु बाल भाल, डमरू कपाल कर ।
बिबुध-बृन्द-नव-कुमुद-चंद, सुखकंद, सूलधर ॥
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्वसन, विष-भोजन भव-भय-हरन ।
कह तुलसिदास सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन ॥२॥

*

१–कुन्द = एक प्रकार का श्वेत पुष्प । इन्दु = चन्द्रमा । दर = शंख । परिधन = परिधान, वस्त्र । अंबुज = कमल । तम = अज्ञानरूपी अन्धकार । भुजग = सर्प । भूति = भस्म । नलिन = कमल । बाल विधु = द्वैज का चन्द्रमा ।

२–सन्तत = सदा । असंग = विरक्त । अधंग = अर्द्धांग । कपाल = आदमी की खोपड़ी । बिबुध = देवता । दिग्वसन = दिगम्बर, नग्न । शिव = कल्याणरूप ।

गरल-असन, दिग्वसन, व्यसन-भंजन, जन-रंजन।
कुन्द-इंदु-कर्पूर-गौर, सच्चिदानंद-घन॥
बिकट बेष, उर शेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
शिव अकाम, अभिराम-धाम, नित रामनाम-रुचि॥
कंदर्प-दर्प-दुर्गम-दवन, उमारवन, गुनभवन हर।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर-मथन जय त्रिदशवर॥३॥

कवित्त

पिंगल-जटा-कलाप, माथे पै पुनीत आप,
पावक नयना, प्रताप भ्रू पर बरत हैं।
लोचन बिसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल,
कंठ कालकूट, व्याल भूषन धरत हैं॥
सुंदर दिगंबर बिभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृंगी पूरे काल-कंटक हरत हैं।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं॥ ४॥

(कवितावली)

३-गरल असन=विष का भोजन करनेवाले। व्यसन=विषय। शेष=सर्प। अकाम=निस्पृह। अभिराम=आनन्द। कन्दर्प=कामदेव। दर्प=गर्व। उमारवण=पार्वतीरमण शिवजी। त्रिगुनपर=निर्गुण। त्रिदश=देवता।

४-पिंगल=तामड़ा रंग। कलाप=समूह। आप=जल। कालकूट=हालाहल। विभूति। गात=शरीर। रूरे=भलीभाँति। शृंगी=शृंग बजानेवाले। काल-कंटक=कुसमय के विघ्न, अर्थात् ग्रह-दशा, अकाल मृत्यु आदि। पात=पत्ता। आक=मदार। औढर=मनमौजी। ढरत हैं ढल जाते हैं, कृपा कर देते हैं।

राग बसंत

देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत ।
मनो देखन तुमहिं आई ऋतु बसंत ॥
जनु तनु-दुति चंपक-कुसुम-माल ।
बर बसन नील नूतन तमाल ॥
कल कदलि जंघ, पद कमल लाल ।
सूचति कटि केहरि, गति मराल ॥
भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग ।
नूपुर किंकिनि कल-रव-बिहंग ॥
कर नवल बकुल, पल्लव रसाल ।
श्रीफल कुच, कंचुकी लताजाल ॥
आनन—सरोज, कच मधुप-पुंज ।
लोचन बिसाल नव नीलकंज ॥
पिक-बचन चरित बर बरहि कीर ।
सित सुमन हास, लीला समीर ॥
कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान ।
उर बसि प्रपंच रचै पंचबान ॥
करि कृपा हरिय भ्रम-फंद काम ।
जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम ॥ ५ ॥

[विनय-पत्रिका]

नोट—इस पद में अर्धनारी नटेश्वर शिव-पार्वती का वर्णन वन और वसन्त के रूपक में किया गया है ।

कदली = केलाखंभा । पल्लव = करपल्लव, उँगलियाँ । श्रीफल = बेल ।
बरहि = मोर । पंचबान = कामदेव ।

हनुमद्ध्यान

छप्पय

स्वर्ण-शैल-संकाश कोटि-रवि-तरुन-तेज घन ।
उर बिसाल, भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन ॥
पिंग नयन, भृकुटी कराल, रसना दसनानन ।
कपिस केस, करकस लँगूर, खल-दल-बल-भानन ॥
कह तुलसिदास बस जासु उर मारुत-सुत मूरति बिकट ।
संताप पाप तेहि पुरुष कहँ सपनेहुँ नहिं आवत निकट ॥ १ ॥

[कवितावली]

१-स्वर्ण-शैल = सुमेरु पर्वत । संकाश = प्रकाश, चमक । चंड = प्रचंड, विक्रम युक्त । पिंग = तामड़ा रंग, पीला । दसनानन = दशन (दांत) + आनन (मुख) कपिस = पीलाभूरा, लालभूरा । करकस = कड़ी । लँगूर = पूँछ । भानव = नष्ट करने वाले । मारुत-सुत = पवन-पुत्र हनुमान, मारुति । सन्ताप = दु:ख, कष्ट ।

विनय-विन्दु

राम-विनय

चौपाई

जय रघुवंस-बनज-बन-भानू । गहन-दनुज-कुल-दहन कृसानू ॥
जय-सुर-विप्र-धेनु हितकारी । जय मद-मोह-कोह-भ्रम-हारी ॥
विनय-साल-करुना-गुन-सागर । जयति बचन-रचना अति नागर ॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा । जय सरीर छबि कोटि अनंगा ॥
करउँ काह मुख एक प्रसंसा । जय महेस-मन-मानस-हंसा ॥ १ ॥

स्याम-ताम-रस-दाम-सरीरं । जटा-मुकुट-परिधन-मुनि-चीरं ॥
पानि-चाप-सर-कटि-तूनीरं । नौमि निरंतर श्री रघुबीरं ॥
मोह-विपिन-घन-दहन-कृसानुः । संत-सरोरुह-कानन-भानुः ॥
निसिचर-करि-बरूथ-मृगराजः । त्रातु सदा नो भव-खग-बाजः ॥
अरुन-नयन-राजीव-सुवेसं । सीता-नयन-चकोर-निसेसं ॥
हर-हृदि-मानस-राज-मरालं । नौमि राम-उर-बाहु-बिसालं ॥
संसय-सर्प-ग्रसन-उरगादः । समन-सुकर्कश-तर्क-विषादः ॥

१—वनज = कमल । गहन = वन । कोह = क्रोध । नागर = चतुर । मानस = मानसरोवर ।

२—तामरस = कमल । दाम = माला, समूह । परिधन = वस्त्र । तूनीर = तरकस । नौमि = नमस्कार करता हूँ । कृशानु = अग्नि । सरोरुह = कमल । करि बरूथ = हाथियों का झुंड । त्रातु = रक्षा करे । नो = हमको । हृदि = हृदय । उरगाद = गरुड़ ।

भव-भंजन रंजन-सुर-यूथः । त्रातु सदा नो कृपावरूथः ॥
निर्गुन-सगुन विषम-सम-रूपं । ज्ञान गिरा गोतीतमरूपं ॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं । नौमि राम भंजन महि-भारं ॥
भक्त-कल्प-पादप-आरामः । तर्जन-क्रोध-लोभ-मद-कामः ॥
अतिनागर भव-सागर-सेतुः । त्रातु सदा दिन-कर-कुल-केतुः ॥
अतुलित-भुज-प्रताप-बल-धामा । कलि-मल-विपुल-विभंजन नामा ॥
धर्म वर्म, नर्मद गुनग्रामः । संतत संतनोतु मम रामः ॥
यद्पि बिरज ब्यापक अबिनासी । सब के हृदय निरंतर बासी ॥
तद्पि अनुज-श्री-सहित खरारी । बसतु मनसि मम कानन-चारी ॥
जे जानहिं ते जानहु स्वामी । सगुन अगुन उर-अंतर-जामी ॥
जो कोसलपति राजिव-नैना । करउ सो राम हृदय मम ऐना ॥
अस अभिमान जाय जनि भोरे । मैं सेवक, रघुपति पति मोरे ॥२॥

तोटक छंद

जय राम सदा सुख-धाम हरे । रघुनायक सायक चाप धरे ॥
भव-बारन-दारन-सिंह प्रभो । गुन-सागर नागर नाथ बिभो ॥

भव-भंजन = जन्म से छुड़ानेवाले, सांसारिक अविद्या को नष्ट करनेवाले। गोतीत = गो अर्थात् इन्द्रियों से अतीत, परे । अमल......मपारं = अमलम् (निर्मल) + अखिलम् (सर्व) + अनवद्यम् (निर्दोष) + अपारं (अनन्त)। पादप = वृक्ष । आराम = बाग़ । वर्म = कवच, रक्षक । नर्मद = आनन्द देनेवाले। ग्राम = समूह । संतनोतु = रक्षा करे । विरज = उदासीन, निर्लेप । श्री = सीताजी से तात्पर्य है । मनसि = मनमें । जामी = यामी, जाननेवाले, रमनेवाले । ऐना = अयन, स्थान, वास । भोरे = भूलकर भी ।

३—सायक = बाण । बारन = हाथी ।

जन-रंजन भंजन सोक भयं। गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं॥
अवतार उदार अपार गुनं। महि-भार-बिभंजन ज्ञानघनं॥
अज व्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा॥
रघुबंस-विभूषन दूषनहा। कृतभूप बिभीषन दीन रहा॥
गुन-ग्यान-निधान अमान अजं। नित राम नमामि विभु बिरजं॥
भुजदंड-प्रचंड-प्रताप-बलं। खल-बृन्द-निकंद-महा-कुसलं॥
बिनु कारन दीनदयाल हितं। छबिधाम नमामि रमा-सहितं॥
भव—तारन कारन-काज-परं। मन—संभव-दारुन-दोष—हरं॥
सर चाप मनोहर त्रोनधरं। जलजारुन—लोचन भूप बरं॥
सुख-मंदिर सुंदर श्रीरमनं। मद मार मुधा—ममता—समनं॥
अनवद्य अखंड न गोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न सो॥
इति वेद वदंति न दंतकथा। रबि आतप भिन्न, न भिन्न जथा॥
अब दीनदयाल दया करिये। मति मोरि बिभेदकरी हरिये॥
जेहितें बिपरीत क्रिया करिये। दुख सो सुख मानि सुखी चरिये॥
खल-खंडन मंडन रम्य छमा। पद—पंकज सेवित संभु उमा॥
नृपनायक दे वरदानमिदं। चरनांबुज प्रेम सदा सुभदं॥३॥

गतक्रोध = क्रोध-रहित। बोध = ज्ञान। अज = जन्मरहित। व्यापकमेकमनादि = व्यापकम् + एकम् + अनादि। मुदा = प्रसन्नता से। दूषनहा = दोषों का नाश करनेवाले, दूषण नामक राक्षस को मारनेवाले। कारन काजपरं = कारण और कार्य से परे, विश्व-विधान से परे। संभव = उत्पन्न। त्रोन = तरकस। जलजारुन = जलज + अरुण, लाल कमल। मुधा = मिथ्या। गो = इन्द्रिय। इति वदन्ति = ऐसा कहते हैं। दंतकथा = गप। आतप = धूप। विभेदकरी = भेदात्मक, द्वैतात्मक। चरिये = करते हैं। उमा = पार्वती। वरदानमिदं = वरदानम + इदं (यह)।

हरिगीतिका छन्द

अव्यक्त मूल मनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नव ललित संसार-बिटप नमामि हे॥
जे ब्रह्म अज अद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर माँगहीं।
मन बचन करम बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥ ४॥

४—अव्यक्त = अप्रकट, अदृष्ट। मूलमनादि = मूलम् (जड़) + अनादि। चारि-त्वच = चार वक्कल; अंतःकरण-चतुष्टय अथवा चार अवस्थाओं अथवा चतुर्युग वा चार वेदों से तात्पर्य है। भने = कहे हैं। षट्कंध = छः स्कंध; काम क्रोध आदि षट् विकार अथवा षट् वर्ग अथवा षट् शास्त्र से अभिप्राय है। पंचबीस साखा = २५ शाखाएँ, सांख्य-शास्त्रानुसार २५ तत्त्व अर्थात् ५ तत्त्व, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ तन्मात्राएँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और महत्तत्व। पर्न = पत्ते; वासनाओं से तात्पर्य है। घने = बहुत। युगल = दो। कटु = कड़ुवा; पाप। मधुर = मीठा; पुण्य। बेलि = लता; अविद्या से तात्पर्य है।

[यह संसार-वृक्ष का रूपक है। श्रीमद्भगवद्गीता में एवं उपनिषदों में भी ऐसा ही रूपक मिलता है। इससे गोसाईंजी की दार्शनिक अभिरुचि का अच्छा पता चलता है]।

अज = जन्म रहित। अद्वैत = एक, अनुपम। अनुभवगम्य = केवल अनुभव द्वारा जानने योग्य। मन—पर = मन से परे सगुन = दिव्य ईश्वरीय गुण-संयुक्त। करुनायतन = करुणा के स्थान। सदगुनाकर = सुंदर गुणों की खानि।

तोटक छन्द

जय राम रमारमनं-समनं—भव—ताप, भयाकुल पाहि जनं ॥
अवधेस सुरेस रमेस विभो । सरनागत मांगत पाहि प्रभो ॥
दस-सीस-बिनासन बीसभुजा । कृत दूरि महा-महि-भूरि-रुजा ॥
रजनीचर—वृन्द-पतंग रहे । सर-पावक-तेज-प्रचंड दहे ॥
महि—मंडल—मंडन चारुतरं । धृत-सायक-चाप-निषंग-वरं ॥
मद-मोह-महा-ममता—रजनी । तमपुंज—दिवाकर तेज-अनी ॥
मनजात-किरात निपात किये । मृग-लोग कुभोग-सरेन हिये ॥
हति नाथ अनाथन्हि पाहि हरे । विषया-बन पाँवर भूलि परे ॥
बहु रोग बियोगन्हि लोग हये । भवदंघ्रि-निरादर के फल ये ॥
भव-सिंधु अगाध परे नर ते । पद-पंकज-प्रेम न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नितहीं । जिन के पद-पंकज प्रीति नहीं ॥
अवलंब भवंत कथा जिन्ह के । प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह के ॥
नहिं राग न लोभ न मान मदा । तिन्हके सम वैभव वा बिपदा ॥
एहि तें तव सेवक होत मुदा । मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ॥
करि प्रेम निरंतर नेम लिये । पद-पंकज सेवत सुद्ध हिये ॥
सम मानि निरादर आदरहीं । सब संत सुखी बिचरंति मही ॥

५—समनं भव-ताप = सांसारिक कष्टों का नाश करनेवाले; जन्म, जरा, मरण से मुक्त करनेवाले । पाहि=रक्षा करो । भूरि = बहुत । रुजा = रोग । रजनीचर = राक्षस । सर-पावक = वाण—रूपी अग्नि । मंडन = शृंगार, श्रेष्ठ । चारु तरं = बहुत ही सुंदर । चाप = धनुष । निषंग = तरकस । अनी = सेना । मनजात = कामदेव । किरात = भील, बहेलिया । निपात किये = मार डाले । कुभोग सरेन = सांसारिक विषयरूपी (शरेण) बाण से । पाँवर = पामर, पापी । भवंत = आपकी । मदा = मद, दर्प । वैभव = ऐश्वर्य, सुख । मुदा=प्रसन्नता से । जोग भरोस = योग क्षेम । बिचरन्ति = विचरते हैं । मही = प्रथिवी ।

मुनि-मानस-पंकज-भृंग भजे । रघुबीर महा-रन-धीर अजे ॥
तव नाम जपामि नमामि हरी । भवरोग महा-मद-मान-अरी ॥
गुन सील कृपा परमायतनं । प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ॥
रघुनंद निकंदय द्वंदघनं । महिपाल बिलोकय दीन जनं ॥

दोहा

बार-बार बर माँगउँ, हरषि देहु श्रीरंग ।
पद-सरोज अनपायिनी, भगति सदा सतसंग ॥ ५ ॥

चौपाई

जय भगवंत अनंत अनामय । अनघ अनेक एक करुनामय ॥
जय निर्गुन जय जय गुनसागर । सुख-मंदिर सुंदर अति आगर ॥
जय इंदिरारमन जय भूधर । अनुपम अज अनादि सोभाकर ॥
ग्यान-निधान अमान मानप्रद । पावन सुजस पुरान बेद बद ॥
तग्य कृतग्य अग्यता-भंजन । नाम अनेक अनाम निरंजन ॥
सर्ब सर्बगत सर्ब-उरालय । बससि सदा हम कहँ परिपालय ॥
द्वन्द बिपति भवफंद बिभंजय । हृदि बसि राम काम-मद गंजय ॥

भृंग = भ्रमर । अजे = अजय । निकंदय = नष्ट करो । द्वंद = द्वैतत्व । विलोकय = कृपादृष्टि करो । श्रीरंग = लक्ष्मी-रमण; सीतावल्लभ । अनपायिनी = अक्षया, परा, अव्यभिचारिणी ।

६—अनामय = नीरोग । अनघ = निष्पाप, पुण्यश्लोक । अनेक = बहु-रूपधारी । आगर = सर्वोत्कृष्ट, श्रेष्ठ । इंदिरा = लक्ष्मी । भूधर = पृथिवी का उद्धार करने वाले । सोभाकर = शोभा की खानि, अत्यन्त सुन्दर । अमान = मान न चाहने वाले । बद = कहते हैं । तग्य = तत् + ज्ञ; उसको जाननेवाला; ब्रह्मज्ञानी । निरंजन = अविनाशी, अव्यय । उरालय = हृदय-रूपी स्थान । बससि = रहते हो । हृदि = हृदय में । गंजय = नष्ट करो ।

दोहा

परमानंद कृपायतन मन-परिपूरन काम ।
प्रेम-भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम ॥ ६ ॥

चौपाई

मामवलोकय पंकजलोचन । कृपा बिलोकनि सोक-बिमोचन॥
नील-तामरस-स्याम काम-अरि । हृदय कंज-मकरंद-मधुप हरि ॥
जातुधान-बरूथ-बल-भंजन । मुनि-सज्जन-रंजन अघ-गंजन ॥
भूसुर-ससि-नव-बृन्द-बलाहक । असरन-सरन दीन-जन-गाहक ॥
भुज-बल बिपुल भार महि खंडित । खर-दूषन-बिराध-बध-पंडित ॥
रावनारि सुखरूप भूप-बर । जय दसरथ-कुल-कुमुद-सुधाकर॥
सुजसु पुरान बिदित निगमागम । गावत सुर-मुनि-संत-समागम ॥
कारुनीक ब्यलीक-मद-खंडन । सब बिधि कुसल कोसलामंडन ॥
कलि-मद-मथन-नाम ममताहन । तुलसिदास-प्रभु पाहि प्रनत जन॥७॥

दोहा

मो सम दीन, न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर ।
अस बिचारि रघुबंस-मनि हरहु बिषम भवभीर ॥ ८ ॥

(रामचरितमानस)

७-मामवलोकय = माम (मुझको) + अवलोकय (देखो) । तामरस = कमल । काम-अरि = शिव । मकरंद = पराग । मधुप = भ्रमर । जातुधान = राक्षस । बरूथ = समूह । रंजन = प्रसन्नकर्त्ता । अघगंजन = पाप-नाशक । भूसुर = ब्राह्मण । ससि = शस्य, धान्य । बलाहक = मेघ । बिराध = एक राक्षस । सुधाकर = चंद्रमा । ब्यलीक = अनुचित । ममताहन = मोह के नाशक; निर्मम; ज्ञानरूप । प्रनत = शरणागत । बिषम = दारुण, असह्य । भीर = कष्ट, यातना ।

कवित्त

नाम लिये पूत को पुनीत कियो पातकीस,
आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील की।
छलिन की छौंड़ो सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति,
कीन्हीं लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील की॥
तुलसी औ तारिबो बिसारिबो न अंत मोहिं,
नीके है प्रतीति रावरे सुभाव साल की।
देव तौ दयानिकेत, देत दादि दीनन की,
मेरी बार मेरेही अभाग नाथ ढील की॥ ६॥

*

सिला-साप-पाप, गुह गीध को मिलाप,
सबरी के पास आप चलि गये हौ सो सुनी मैं।
सेवक सराहे कपिनायक बिभीषन,
भरत सभा सादर सनेह सुरधुनी मैं॥
आलसी-अभागी-अघी-आरत-अनाथ-पाल,
साहेब समर्थ एक नीके मन गुनी मैं।
दोष-दुख-दारिद-दलैया दीनबंधु राम,
तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी मैं॥ १०॥

*

९—पातकीस = पापियों में शिरोमणि, अजामेल। आरति = आर्त्ति, यातना। पाहि= रक्षा करो। पील = हाथी। छौंड़ी = लड़की। निगोड़ा = बुरी, निकम्मी। भोंड़े = भद्दे। नीके = भलीभांत। रावरे = आपके। दादि देत = न्याय करते हैं।

१०-सिला = शिला; अहल्या से तात्पर्य है। गुह = निषाद। सुरधुनी = गंगा। मैं = मय। गुनी = विचार कर लिया है। दारिद = दारिद्र्य। दुनी = दुनिया, जगत।

छार तें सँवारि कै पहार हू तें भारी कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइ कै।
हौं तौ जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै,
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइ कै॥
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज!
मेरी ओर हेरिकै न बैठिए रिसाइ कै।
पालिकै कृपालु ब्याल-बाल को न मारिये,
औ काटिये न, नाथ! विषहू को रूख लाइ कै॥११॥

*

बेद न पुरान गान, जानौं न विज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रवीनता।
नाहिंन बिराग, जोग, जाग भाग तुलसी के,
दया-दान-दूबरो हौं, पाप ही की पीनता॥
लोभ-मोह-काम-कोह-दोष-कोष मोसो कौन?
कलि हू जो सीखि लई मेरियै मलीनता।
एकहो भरोसो राम, रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीन-बंधु, मेरी दीनता॥ १२॥

*

जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिये बिबुध-धेनु रासभी बेसाहिए।

११—छार = धूल; तुच्छ। गारो=गौरव, बड़प्पन पच्छ=पक्ष, अवलंब, सहारा। कै कै = कर-कर। रिसाइकै = क्रोध करके। ब्यालबाल = साँप का बच्चा। रूख = पेड़।

१२—साधन-प्रवीनता = साधनों में कुशलता। जाग = याग, यज्ञ। दूबरो = दुर्बल। पीनता = मोटाई। कोह = क्रोध। कलिहू = कलियुग ने भी।

१३—जाहिर = उजागर जहान = जगत्। जमानो......भयो = समय बड़ा टेढ़ा आगया है। बिबुध-धेनु = कामधेनु। रासभी = गदही।

ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु तेरे,
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए ॥
तुलसी तिहारो मन बचन करम, तेहि
नाते नेह-नेम निज ओर तें निबाहिए,
रंक के निवाज रघुराज राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ॥ १३ ॥

*

ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव ! प्रानहू के प्रानहौ ।
कालहू के काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्महू के कर्म, निदानहू के निदान हौ ॥
निगम को अगम, सुगम तुलसीहू से को,
एतेमान सीलसिंधु करुनानिधान हौ ।
महिमा अपार, काहू बोल को न वारापार,
बड़ी साहिबी में नाथ बड़े सावधान हौ ॥ १४ ॥

*

धरम के सेतु, जग-मंगल के हेतु,
भूमि-भार हरिबे को अवतार लियो नर को ।
नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल चालि प्रभु मान,
लोक बेद राखिबे को पन रघुबर को ॥

त्रिताप = दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट । नेह-नेम = प्रेम का नियम । रंक = गरीब, दीन । दराज = दीर्घ ।

१४—महाभूत = पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत माने गये हैं । निदान = कारण । एतेमान = इतने । बोल = वचन । न वारापार = अटल है ।

१५—सेतु = पुल । हेतु = कारण । पन = प्रण, प्रतिज्ञा ।

बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोइ कीजै, बलि.
तुलसी तिहारो घर-जायउ है घरको ॥ १५ ॥

सवैया

तेरे बिसाहे बेसाहन औरनि, और बेसाहि कै बेचनहारे।
ब्योम रसातल भूमि भरे नृप कूर कुसाहिब सेंतिहु खारे ॥
तुलसी तेहि सेवत कौन मरै? रज तें लघु को करे मेरु तें भारे?
स्वामी सुसील समर्थ सुजान सो तो सों तुहीं दसरत्थ-दुलारे ॥१६॥

×

दानव देव अहीस महीस महामुनि तापस सिद्ध समाजी।
जग जाचक दानि दुतीय नहीं, तुमही सबकी सब राखत बाजी ॥
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिये बिनु भूख न भाजी।
राम गरीब नेवाज! भये हो गरीब निवाज गरीब नेवाजी ॥ १७ ॥

×

आपु हौं आपु को नीके कै जानत, रावरो राम! भरायो गढ़ायो।
कीर-ज्यों नाम रटै तुलसी सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो ॥

कनावड़े = एहसानमंद। अनुचर = दास, सेवक। घर जायउ = घर में पैदा हुआ, पाला-पोसा, खरीदा हुआ गुलाम।

१६–बेसाहे = मोल लेने से। ब्योम = आकाश। सेंतिहु = मुफ्त में भी। खारे = बुरे। रज तें = धूल से। मेरु = सुमेरु पर्वत। सुजान = चतुर।

१७–अहीस = शेषनाग। तापस = तपस्वी। समाजी = संप्रदाय वाले। सब बीज सखन – सब मनोरथ पूरा करते हो। नेवाज = रक्षक।

१८–आपु हौं = मैं स्वयं। नीके कै = भली भांति। भरायो गढ़ायो = बनाया हुआ। कीर = सुग्गा।

सोई है खेद जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तौ सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो ॥ १८ ॥

छप्पय

महाराज बलि जाउँ राम, सेवक-सुख-दायक।
महाराज बलि जाउँ राम, सुंदर सब लायक ॥
महाराज बलि जाउँ राम, सब संकट-मोचन।
महाराज बलि जाउँ राम, राजीव-बिलोचन ॥
बलि जाउँ राम करुनायतन, प्रनत-पाल पातक-हरन।
बलि जाउँ राम कलि-भय-बिकल तुलसिदास राखिय सरन ॥१९॥

*

जय ताड़का-सुबाहु-मथन, मारीच-मान-हर।
मुनि-मख-रच्छन-दच्छ, सिला-तारन करुनाकर ॥
नृप-गन बल मद-सहित संभु-कोदंड बिहंडन।
जय कुठार-धर-दर्प-दलन, दिनकर-कुल-मंडन ॥
जय जनकनगर-आनंद-प्रद, सुखसागर सुखमा-भवन।
कह तुलसिदास सुर-मुकुट-मनि जय जय जय जानकि-रवन ॥२०॥

×

खर = गदहा। गयन्द = हाथी।

१९—संकटमोचन = कष्टों से छुड़ानेवाले। राजीव विलोचन = कमल—जैसे नेत्रवाले। प्रनत = शरणागत। पाल = रक्षक।

२०—मख = यज्ञ। दच्छ = दक्ष, चतुर। शिला = अहल्या से अभिप्राय है। कोदण्ड = धनुष। बिहंडन = तोड़नेवाले। कुठारधर = परशुराम। मंडन = भूषण, शृंगार, श्रेष्ठ। सुखमा = शोभा। रवन = रमण, वल्लभ।

जय जयंत-जयकर, अनंत, सज्जन–जन–रंजन ।
जय बिराध बध-बिदुष, बिबुध-मुनि-गन भय-भंजन ॥
जय निसिचरी-बिरूप-करन रघुबंस-बिभूषन ।
सुभट चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा खरदूषन ॥
जय दंडकबन-पावन-करन तुलसिदास-संसय-समन ।
जगबिदित जगत मनि जयति जय जय जय जय जानकिरमन ॥२१॥

जय मायामृग-मथन गीध-सबरी-उद्धारन ।
जय कबंध सूदन बिसाल-तरु-ताल बिदारन ॥
दवन बालि बल सालि, थपन सुग्रीव संतहित ।
कपि-कराल-भट-भालु कटक-पालन, कृपालु चित ॥
जय सिय-बियोग-दुख-हेतु–कृत सेतुबंध बारिधि–दमन ।
दससीस बिभीषन-अभयप्रद जय जय जय जानकिरमन ॥ २२ ॥

[कवितावली]

राग ललित

जानकी जीवन, जग-जीवन, जगत–हित,
जगदीस, रघुनाथ, राजीवलोचन राम !

२१–जयन्त = इन्द्र का पुत्र । बिराध = एक राक्षस । बध-बिदुष = मारने में निपुण । बिबुध = देव । निसिचरी = शूर्पणखा से तात्पर्य है । बिदित = प्रसिद्ध । मनि = मणि, श्रेष्ठ ।

२२–मायामृग = मारीच से अभिप्राय है । मथन = मारनेवाले । कबन्ध = एक राक्षस । सूदन = हन्ता, नाशक । थपन = स्थापित करनेवाले । कटक = सेना । दससीस......प्रद = रावण के आतंक से डरे हुए बिभीषण को शरण देनेवाले ।

सरद-बिधु-वदन, सुख-सील, श्रीसदन,
सहज सुंदर तनु, सोभा अगनित काम ॥
जग-सुपिता, सुमातु, सुगुरु, सुहित, सुमीत,
सबको दाहिनो, दीनबंधु, काहू को न बाम ।
आरति-हरन, सरनद, अतुलित दानि,
प्रनतपाल, कृपालु पतितपावन नाम ॥
सकल-बिस्व-बंदित, सकल-सुर-सेवित,
आगम निगम कहैं रावरेई गुनग्राम ॥
इहै जानि कै तुलसी तिहारो जन भयो,
न्यारो कै गनिबो जहाँ गने ग़रीब गुलाम ॥ २३ ॥

राग टोड़ी

तू दयालु दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तुही ठाकुर, हौं चेरो ।
तात, मात, गुरु, सखा, तू सब बिधि हितु मेरो ॥
तोहि मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥ २४ ॥
और काहि माँगिए, को माँगिबो निवारै ?

२३—सरद-बिधु = शरद् का चन्द्रमा । दाहिनो = अनुकूल । बाम = प्रतिकूल । आरति = आर्त्ति, कष्ट । आगम-निगम = शास्त्र-वेद । ग्राम = समूह ।

२४—आरत = आर्त्त, दुखी । ठाकुर = स्वामी । चेरो = दास । नाते = सम्बन्ध । ज्यों-त्यों = जैसे बने तैसे । हितु = भलाई चाहनेवाला ।

अभिमत-दातार कौन दुख दरिद्र दारै ?
धरम-धाम राम काम-कोटि-रूप रूरो ।
साहिब सब बिधि सुजान, दान-खड्ग-सूरो ॥
सुसमय दिन द्वै निसान सब के द्वार बाजै ।
कुसमय दसरथ के दानि ? तैं गरीब नेवाजै ॥
सेवा बिनु, गुन-बिहीन दीनता सुनाए ।
जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए ॥
तुलसिदास जाचक-रुचि जानि दान दीजै ।
रामचंद्र चंद्र तू, चकोर मोहिं कीजै ॥ २५ ॥

राग धनाश्री

हरि, तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन-धाम बिबुध-दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों ॥
कोटिहुँ मुख कहि जायँ न प्रभु के एक-एक उपकार ।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं दीजे परम उदार ॥
बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।
तातें सहिय बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक ॥
कृपा-डोरि, बंसी पद-अंकुस, परम प्रेम मृदु चारो ।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ॥

२५-अभिमत-दातार = मनोवांछित फल देनेवाला । दारै = दूर करता है, दलित करता है । रूरो = सुंदर । सूरो = शूर । निहाल किये = उद्धार कर अभय कर दिये । निसान = नगाड़ा, बाजा । फूले = प्रसन्न ।

२६-साधन-धाम = जिसके द्वारा मुक्ति-प्राप्ति के सभी साधन सध सकें । बिबुध = देवता । बारि = जल । भिन्न = अलग । जोनि = योनि । बनसी-पद-अंकुश = भगवान् के चरण-चिन्हों में जो अंकुश है, वही हो मछली पकड़ने का काटा । चारो = चारा, आटा । कौतुक = लीला, तमाशा ।

हैं स्रुति-बिदित उपाय सकल, सुर केहि केहि दीन निहोरै ?
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै ॥२६॥

राग बिलावल

माधव ! अब न द्रवहु केहि लेखे ?
प्रनतपाल प्रन तोर, मोर प्रन जिअउँ कमल पद देखे ॥
जब लगि मैं न दीन, दयालु तैं, मैं न दास, तैं स्वामी ।
तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं, जद्यपि अंतरजामी ॥
तै उदार, मैं कृपन, पतित मैं, तैं पुनीत स्रुति गावै ।
बहुत नात रघुनाथ तोहिं मोहिं, अब न तजे बनि आवै ॥
जनक जननि, गुरु बंधु, सुहृद पति सब प्रकार हितकारी ।
द्वैत-रूप तमकूप परौं नहिं अस कछु जतन बिचारी ॥
सुनु अदभ्र करुना, बारिज-लोचन, मोचन-भय-भारी ।
तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिनु संसय टरै न टारी ॥ २७ ॥

राग धनाश्री

काहे तें हरि मोहिं बिसारो ।
जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो ॥
पतित पुनीत दीन-हित असरन-सरन कहत श्रुति चारो ।
हौं नहिं अधम सभीत दीन ? किधौं बेदन मृषा पुकारो ?
खग-गनिका गज-ब्याध-पाँति जहँ, तहँ हौं हूँ बैठारो ।
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो ॥

रजु = रस्सी ।

२७—द्रवहु = पिघलते हो, कृपा करते हो । केहि लेखे = किस कारण से । प्रन = प्रण, प्रतिज्ञा । नात = नाता, रिश्ता । जनक = पिता । द्वैत = भेद-बुद्धि । तम = अज्ञान से तात्पर्य है । अदभ्र = अधिक, बहुत बड़ा ।

२८—मृषा = असत्य । हौं हूं = मैं भी, मुझे भी । पनवारो = पत्तल; यह शब्द बुंदेलखण्डी है ।

जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस तें न्यारो।
तौ हरि रोष भरोस दोस गुन तेहि भजते तजि गारो॥
मसक बिरंचि बिरंचि, मसक-सम करहु प्रभाव तुम्हारो।
यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो॥
नाहिंन नरक परत मो कहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो॥ २८॥

राग बिलावल

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्रीरघुवीर धीर हितकारी॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध-रिपु, मारा॥
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहिं जानि अनाथा॥
मैं एक, अमित बटपारा। कोउ सुनै न मोर पुकारा॥
भागेहु नहिं नाथ उबारा। रघुनायक करहु सँभारा॥
कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तस्कर तव धामा॥
चिंता यह मोहि अपारा। अपजस नहिं होय तुम्हारा॥२९॥

*

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक धरिहौ नाथ! सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिबस नाम टेरे॥

गारो=झगड़ा, झंझट। मसक=मच्छर। बिरंचि=ब्रह्मा। अछत=होते हुए। चारो=वश, चारा। त्रास=भय।

२९—बरजोरा=जबरदस्ती, हठ। तम=अज्ञान। बोधरिपु=ज्ञानका शत्रु। मारा=मार, कामदेव। बटपार=डाकू। सँभार=रक्षा। तसकर=चोर।

३०—सरोज=कमल। आरत=आर्त्त, दुखी। बारक=एक बार। बिवस=लाचार।

जेहि कर-कमल कठोर संभु-धनु भंजि जनक-संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु-ज्यों, परम प्रीति केवट भेंट्यो॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीध कहँ पिंडोदक दै धाम दियो।
जेहि कर बालि बिदारि दास-हित कपि-कुल-पति सुग्रीव कियो॥
आयो सरन सभीत बिभीषन जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभय दान देवन्ह दीन्हों॥
सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप, ताप, माया।
निसि बासर तेहि कर-सरोज की चाहत तुलसिदास छाया॥३०॥

कृपासिंधु ! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे?
जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत तब तिन्ह के दुख दाहे॥
गज, प्रहलाद, पांडु-सुत, कपि सब को रिपु-संकट मेट्यो।
प्रनत बंधु-भय-बिकल बिभीषन उठि जो भरत ज्यों भेट्यो॥
मैं तुम्हरो लै नाम ग्राम इक उर आपने बसावौं।
भजन, बिबेक, बिराग लोग भले करम-करम करि ल्यावौं॥
सुनि रिस-भरे कुटिल कामादिक करहिं जोर बरिआईं।
तिन्हहिं उजारि नारि अरि धन पुर राखहिं राम गोसाईं॥
सम सेवा छल दान दंड हौं रचि उपाय पचि हार्‍यो।
बिनु कारन के कलह बड़ो दुख, प्रभु सों प्रगटि पुकार्‍यो॥
सुर स्वारथी, अनीस, अलायक, निठुर, दया चित नाहीं।
जाउँ कहाँ, को बिपति-निबारक भव-तारक जग माहीं?
तुलसी जदपि पोच तउ तुम्हरो, और न काहू केरो।

तिलक = राज्याभिषेक। चाप = धनुष। संसय = संदेह, दुःख। पिंडोदक = पिंडदान और जलांजलि। धाम = साकेतलोक। छाया = रक्षा से तात्पर्य है।

३१-दादि = न्याय, इंसाफ। दाहे = जला दिये, नष्ट किये। ल्यावों = (बुंदेलखंडी प्रयोग) ले आऊँ। उजारि = उजाड़ कर। अनीस = असमर्थ, अनाथ।

दीजै भगति बाँह बैरक ज्यों, सुबस बसै अब खेरो ॥ ३१ ॥

राग नट

मैं हरि, पतित-पावन सुने ।
मैं पतित, तुम पतित-पावन, दोउ बानक बने ॥
ब्याध, गनिका, गज, अजामिल साखि निगमनि भने ।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ?
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने ।
दास तुलसी सरन आयो राखिए अपने ॥ ३२ ॥

राग बिलावल

कहाँ जाउँ ? कासों कहौं ? को सुनै दीन की ?
त्रिभुवन पति तुहीं गति सब अंगहीन की ॥
जग जगदीस घर, घरनि घनेरे हैं ।
निराधार को अधार गुनगन तेरे हैं ॥
गजराज-काज खगराज तजि धायो को ?
मोसे दोष-कोष पोसे, तोसे माय जायो को ?
मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के ।
किए बहु मोल तैं करैया गीध-स्राध के ॥
तुलसी की तेरे ही बनाए, बलि, बनैगी ।
प्रभु की बिलंब-अंब दोष-दुख जनैगी ॥ ३३ ॥

*

बारक = एक बार । खेरो = खेड़ा, छोटा सा गाँव । सुबस = स्ववश, स्वतंत्र ।

३२—पतित-पावन = पापियों को पवित्र करनेवाले । बानक = बानावाले, व्यापारी । ब्याध = बहेलिया; बाल्मीकि से तात्पर्य है । गनिका = वेश्या; पिंगला से तात्पर्य है । साखि = साक्षी । राखिये अपने = अंगीकार कर लो ।

३३—किंकर = सेवक । आरति के लीन्हे = क्लेशित होने के कारण । नत = प्रणत, विनीत । बाँचो = बच गया ।

केहू भाँति कृपासिंधु ! मेरी ओर हेरिये ।
मो को और ठौर न, सुटेक एक तेरिये ॥
सहस सिला तें अति जड़ मति भई है ।
कासों कहौं, कौने गति पाहनहिं दई है ?
पद-राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं ।
कलि-मल खल देखि भारी भीति भियो हौं ॥
करम-कपीस बालिबली-त्रास-त्रस्यो हौं ।
चाहत अनाथ-नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं ॥
महामोह रावन बिभीषन-ज्यों हयो हौं ।
त्राहि तुलसीस ! त्राहि तिहुँ ताप तयो हौं ॥ ३४ ॥

राग कल्यान

नाथ सों कौन बिनती कहि सुनावौं ?
बिबिध अनगनित अवलोकि अघ आपने,
सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ॥
बिरचि हरि-भगति को वेष बर टाटिका,
कपट-दल हरित पल्लवनि छावौं ।
नाम-लगि लाइ, लासा ललित बचन कहि,
ब्याध-ज्यों विषय-बिहँगनि बझावौं ॥
कुटिल सत कोटि मेरे रोम पर वारियहि,
साधु-गनती में पहिलेहिं गनावौं ।

३४-केहूभाँति = किसी भी तरह । टेक = सहारा, बल । पद-राग = चरणों में अनुराग । जाग = याग, यज्ञ । कौसिक = विश्वामित्र । भियो हौं = डर गया हूँ । तयो हौं = जल रहा हूँ ।

३५-टाटिका = टट्टी । लगि = लग्गी, लकसी, बांस । लाइ = लगाकर । लासा = चेप । बझावौं = फसाता हूँ । ब्याध = बहेलिया ।

परम बर्बर खर्ब गर्ब-पर्बत चढ्यो,
अज्ञ सर्बज्ञ, जन-मनि जनावौं ॥
साँच किधौं झूठ मोको कहत कोउ
कोउ राम रावरो हौं तुम्हरो कहावौं ।
बिरद की लाज करि दासतुलसिहिं, देव !
लेहु अपनाय अब देहु जनि बावौं ॥ ३५ ॥

*

कबहिं देखाइहौ हरि चरन ?
समन-सकल-कलेस-कलि-मल, सकल-मंगल-करन
सरद-भव सुंदर तरुनतर अरुन बारिज-बरन ।
लच्छि-लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन ॥
गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपटु बटु बलि-छरन ।
बिप्र-तिय, नृग, बधिक के दुख दोष दारुन दरन ॥
सिद्ध-सुर-मुनि-बृन्द-बंदित, सुखद, सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन-तरन ॥
कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत-आरति-हरन ।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥ ३६ ॥

*

बर्बर = मूर्ख । खर्ब = नीच कमीना । जन-मनि = भक्तों में शिरोमणि, भक्तश्रेष्ठ । बावौं = बायाँ पीठ ।

३६—तरुनतर = बहुत ही तरुण, अत्यंत नवीन । लच्छि = लक्ष्मी । लालित = प्यार किये गये, सेवित । जनक = पिता, उत्पन्न-कर्त्ता । अनंग-अरि = कामदेव के शत्रु शिव । बटु = ब्रह्मचारी, वामन भगवान् से अभिप्राय है । छरण = छलनेवाले । बिप्र-तिय = अहल्या से तात्पर्य है । दरन = दलनेवाले, नाशकर्त्ता । सकृत = एक बार । आरति = आर्त्ति, दुःख ।

आपनो कबहुँ करि जानि हो ?
राम गरीब-नेवाज राजमनि बिरद-लाज उर आनि हौं ॥
सील-सिंधु सुंदर सब लायक समरथ सदगुन-खानि हौं ।
पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु प्रनत-प्रेम पहिचानि हौं ॥
बेद पुरान कहत, जग जानत, दीन दयालु दीन-दानि हौं ।
कहि आवत, बलि जाउँ, मनहुँ मेरी बार बिसारे बानि हौं ॥
आरत दीन अनाथनि के हित मानत लौकिक कानि हौं ।
है परिनाम भलो तुलसी को सरनागत-भय भानिहौं ॥३७॥

*

नाथ, नीके क जानिबी ठीक जन-जीय की ।
रावरो भरोसो नाह कैसो प्रेम-नेम लियो,
रुचिर रहनि रुचि मति-गति-तीय की ॥
दुकृत सुकृत बस सबही सों सँग पर्यो,
परखी पराई गति, आपने हूँ कीय की ॥
मेरे भले को गोसाईं पोच को न सोच संक,
हौं हू किए कहौं सौंह साँची सीय-पीय की ॥
ज्ञानहू गिरा के स्वामी बाहर-भीतर-जामी
यहां क्यों दुरैगी बात मुख की औ हीय की ॥

३७-प्रनत=नम्र, विनीत, शरणागत । दिन-दानी=नित्य दान करनेवाले
बानि=स्वभाव, आदत । कानि=मर्यादा, लाज । भानिहौं=नष्ट करोगे ।

३८-नीके कै=भलीभाँति । जानिबी=(बुंदेलखण्डी) समझ लीजियेगा। रावरो=
आपका । नाह=नाथ, पति । रुचिर=सुन्दर । दुकृत=कुकर्म, पाप
सुकृत=सत्कर्म, पुण्य । कीय की=किये हुए की । पोच=नीच । सौंह=
शपथ । सीय-पीय=सीतापति, रामचन्द्र । गिरा=वाणी । जामी=यार्म
बसनेवाले, जाननेवाले ।

तुलसी तिहारो, तुमही तें तुलसी को हित
राखि कहौं जोपै तौ ह्वैहौं माखी घीय की ॥ ३८ ॥

×

प्रन करि हौं हठि आजुतें राम, द्वार पर्‌यो हौं ।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौं न जनम भरि,
प्रभु की सौं करि निबर्‌यो हौं ॥
दै-दै धक्का जम-भट थके, टारे न टर्‌यो हौं ।
उदर दुसह साँसति सही बहु बार जनमि
जग नरक निदरि निकर्‌यो हौं ॥
हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि अर्‌यो हौं ।
तुम दयालु बनिहै दिये बलि,
बिलंब न कीजिए, जात गलानि गर्‌यो हौं ॥
प्रगट कहत जो सकुचिए, अपराध भर्‌यो हौं ।
तौ मन में अपनाइए तुलसिहि कृपा करि,
कलि बिलोकि हहर्‌यो हौं ॥ ३९ ॥

[विनय-पत्रिका]

राखि......घीय की = कपटभरी बात कहता होऊँ तो मैं घी की मक्खी हो जाऊँ। जैसे मक्खी घी में गिरकर तुरंत मर जाती है, वैसे ही मेरा भी सर्वनाश हो जाय।

३९–साँसति = कष्ट, यातना। मचला = मचलनेवाला, अड़ जानेवाला। अर्‌यो हौं = अड़ा हूँ, डटा हूँ। हहर्‌यो हौं = डर गया हूँ।

सीता-विनय

चौपाई

जनक-सुता जग-जननि जानकी । अतिसय प्रिय करुना-निधान की ॥
ताके जुगपद-कमल मनावउँ । जासु कृपा निरमल मति पावउँ ॥१॥

[राम-चरित-मानस]

राग केदार

कबहुँक अंब अवसर पाइ ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ ॥
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ॥
बूझिहैं 'सो है कौन?' कहिबी नाम दसा जनाइ ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनिजाइ ॥
जानकी जग-जननि जनकी किए बचन-सहाइ ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ ॥ २ ॥

×

१—करुना—निधान = करुणा के भाण्डार, अत्यन्त कृपालु श्रीरामचंद्र । निरमल = निर्विकार, शुद्ध ।

२—अंब = माता । मेरिऔ = मेरी भी । द्याइबी = दिला दीजियेगा । अँगहीन = निराश्रय । अघी = पापी । अघाइ = पूरा । नाम = राम—नाम । प्रभु—दासी—दास = आपकी दासी तुलसी, उसका दास (तुलसीदास) । भव = संसार । गन = गण, समूह ।

कबहुँ समय सुधि द्याइबी मेरी मातु जानकी ।
जन कहाइ नाम लेत हौं,
किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पान की ॥
सरल प्रकृति आपु जानिए करुना-निधान की ।
निजगुन अरि-कृत अनहितौ,
दास-दोष सुरति चित रहति न दिए दान की ॥
बानि बिसारन-सील है मानद अमान की ।
तुलसीदास न बिसारिए
मन क्रम बचन जाके सपनेहुँ गति न आन की ॥ ३ ॥

भरत-विनय

चौपाई

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना । जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥
राम-चरन-पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ॥१॥

[राम-चरित-मानस]

दंडक

भूमिजा-रमण-पद-कंज-मकरंद-रस-
रसिक-मधुकर-भरत भूरिभागी ।

३-पन = प्रण, टेक । चातक = पपीहा । प्रकृति = स्वभाव । अनहितौ = बुराई भी । सुरति = याद । बानि = आदत, स्वभाव । मानद = दूसरों को प्रतिष्ठा देनेवाले । क्रम = कर्मणा, कर्म से । । गति = शरण । आन = अन्य, और ।

१-लुबुध = लुब्ध, मोहित । पासू = सामीप्य, शरण ।

२-भूमिजा = सीताजी । भूरिभागी = बड़भागी ।

भुवन-भूषण-भानु-वंस-भूषण,
भूमिपाल-मणि-रामचंद्रानुरागी ॥
जयति बिबुधेस-धनदादि-दुर्लभ,
महाराज-सम्राज-सुखप्रद-बिरागी ।
खड्ग-धारा-व्रती-प्रथम रेखा प्रकट
शुद्ध-मति-युवति-व्रत प्रेम-पागी ॥
जयति निरुपाधि, भक्ति-भाव-जंत्रित-हृदय,
बंधुहित-चित्रकूटाद्रि-चारी ।
पादुका-नृप-सचिव पुहुमि-पालक परम,
धीर-गंभीर-बर बीर भारी ॥
जयति संजीवनी-समय-संकट,
हनूमान धनु-बान-महिमा बखानी ।
बाहु-बल बिपुल, परमिति पराक्रम अतुल,
गूढ़ गति जानकी-जानि जानी ॥
जयति-रन-अजिर गंधर्व-गन-गर्वहर,
फेरि किए राम-गुन-गाथ-गाता ।
मांडवी-चित्त-चातक नवांबुद-बरण,
शरण-तुलसीदास-अभय-दाता ॥ २ ॥

[विनय-पत्रिका]

—:o:—

विबुधेस = इन्द्र । संम्राज = साम्राज्य । प्रथम रेखा = सर्वशिरोमणि । जंत्रित = यंत्रित, अधीन । अद्रि = पर्वत । पुहुमि = पृथिवी । परमिति = प्रमाण । जानकी-जानि = सीता-वल्लभ रामचंद्र । रन-अजिर = रणाङ्गण, रणभूमि । गंधर्व......हर = केकय देशमें एक बार आक्रमणकारी गंधर्वों को भरत ने परास्त किया था । गाता = गायक । मांडवी = भरत की पत्नी । अंबुद = मेघ । वरण = वर्ण, रंग ।

लक्ष्मण-विनय

चौपाई

बंदउँ लछिमन-पद-जल-जाता। सीतल सुभग भगत-सुख-दाता॥
रघुपति-कीरति-बिमल पताका। दंड समान भयउ जसु जाका॥
सेस सहस्र सीस जग-कारन। जो अवतरेउ भूमि-भय-टारन॥
सदा सो सानुकूल रह मोपर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर॥१॥

[राम-चरित-मानस]

दंडक

लक्ष्मणानंत भगवंत भूधर, भुजगराज भुवनेश, भूभार-हारी।
प्रलय-पावक-महा ज्वाल-माला-वमन,२ शमन-संताप, लीलावतारी॥
जयति, दासरथि, समर-समरथ, सुमित्रा-सुवन, शत्रु-सूदन, राम-भरतबंधो।
चारु-चंपक-बरन, बसन भूषन-धरन दिव्यतर, भव्य, लावण्यसिंधो॥
जयति गाधेय-गोतम-जनक-सुखजनक-विस्व-कंटक-कुटिलकोटि-हंता।
बचन-चय-चातुरी परसु-धर-गर्वहर, सर्वदा रामभद्रानुगंता॥
जयति सीतेस-सेवासरस, विषय-रस-निरस-निरुपाधि, धुर-धर्मधारी।
विपुल बलमूल, शार्दूल-बिक्रम, जलदनाद-मर्दन, महावीर भारी॥

१-जलजाता = कमल। पताका = ध्वजा। जाका = जिसका। सौमित्रि = लक्ष्मण।

२-वमन = उगलनेवाले। भव्य = कान्तिमय, सुंदर। गाधेय = गाधि-पुत्र, विश्वामित्र। जनक-सुख-जनक = मिथिलापति जनक को सुख देनेवाले। चय = समूह। चातुरी = निपुणता। परसुधर = परशुराम। रामभद्रानुगंता = रामभद्र (रामचंद्र) + अनुगंता (अनुगामी)। सीतेस = सीता-पति। धुर = धुरी। जलद-नाद = मेघनाद।

जयति संग्राम-सागर-भयंकर-तरण रामहित-करण--वरबाहु-सेतू।
उर्मिला-रमण, कल्याण-मंगल-भवन, दासतुलसी-दोष-दवन-हेतू ॥२॥

[विनय-पत्रिका]

शत्रुघ्न-विनय

चौपाई

रिपुसूदन-पद-कमल नमामी। सूर सुसील भरत-अनुगामी ॥ १ ॥

[राम-चरित्र-मानस]

राग धनाश्री

जयति जय शत्रु-करि-केसरी शत्रुहन शत्रु-तम तुहिनहर-किरन-केतू।
देव! महिदेव-महि-धेनु-सेवक-सुजन-सिद्ध-मुनि-सकल-कल्यान-हेतू॥
जयति संग्राम-सुन्दर सुमित्रा-सुवन भुवन-बिख्यात भरतानुगामी।
वर्म-चर्मासि-धनु-बाण-तूणीर-धर शत्रु-संकट-शमन यत्प्रनामी॥
जयति लवणाम्बु निधि-कुम्भ-संभव, महा दनुज-दुर्जन-दवन, दुरितहारी।
लक्ष्मणानुज, भरत-राम-सीता-चरण रेणु भूषित-भाल तिलक-धारी॥

दमन-हेतू = दमन करने के कारण। उर्म्मिला = लक्ष्मणजी की पत्नी।

१-रिपु-सूदन = शत्रुघ्न। अनुगामी = आज्ञाकारी।

२-करि = हाथी। केसरी = सिंह। तुहिन = पाला। किरनकेतु = सूर्य। महिदेव = ब्राह्मण। वर्म = कवच। चर्मासि = चर्म (ढाल) + असि (तलवार)। तूणीर = तरकस। लवन = लवणासुर नाम का एक राक्षस। अंबुनिधि = समुद्र। कुम्भ-संभव = अगस्त्य ऋषि। दुरित = पाप।

जयति श्रुतिकीर्ति-वल्लभ सुदुर्लभ सुलभ नमत नर्मद-भक्ति-मुक्ति-दाता।
दासतुलसी चरण-शरण सीदत, विभो! पाहि! दीनार्त्त-संताप-हाता ॥२॥

[विनय-पत्रिका]

हनुमद्विनय

चौपाई

महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना ॥ १ ॥

सोरठा

प्रनवउँ पवन-कुमार, खल-बन-पावक ज्ञानघन।
जासु हृदय-आगार, बसहिं राम सर-चाप-धर ॥ २ ॥

[राम-चरित-मानस]

मत्त गयन्द

तेरे थपे उथपै न महेस, थपै थिर को कपि जे घर घाले ?
तेरे नेवाजे गरीबनेवाज ! बिराजत बैरिन के उर साले ॥
संकट सोच सबै तुलसी लिए नाम फटै मकरी केसे जाले।
बूढ़ भए, बलि, मेरेहि बार, कि हारि परे बहुतै नत पाले ॥ ३ ॥

× × × ×

श्रुतिकीर्ति = शत्रुघ्नजी की पत्नी। नर्मद = सुख देनेवाले। सीदत = कष्ट पाता है। पाहि = रक्षा करो। हाता = हरनेवाले।

२--आगार = स्थान। चाप = धनुष।

३-थपे = थापे हुए, प्रतिष्ठित किये हुए। उथपै = उखाड़ता है, पदच्युत करता है। घाले = नष्ट किये। साले = शल्य, कंटक, कष्ट। नत = प्रणत, शरणागत।

सिंधु तरे, बड़े बीर दले खल, जारे हैं लंक से बंक मवासे।
तैं रन-केहरि केहरि के बिदले अरि-कुञ्जर छैल छवासे॥
तोसो समत्थ सुसाहिब सेइ सहै तुलसी दुख-दोष दवासे।
बानर-बाज! बढ़े खल-खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवासे॥४॥

* * * *

सुजान-सिरोमनि हौ, हनुमान! सदा जन के मन बास तिहारो।
ढारो बिगारो मैं काको कहा? केहि कारन खीझत, हौं तौ तिहारो॥
साहिब सेवक नाते तें हातो कियो तो तहाँ तुलसी को न चारो।
दोष सुनाए ते आगेहुँ को हुसियार ह्वै हौं, मन तौ हिय हारो॥५॥

कवित्त

जानत जहान हनुमान को निवाज्यौ जन,
मन अनुमानि, बलि, बोल न बिसारिए।
सेवा-जोग तुलसी कबहुँ? कहा चूक परी,
साहेब सुभाय कपि साहेब सँभारिए॥
अपराधी जानि कीजै साँसति सहस भाँति,
मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए।
साहसी समीर के, दुलारे रघुबीरजू के!
बाँह-पीर महाबीर बेगिही निवारिए॥६॥

*

४—मवासे = स्थान, घर, महल। छवा = बच्चा। समत्थ = समर्थ। दवा = दावाग्नि। बानर-बाज = बंदर (हनुमान्) रूपी बाज पक्षी। खेचर = पक्षी।
५—ढारो-बिगारो = बनाया-बिगाड़ा। हातो कियो = अलग किया। चारो = वश।
६—निवाज्यौ = कृपा किया हुआ। बोल = वचन। साहेब = स्वामी। साँसति = कष्ट, यातना। माहुर = ज़हर। समीर के = पवन-पुत्र। निवारिए = दूर कीजिए।

तेरी बाल-केलि, बीर ! सुनि सहमत धीर,

भूलत सरीर-सुधि सक्र रवि राहु की ।

तेरी बाँह बसत बिसोक लोकपाल सब,

तेरो नाम लेत रहै आरति न काहु की ॥

साम दान भेद बिधि, बेदहु लबेद सिद्धि,

हाथ कपिनाथ ही के चोटी चोर साहु की ।

आलस, अनख, परिहास, की सिखावत है ?

एते दिन रही पीर तुलसी के बाहु की ॥ ७ ॥

*

पालो तेरे टूकको, परेहु चूक मूकिये न,

कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए ।

भोरानाथ भोरे हो, सरोप होत थोरे दोष,

पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिए ॥

अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ, सो न

बूझिए बिलंब अवलंब मेरे तेरिए ।

बालक बिकल जानि, पाहि, प्रेम पहिचानि,

तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिए ॥ ८ ॥

[हनुमान-बाहुक]

७-सहमत = डर के मारे काँप जाते हैं । सक्र = इन्द्र । बिसोक = शोक-रहित, सुखी । लोकपाल = कुबेर, यम, अग्नि आदि । आरति=आर्त्ति, दुःख । साम= शान्ति । लवेद = लौकिक बातें । अनख = क्रोध ।

८-मूकिये = छोड़ना न चाहिए, त्यागना न चाहिए । दू = दो । तोषि = तुष्ट करके, प्रसन्न करके । अवडेरिये = बसने या रहने न देना । अंबुचर = मछली । डिंभ = बालक । पाहि = रक्षा करो । लूम = पूँछ ।

राग धनाश्री ।

निर्भरानंद-संदोह कपि-केसरी केसरी-सुवन भुवनैक-भर्त्ता ।
दिव्य भूम्यंजना-मंजुलाकर-मणे, भगत-संताप–चिंतापहर्त्ता ॥
जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो ! ब्रह्मलोकादि-वैभव-विरागी ।
वचन-मानस-कर्म सत्यधर्मव्रती जानकीनाथ–चरनानुरागी ॥
जयति विहगेस-बल-बुद्धि-बेगाति-मद-मथन,मन्मथ-मथन,ऊर्ध्वरेता ।
महानाटक-निपुन, कोटि कवि-कुल–तिलक, गान-गुन-गर्व-गंधर्व-जेता॥
जयति मंदोदरी-केस-कर्षन विद्यमान-दसकंठ-भट-मुकुट-मानी ।
भूमिजा–दुःख-संजात–रोषांतकृत जातना जंतु-कृत–जातुधानी ॥
जयति रामायण-श्रवण-संजात-रोमांच लोचन सजल सिथिल बानी ।
राम-पद-पद्म-मकरंद-मधुकर पाहि ! दासतुलसी-सरन सूलपानी ॥९॥

राग सारंग

जाके गति है श्रीहनुमान की ।
ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की ॥
अघटित- घटन, सुघट- बिघटन, ऐसी विरुदावलि नहिं आनकी ।
सुमिरत संकट-सोच-बिमोचन मूरति मोद-निधान की ॥
तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम अरु जानकी ।
तुलसी कपि की कृपा-बिलोकनि खानि सकल कल्यान की ॥ १० ॥

९–निर्भर = पूर्ण । संदोह = समूह । आकर = खानि । अपवर्ग = मोक्ष । विहगेश = गरुड़ । मनमथ = कामदेव । ऊर्ध्वरेता = ब्रह्मचारी; योगद्वारा ऊपर चढ़ा दिया है वीर्य जिसने । जेता = विजयी । भूमिजा = सीताजी । संजात = उत्पन्न । सूलपानि = हाथ में शूल लेनेवाले, महादेवजी ।

१०–गति = आशा-भरोसा, शरण । पैज = प्रतिज्ञा । अघटित = असंभव । सुघट = संभव । बिघटन = बिगाड़ देनेवाले । विरुदावलि = गुणावली ।

राग बिलावल।

ऐसी तोहिं न बूझिए हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम से, तोसे न वसीले॥
तेरे देखत सिंह को सिसु मेढ़क लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुन-गन कीले॥
हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले।
सो बल गयो, किधौं भए अब गर्ब-गहीले॥
सेवक को परदा फटै, तू समरथ सी ले।
अधिक आपुतें आपुनो सुनि मान सहीले॥
साँसति तुलसीदास की सुनि सुजसु तुही ले।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम-रँगीले॥ ११ ॥

राग गौरी

मंगल-मूरति मारुत-नंदन। सकल अमंगल-मूल-निकंदन॥
पवन-तनय संतन-हितकारी। हृदय बिराजत अवध-बिहारी॥
मातु पिता गुरु गनपति सारद। सिवा समेत संभु सुक नारद॥
चरन बंदि बिनवौं सब काहू। देहु रामपद-नेह--निबाहू॥
बन्दौं राम लषन बैदेही। जे तुलसी के परम सनेही॥१२॥

(विनय-पत्रिका)

११-उसीले = वसीले, सहायक। कीले = बाँध दिये, निःशक्त कर दिये। बंधन = जोड़। सीले = टाँके लगादे। साँसति = यातना, कष्ट।

१२-मारुत-नन्दन = पवन-पुत्र हनुमान। निकन्दन = नाशक। सारद = शारदा, सरस्वती। सुक = शुकदेव।

छप्पय

अर्ध अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति ।
बिषम असन, दिग्बसन, नाम बिस्वेस बिस्वगति ॥
कर कपाल, सिरमाल ब्याल, बिष भूति बिभूषन ।
नाम सुद्ध, अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन ॥
बिकराल भूत-बैताल-प्रिय, भीम नाम भव-भय-दमन ।
सबबिधि समर्थ महिमा अकथ तुलसिदास संसय-समन ॥ ४ ॥

सवैया

नाँगो फिरै कहै माँगतो देखि " न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो ।"
राँकनि नाकप रीझि करै, तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो ॥
" नाक सवाँरत आयो हौं नाकहिं, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो " ।
ब्रह्म कहै " गिरिजा ! सिखवो, पति रावरो दानि है बावरो भोरो" ५

कवित्त

पिंगल जटा-कलाप, माथे पै पुनीत आप,
पावक नयना, प्रताप भ्रू पर बरत हैं ।
लोचन बिसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल,
कंठ कालकूट, ब्याल भूषन धरत हैं ॥

४—अंगना = स्त्री । जोगीस = योगीश, योगिराज । विषम असन = भाँग, धतूरा आदि खानेवाले । भूति = विभूति । अविरुद्ध = जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो । अनवद्य = स्तुत्य । भीम = भीषण । भव-भय = सांसारिक डर; जन्म-मरण ।

५—खाँगो = कमी । राँकनि = रंकों को । नाकप = स्वर्गपति, इन्द्र । नाक सवाँरत = स्वर्ग सजाते-सजाते । आयो हौं नाकहि = नाक में दम आगया है, परेशान हो गया हूँ । निहोरो = एहसान । भोरो = भोला, सीधा ।

६—पिंगल = पीला, भूरा, तामड़ा । बालचंद्र = दूैज का चंद्रमा । कालकूट=हालाहल ।

सुंदर दिगंबर बिभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृङ्गी पूरे काल-कंटक हरत हैं।
देत न अघात, रीझि जात पात आकही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं ॥ ६ ॥

*

स्यंदन, गयंद, बाजि-राजि, भले भले भट,
धन-धाम-निकर, करनि हू न पूजै क्वै।
बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन, औ,
बिनय बिबेक बिद्या सुभग सरीर ज्वै।
इहाँ ऐसो सुख, परलोक सिवलोक ओक,
ताको फल तुलसी सों सुनौ सावधान ह्वै।
जाने, बिनु जाने, कै रिसाने, केलि कबहुँक,
सिवहि चढ़ाये ह्वैहैं बेलके पतौवा द्वै ॥ ७ ॥

*

रतिसी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनि-पति,
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारिकै।
संपदा समाज देखि लाज सुरराजहू के,
सुख सब बिधि बिधि दीन्हें हैं सँवारिकै।

दिगंबर = नग्न। रूरे = सुन्दर, भली भाँति। आक = मदार। औढर = मनमौजी। ढरत हैं = ढलजाते हैं, कृपा कर देते हैं।

७—स्यंदन = रथ। बाजिराजि = घोड़ों की पंक्ति, बहुत से घोड़े। भट = योद्धा। करनि = करनी, करतूत। न पूजै कै = कोई समता नहीं कर सकता। ज्वै = जो कुछ। ओक = घर, धाम। केलि = खेल। पतौआ = पत्ते।

८—रवनि = रमणी, स्त्री। सिंधु···पति = आसागरान्त पृथिवी का स्वामी, चक्रवर्ती। औनिप = अवनिप, पृथिवी-पति, राजा।

इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुर-नाथ-पद,
ताको फल तुलसी सो कहैगो बिचारिकै।
आक के पतौवा चारि, फूल कै धतूरे के द्वै,
दीन्हें ह्वैहैं बारक पुरारि पर डारिकै॥ ८॥

*

भूतभव! भवत् पिसाच-भूत प्रेत-प्रिय,
आपनो समाज, सिव! आपु नीके जानिए।
नाना बेष, बाहन, बिभूषन, बसन, बास,
खान पान, बलि पूजा बिधि को बखानिए।
राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब,
सबसों सनेह सबही को सनमानिए।
तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथही के,
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिए॥ ९॥

*

गौरीनाथ भोलानाथ भवत् भवानी-नाथ,
बिस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की।
संकर से नर, गिरिजा सी नारी कासीबासी,
वेद कही, सही ससिसेषर कृपाल की।
छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग,
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की।

आक = मदार। बारक = एक बार। पुरारि = शिव।

९—भूतभव = जीवों के कारण-स्वरूप। भवत् = आप। बास = निवास-स्थान। भूतनाथ = शिव। भवानिए = भवानी (पार्वती) ही।

१०—भवत् = आप। आन = दुहाई। सही = समर्थन। ससिसेषर = चंद्रमौलि, शिव। छमुख = कार्तिकेय।

पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात-कलि,
निठुर निहारिए उघारि डीठि भाल की ॥ १० ॥

*

ठाकुर महेस ठकुराइनि उमासी जहाँ,
लोक वेद हू बिदित महिमा ठहर की ।
भट रुद्रगन, भूतगनपति सेनापति,
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी ॥
बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी,
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की ।
कैसे कहै तुलसी, वृषासुर के बरदानि !
बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की ॥ ११ ॥

[कवितावली]

राग बिलावल

का जाचिए संभु तजि आन ?
दीनदयालु भगत-आरतिहर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥

सुरबेलि = कल्प-लता । किरात = भील, शिकारी । भालकी डीठि = भाल पर के अर्थात् तीसरे नेत्र (प्रलयकारी नेत्र) की दृष्टि । उघारि = खोलकर ।

११-ठाकुर = स्वामी । उमा = पार्वती । ठहर = ठौर । भट = योद्धा । सेनापति = कार्तिकेय । हरकी = हटकी, रोकी । बीसी = संवत् १६६५ से १६८५ तक का बीस वर्ष का समय । वृषासुर = भस्मासुर राक्षस । बानि = स्वभाव ।

१२-आरति = आर्ति, दुःख ।

कालकूट ज्वुर जरत सुरासुर, निज पन लागि कियो बिषपान ।
दारुन दनुज जगत-दुखदायक जारयो त्रिपुर एकही बान ॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत स्रुति सकल पुरान ।
सोइ गति मरन-काल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान ॥
सेवत सुलभ उदार कलपतरु पारवती-पति परम सुजान ।
देहु कामरिपु राम-चरन-रति तुलसिदास कहँ कृपा-निधान ॥१२॥

*

राग रामकली

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे ।
किए दूर दुख सबनि के जिन जिन कर जोरे ॥
सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे ।
दियो जगत जहँ लगि सबै सुख गज, रथ, घोरे ॥
गाँव बसत, बामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे ।
अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे ॥
बेगि बोलि, बलि, बरजिए करतूति कठोरे ।
तुलसी दलि रूँध्यों चहैं सठ साखि सिहोरे ॥ १३ ॥

*

कालकूट = हालाहल विष; समुद्र से उत्पन्न १४ रत्नों में से एक । गति = मुक्ति । सदाशिव = सदैव कल्याणकारी । कामरिपु = कामदेव को भस्म कर देनेवाले । रति = प्रीति ।

१३-भोरे = भोले, सीधे-सादे । पात = पत्ता, बेलपत्र । आखत = अक्षत, चावल । घोरे = घोड़े । बामदेव = शिव । निहोरे = माँगे, विनय की । अधिभौतिक = शारीरिक । सिहोरा = थूहड़; एक काँटेदार पेड़ ।

सिव, सिव होइ प्रसन्न करु दाया ।
करुनामय, उदार-कीरति, बलि जाउँ ! हरहु निज माया ॥
जलज-नयन, गुन-अयन, मयन-रिपु, महिमा जान न कोई ।
बिन तव कृपा राम-पद-पंकज सपनेहुँ भगति न होई ॥
ऋषय सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं ।
तव-पद-विमुख न पार पाव कोउ कलप कोटि चलि जाहीं ॥
अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव-देव त्रिपुरारी ।
मोह-निहार-दिवाकर संकर, सरन-सोक-भयहारी ॥
गिरिजा-मन-मानस-मराल, कासीस, मसान-निवासी ।
तुलसिदास हरि-चरन-कमल हर ! देहु भगति अविनासी ॥१४॥

*

राग धनाश्री

शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानंददं, शैल-कन्यावरं, परम रम्यं ।
काम-मद-मोचनं, तामरस-लोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं ॥
कंबु-कुंदेन्दु-कर्पूर गौरं, शिवं, सुन्दरं, सच्चिदानंदकंदं ।
सिद्ध-सनकादि-योगीन्द्र-वृन्दारका-विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविंदं ॥
ब्रह्मकुलवल्लभं, सुलभ मति दुर्लभं, विकट वेषं, विभुं, वेदपारं ।
नौमि करुणाकरं, गरल गंगाधरं, निर्मलं, निर्गुणं, निर्विकारं ॥

१४-उदार = ब्रह्माण्डव्यापी । मयन = मदन, कामदेव । ऋषय = ऋषिगण । चलिजाहीं = बीत जायँ । दूषन-रिपु-सेवक = दूषण दैत्य के शत्रु राम, तिनके सेवक । निहार = हिम, पाला ।

१५-शंप्रद = कल्याणदाता । सज्जनानन्दद = सज्जन + आनन्दद (आनन्ददाता) । शैल-कन्या = पार्वती । तामरस = कमल । वामदेव = शिव । भजे = भजता हूँ । कुन्देन्दु = कुन्द (श्वेत पुष्प) + इन्दु (चन्द्रमा) । कंद = बादल । वृन्दारक = देवता । वन्द्य = वन्दन करनेयोग्य । विभु = ऐश्वर्य-संपन्न । वेदपार = वेद से परे । नौमि = नमस्कार करता हूँ । गरल = विष

लोकनाथं, शोक-शूल-निर्मूलिनं, शूलिनं, मोह-तम-भूरि भानुं ॥
कालकालं, कलातीतमजरं, हरं, कठिन कलिकाल-कानन कृशानुं ॥
तज्ञमज्ञान-पाथोधि-घट-संभवं, सर्वगं, सर्वसौभाग्य-मूलं ।
प्रचुर-भव-भंजनं प्रणत-जन-रंजनं, दास तुलसी शरण सानुकूलं ॥१५॥

[विनय-पत्रिका]

शक्ति-विनय

चौपाई

जय जय गिरि-बर-राज-किसोरी । जय महेस-मुख-चंद-चकोरी ॥
जय गज-वदन-षड़ानन-माता । जगत-जननि दामिनि-दुति-गाता ॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाव वेद नहिं जाना ॥
भव-भव-विभव- पराभव-कारिनि । विस्व-विमोहिनि, स्ववस-बिहारिनि

दोहा

पति-देवता-सुतीय महँ मातु प्रथम तव रेख ।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेख ॥ २ ॥

[राम-चरित-मानस]

—:o:—

कलातीत = कलारहित । अजर = जो वृद्ध न हो । कृशानु = अग्नि । तज्ञ = तत्ववेत्ता । पाथोधि = समुद्र । घटसंभव = अगस्त्य । प्रचुर = बहुत, बड़ा ।

१–षड़ानन = कार्तिकेय । अवसान = अंत । भव = (१) संसार (२) उत्पत्ति । पराभव = नाश ।

२–रेख = नाम । सेख = शेष ।

कवित्त

रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग अग-जग-पालिके ।
तोहि में विकास विस्व, तोहि में विलास सब,
तोहि में समात मातु भूमि-धर-बालिके ॥
दीजै अवलंब जगदंब न विलंब कीजै,
करुना-तरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके ।
रोष महामारी परितोष, महतारी ! दुनी,
देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके ॥ ३ ॥

[कवितावली]

—:०:—

राग मारू

दुसह-दोष-दुख-दलनि करु देवि ! दाया ।
विश्व मूलासि, जन-सानुकूलासि, कर-शूल-धारिणि, महामूल माया ॥
तड़ित गर्भाङ्ग सर्वाङ्ग सुन्दर लसत, दिव्य पट, भव्य भूषण विराजै ।
बालमृगमंजु-खंजन-विलोचनि, चंद्रबदनि, लखि कोटि रतिमार लाजै ॥
रूप-सुख-शील-सीमासि, भीमासि, रामासि, वामासि, वरबुद्धिबानी।
छमुख-हेरंब-अंबासि जगदम्बिके ! शंभु-जायासि जयजय भवानी ॥

३-बिरंचि = ब्रह्मा । अग-जग = अचर-चर । प्रसाद = कृपा । विकास = उत्पत्ति। भूमिधर = पर्वत; हिमालय से तात्पर्य है । अवलंब = सहारा । तरंगिनी = नदी । कृपा-तरंग-मालिका = अत्यन्त कृपा करनेवाली । मरालिका = हंसिनी ।

४-मूलासि = मूल (जड़, आदि कारण) + असि (हो) । सानुकूलासि = स + अनुकूल (कृपा करनेवाली) + असि (हो) । महामूलमाया = परा प्रकृति । छमुख = कार्तिकेय । हेरंब = गणेश । मार = कामदेव । भीमा = भयंकरी । रामा = सुन्दरी । वामा = स्त्री । अंबासि = अंब (माता) + असि (हो) । जायासि = जाया (स्त्री) + असि (हो) ।

चंड-भुजदंड-खंडनि, विहंडनि, महिष-मदभंग करि अंग तोरे।
शुम्भ-निःशुम्भ-कुंभीश-रण-केशरिणि, क्रोध-बारिधि बैरि-वृन्द बोरे॥
निगम-आगम-अगम, गुर्वि तव गुण-कथन उर्विधर करै सहसजीहा।
देहि मा! मोहि प्रण-प्रेम यह नेम निजराम घनस्याम, तुलसी पपीहा४

[विनय-पत्रिका]

अन्नपूर्णा-विनय

कवित्त

लालची ललात, बिललात द्वार-द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना।
ताकत सराध कै बिवाह कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना॥
प्यासे हू न पावै वारि, भूखे न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार दारि कूरना।
सोक को अगार दुख-भार-भरो तौलौं जन,
जौलों देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना॥ १॥

[कवितावली]

चंड = तेजयुक्त। विहंडनि = नष्ट करनेवाली। महिष = महिष नाम का एक दैत्य। तोरे = तोड़ डाले। शुंभनिःशुंभ = दैत्य। कुंभीश=गजेन्द्र। केशिरिणि = सिंहिनी। गुर्वि = बड़ा भारी। उर्विधर = पृथिवी धारण करनेवाला शेषनाग। जीहा=जीभ।

१-बिसूरना = सोच। सराध = श्राद्ध। उछाह = उत्सव। लोल = चपल। सबद = शब्द। तूरना = तूरी। बूझत.. ...तूरना = ढोल आदि की आवाज सुनकर पूछता है कि, यहाँ कोई उत्सव तो नहीं है। चनक = चना। दारि = दाल। कूरना = ढेर। भार = बोझ। द्रवै = पिघले, कृपा करे।

गणेश-विनय

राग विलावल

गाइए गनपति जग-बंदन । संकर-सुवन-भवानी-नंदन ॥
सिद्धि-सदन गज-बदन विनायक । कृपासिंधु सुन्दर सब लायक ॥
मोदकप्रिय मुद्-मंगल-दाता । विद्या-वारिधि बुद्धि-विधाता ॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं राम-सिय मानस मोरे ॥

[विनय-पत्रिका]

सूर्य-विनय

दीनदयालु दिवाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥
हिम-तम-करि-केहरि करमाली । दहन दोष दुख दुरित रुजाली ॥
कोक-कोकनद—लोक-प्रकासी । तेज-प्रताप-रूप—रस—रासी ॥
सारथि पंगु, दिव्यरथ-गामी । हरि-संकर-विधि मूरति स्वामी ॥
वेद-पुरान प्रगट जस जागै । तुलसी राम-भगति बर माँगै ॥१॥

[विनय-पत्रिका]

१—सिद्धि = अलौकिक शक्ति; अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व—ये आठ सिद्धियां हैं। वारिधि = समुद्र। मानस = मनरूपी मानसरोवर।

१—करि = हाथी। केहरि = सिंह। करमाली = किरणों की माला पहननेवाले। दहन = आग। दुरित = पाप। रुज = रोग। अलि = पंक्ति, समूह। कोक = चकवा। कोकनद = कमल।

तीर्थ-बिन्दु

अयोध्या

चौपाई

बंदउँ अवधपुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि-कलुष-नसावनि॥१॥

कवनेहु जतन अवध बस जोई। राम-परायन सो नर होई॥
अवध-प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनु-पानी॥२॥

सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा॥
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद-पुरान-बिदित जग जाना॥
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ-कोऊ॥
जनमभूमि मम पुरी सुहावन। उत्तर दिसि बह सरजू पावन॥
जा मज्जन तें बिनहि प्रयासा। मम समीप पावहिं नर बासा॥
अति प्रिय मोहि यहां के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु-बानी। धन्य अवध जो राम बखानी॥३॥

[राम-चरित-मानस]

१-सरि=नदी।

२-कवनेहु=किसी भी। परायन=तन्मय। धनु-पानी=हाथ में धनुष लेनेवाले।

३-कपीस=सुग्रीव से तात्पर्य है। लंकेस=विभीषण से तात्पर्य है। प्रयास=परिश्रम, उपाय। मम-धामदा=मेरा लोक (साकेत) देनेवाली।

दिनप्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगर बिराग बिसरावहिं॥
जातरूप-मनि-रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी॥
पुर चहुं पास कोट अति सुन्दर। रचे कँगूरा रंग रंग बर॥
नवग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई॥
महि बहुरंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन राँचा॥
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुं रबि-ससि-दुतिनिंदत॥
बहु मनि-रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह-गृह प्रति मनि-दीप बिराजहिं॥४॥

छंद

मनि-दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी बिद्रुम रची।
मनिखंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची॥
सुन्दर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार-द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रहिं खचे॥५॥

दोहा

चारु चित्रसाला सुभग गृह, प्रति लिखे बनाइ।
राम-चरित जे निरख मुनि, ते मन लेहिं चोराइ॥६॥

चौपाई

सुमन-बाटिका सबहिं लगाई। बिबिध भाँति करि जतन बनाई॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं॥
गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिविध सदा बह सुन्दर॥
नाना खग बालकन्हि जिआये। बोलत मधुर उड़ात सुहाये॥

४—जातरूप = स्वर्ण। निकर = समूह। अनीक = सेना। अमरावति = देवपुरी
राँचा = अनुरक्त हो गया।

५—भ्राजहिं = शोभित हैं। बिद्रुम = मूँगा। भीति = दीवार। अजिर = आँगन।
पुरट = स्वर्ण। बज्र = हीरा। खचे = जडे हुए हैं।

७—मधुकर = भौंरा। मुखर = शब्द करनेवाला। जिआये = पाले।

मोर हंस सारस पारावत। भवनन्हि पर सोभा अति पावत॥
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥
सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जन-पालक॥
राज-दुवार सकल बिधि चारू। बीथी चौहट रुचिर बजारू॥

छंद

बाजार चारु न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइये।
जहँ भूप रमा-निवास तहँ की संपदा किमि गाइये॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे॥८॥

दोहा

उत्तर दिसि सरजू बह, निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर॥ ९ ॥

चौपाई

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि-गज-ठाटा॥
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं असनाना॥
राजघाट सब बिधि सुन्दर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर॥
तीर-तीर देवन के मंदिर। चहुँ दिसि जिन्हके उपवन सुन्दर॥
कहुँ-कहुँ सरिता-तीर उदासी। बसहिं ग्यान-रत मुनि संन्यासी॥
तीर-तीर तुलसिका सुहाई। बृन्द-बृन्द बहु मुनिन्ह लगाई॥
पुर-सोभा कछु बरनि न जाई। बाहिर नगर परम रुचिराई॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपवन बापिका तड़ागा॥१०॥

पारावत = कबूतर। सारिका = मैना। बीथी = मार्ग, गली।

८-गथ = मूल्य। रमा-निवास = लक्ष्मी-पति। जरठ = वृद्ध।

१०-फराक = अंतर से, पृथक्। ठाटा = समूह। उदासी = विरक्त। रुचिराई = सुंदरता। अखिल = सब। बापिका = बावड़ी। तड़ाग = तालाब।

छंद

बापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि-खग-रव जनु पथिक हंकारहीं॥११॥

दोहा

रमानाथ जहँ राजहीं, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक-सुख संपदादि रही अवध सब छाइ॥ १२॥

राम-धामदा पुरी सोहावनि। लोक समस्त विदित जगपावनि॥
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तन नहिं संसारा॥

[राम-चरित-मानस]

चित्रकूट

रागगौरी

देखत चित्रकूट-बन मन अति होत हुलास।
सीताराम लषन-प्रिय, तापस-वृन्द-निवास॥
सरित सोहावनि पावनि पाप-हरनि पय नाम।
सिद्धि-साधु-सुर-सेवित देति सकल मन-काम॥ १॥

११–मनोहरायत = मनोहर + आयत (बड़ा, विशद)। आराम = बाग़। पिक = कोयल। रव = शब्द। हंकारहीं = बुलाते हैं।

१२–अनिमादिक = अणिमा, गरिमा, लघिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ।

१३–अवध......संसार = अयोध्या में मरने पर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता, मुक्ति होजाती है।

१–पय = पयस्विनी। सेवित = सेवा की गयी, पूजित। काम = इच्छा।

बिटप बेलि नव किसलय, कुसुमित सघन सुजाति।
कंदमूल जल-थल-रुह अगनित अनबन भाँति॥
बंजुल मंजु, बकुल-कुल सुरतरु, ताल, तमाल।
कदलि, कदंब, सुचंपक, पाटल, पनस, रसाल॥ २॥
भूरुह भूरि भरे जनु छबि अनुराग सुभाग।
बन बिलोकि लघु लागहिं बिपुल बिबुध-बन-बाग॥
जाइ न बरनि राम-बन चितवत चित हरि लेत।
ललित-लताद्रुम-संकुल मनहुँ मनोज-निकेत॥ ३॥
सरित सरनि सरसीरुह फूले नाना रंग।
गुंजत मंजु मधुपगन कूजत बिबिध बिहंग॥
लषन कहेउ, रघुनंदन! देखिय बिपिन-समाज।
मानहुँ चयन मयनपुर आयउ प्रिय रितुराज॥ ४॥
चित्रकूट पर राउर जानि अधिक अनुरागु।
सखा सहित जनु रतिपति आयउ खेलन फागु॥
झिल्लि झाँझ, झरना डफ, नवमृदंग निसान।
भेरि उपंग भृंग रव, ताल कीर कलगान॥ ५॥

२—किसलय = पत्ता। जल थल रुह = पानी के और ज़मीन के पेड़। अनबन = नाना, भिन्न-भिन्न। वकुल = मौलिश्री का वृक्ष। पाटल = पाड़र का पेड़। पनस = कटहल। रसाल = आम।

३—भूरुह = पेड़। भूरि = बहुत। बिबुध-बन = नन्दनवन। संकुल = पूर्ण, भरा हुआ। निकेत = घर।

४—सरसीरुह = कमल। मयनपुर = कामदेव का लोक। रितुराज = काम का सखा वसंत।

५—झिल्ली = झींगुर। डफ = एक बाजा जो होली के अवसर पर बजाया जाता है। उपंग = नसतरंग। भृंग = भौंरा। कीर = तोता।

हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर।
गावत मनहुँ नारि नर मुदित नगर चहुँ ओर॥
चित्र-बिचित्र बिबिध मृग डोलत डोंगर डाँग।
जनु पुर-बीथिन बिहरत छैल सँवारे स्वाँग॥ ६ ॥
नचहिं मोर, पिक गावहिं, सुर बर राग बँधान।
निलज तरुन-तरुनी जनु खेलहिं समय समान॥
भरि-भरि सुंड करिनि करि जहँ तहँ डारहिं बारि।
भरत परसपर पिचकनि मनहुँ मुदित नर-नारि॥ ७ ॥
पीठि चढ़ाइ सिसुन्ह कपि कूदत डारहिं डार।
जनु मुँह लाइ गेरु मसि भए खरनि असवार॥
लिए पराग सुमन-रस डोलत मलय-समीर।
मनहुँ अरगजा छिरकत, भरत गुलाल अबीर॥ ८ ॥
काम कौतुकी यहि बिधि प्रभु-हित कौतुक कीन्ह।
रीझि राम रति-नाथहि जग-बिजयी बर दीन्ह॥
दुखवहु मोरे दास जनि, मानेहु मोरि रजाइ।
'भलेहि नाथ' माथे धरि आयसु चलेउ बजाइ॥ ९ ॥
मुदित किरात किरातिनि रघुबर-रूप निहारि।
प्रभु-गुन गावत नाचत चले जोहारि-जोहारि॥
देहिं असीस प्रसंसहि मुनि, सुर बरषहिं फूल।
गवने भवन राखि उर मूरति मंगल-मूल॥ १० ॥

६—कपोत = एक प्रकार का कबूतर। चक्क = चकवा। डोंगर = टीला। डाँग = घना जंगल।

७—पिक = कोयल। बँधान = तालका सम। समय समान = समय के अनुसार। करिनि करि = हथिनी और हाथी। पिचक = पिचकारी।

८—गेरु = गेरू। मसि = काजल। अरगजा = केसर, चंदन, कपूर आदिसे बना हुआ एक सुगंधित द्रव्य।

९—रजाइ = आज्ञा। बजाइ = डंका पीट कर

चित्रकूट-कानन-छबि को कबि बरनै पार।
जहँ सिय-लषन-सहित नित रघुबर करहिं बिहार ॥
तुलसीदास चाँचरि मिस कहे राम-गुन-ग्राम।
गावहिं सुनहिं नारि नर पावहिं सब अभिराम ॥११॥

[गीतावली]

—:०:—

कवित्त

जहाँ बन पावनो सुहावनो विहंग मृग,
देखि अति लागत अनंद खेत-खूँट सो।
सीताराम-लखन-निवास, वास मुनिन को,
सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक-बूट सो ॥
झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनी मंजुल महेस-जटा-जूट सो।
तुलसी जो राम सों सनेह साँचो चाहिए,
तौ सेइये सनेह सों विचित्र चित्रकूट सो ॥ १२ ॥

*

मोह-बन कलि-मल-पल-पीन जानि जिय,
साधु गाय बिप्रन के भय को नेवारिहै।
दीन्हीं है रजाइ राम पाइ सो सहाइ लाल,
लषन समर्थ बीर हेरि-हेरि मारिहैं ॥

११—चाँचरि = वसंत ऋतु में गाया जाने वाला एक राग। मिस = बहाना। ग्राम = समूह। अभिराम = सुख, आनंद।

१२—खेत-खूँट = खेतका टुकड़ा। बूट = वृक्ष। झारि = झाड़कर, गिराकर। मंजुल = सुन्दर। सेइये = सेवा करनी चाहिए, बसना चाहिए।

१३—मल = पाप। पीन=मोटा। पल=मास। रजाइ=आज्ञा। हेरि-हेरि=ढूँढ़-ढूँढ़ कर।

मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहां,
बारि-धार धीर धरि सुकर सुधारिहै।
चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानों,
पातक के व्रात घोर सावज सँहारिहै ॥ १३ ॥
[कवितावली]

—:o:—

राग कान्हरा

अब चित चेति चित्रकूटहिं चलु।
कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु ॥
भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहार-थलु।
सैल-सृंग भव-भंग-हेतु लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ-दलु ॥
जहँ जनमे जग-जनक जगत-पति बिधि हरिहर परिहरि प्रपंच छलु।
सकृत प्रबेस करत जेहि आस्रम बिगत-बिषाद भए पारथ, नलु ॥
न करु बिलंब, बिचारु चारु मति, बरष पाछिले सम अगिलो पलु।
मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे, अजर अमर हर अँचइ हलाहलु ॥
राम-नाम-जप-जाग करत नित, मज्जत पय पावन पीवत जलु।
करिहैं राम भावतो मन को, सुख-साधन अनयास महाफलु ॥
कामद-मन कामता-कलपतरु, सो जुग-जुग जागत जगतीतलु।
तुलसी तोहिं बिसेष बूझिए एक प्रतीति, प्रीति, एकै बलु ॥ १४ ॥
(बिनय-पत्रिका)

—:ooo:—

कमान = धनुष। असि = ऐसी। बान = लहरों से तात्पर्य है। बारि = जल।
सुकर = स्वकर, अपने हाथ से, स्वयंही। अहेरि = शिकारी। घात = दाँव।
व्रात = समूह। सावज = निशाना, लक्ष्य, जंगली जानवर।

१४—भवभंग = संसार के आवागमन से छुटकारा। पारथ = पार्थ, पृथा के पुत्र युधिष्ठर, अर्जुन आदि। नल = दमयंती के पति महाराज नल। अँचै = पीकर।
सकृत = एक बार। कामद = सर्व इच्छाएँ पूर्ण करनेवाला। कामता = कामद गिरि। जगतीतल = पृथिवी पर, संसार में।

सीता-वट

कवित्त

मरकत-बरन परन, फल मानिक से,
लसै जटा-जूट जनु रूख-बेष हरु है।
सुखमा को ढेरु कैधौं सुकृत-सुमेरु, कैधौं
संपदा सकल मुद मंगल को घरु है॥
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइए,
प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है।
सुरसरि निकट सोहावनी अवनि सोहै,
राम-रमनी को बट कलि-काम-तरु है॥ १॥

*

देव-धुनी पास मुनि-बास श्रीनिवास जहाँ,
प्राकृत हूं बट-बूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ,
रागिन पै सीठि डीठि बाहिरी निहारि हैं॥
'आयसु', 'आदेस', 'बाबा' 'भलो भलो', 'भाव सिद्ध,'
तुलसी बिचारि जोगी कहत पुकारि हैं।
राम-भगतन को तौ काम-तरुतें अधिक,
सिय-बट सेए करतल फल चारि हैं॥ २॥

[कवितावली]

१—मरकत=नीलम। परन=पर्ण, पत्ता। रूख=पेड़। हरु=हर, शिव। अभिमत=इच्छित। थरु=स्थल। सुरसरि=गंगा। अवनि=धरती। राम-रमना=सीताजी।

२—देवधुनी=गंगा। श्री=सीताजी। प्राकृत=साधारण। बूट=पेड़। पीठ=स्थान। पुरारि—त्रिपुर दैत्य के शत्रु, शिवजी। सीठि=फीका। आयसु...... भावसिद्ध=संत-समाज के बोल-चाल के शिष्ट शब्द। चारिफल=अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष।

प्रयाग

चौपाई

प्रात प्रातकृत करि रघुराई । तीरथराजु देखि प्रभु जाई ॥
सचिव सत्य, श्रद्धा प्रिय नारी । माधव सरिस मीत हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भँडारू । पुन्य प्रदेस देस अति चारू ॥
छेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा । सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा । कलुष-अनीक-दलन रनधीरा ॥
संगम सिंहासन सुठि सोहा । छत्र अखय-बट मुनि-मन मोहा ॥
चँवर जमुन अरु गंग-तरंगा । देखि होहिं दुख-दारिद भंगा ॥

दोहा

सेवहिं सुकृती साधु सुचि, पावहिं सब मन-काम ।
बंदी बेद-पुरान-गन, कहहिं बिमल गुन-ग्राम ॥ १ ॥

चौपाई

को कहि सकहि प्रयाग-प्रभाऊ । कलुष-पुंज-कुंजर-मृगराऊ ॥२॥

[राम-चरित-मानस]

१–प्रातकृत = नित्य नैमित्तिक कर्म, संध्योपासनादि । तीरथराज = प्रयाग । सचिव = मंत्री । माधव = प्रयागस्थ विष्णु भगवान् । गाढ़ = मजबूत । गढ़ = किला । प्रतिपच्छी = शत्रु, प्रतिद्वन्द्वी । अनीक = सेना । संगम = गंगा, यमुना और सरस्वती जहाँ मिलती हैं, वह स्थान । सुठि = सुंदर । अखय बट = अक्षय वट, जो प्रयाग में है । सुकृती = पुण्यात्मा । ग्राम = समूह ।

२–पुंज = समूह । कुंजर = हाथी ।

सवैया

देव कहैं अपनी-अपनी, अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटै अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाज भलो रे॥
सोहै सितासित को मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानों हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे॥ ३॥

[कवितावली]

—:o:—

काशी

सोरठा

मुकुति-जनम-महि जानि, ग्यानखानि अघहानि-कर।
जहँ बस संभु-भवानि, सो कासी सेइय कस न॥ १॥

[राम-चरित-मानस]

रागभैरव

सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।
समनि-सोक-संताप-पाप-रुज सकल-सुमंगल-रासी॥
मरजादा चहुँओर चरन वर सेवत सुरपुर-वासी।
तीरथ सब सुभ अंग, रोम सिव-लिंग अमित अबिनासी॥

३—अगाध = बहुत अधिक। निमजत = स्नान करता है। सितासित = सित (गंगा) + असित (यमुना)। हेरि = देखकर। हलोरे = तरंगें। सुरधेनु = कामधेनु। धौल = धवल, शुभ्र, श्वेत। कलोरे = बछड़े।

१—जन्म-महि = जन्मभूमि, उत्पत्ति-स्थान। भवानि = पार्वती। कस = क्यों।

२—देहभरि = जब तक शरीर रहे, आजीवन।

अंतर अयन अयन भल, थन फल, बच्छ बेद-बिस्वासी।
गल-कंबल बरुना बिभाति, जनु लूम लसति सरितासी॥
दंडपानि भैरव बिषान, मल रुचि खलगन भयदा सी।
लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट-घंटासी॥
मनिकर्निका-बदन-ससि सुंदर सुरसरि सुख सुषमासी।
स्वारथ-परमारथ-परिपूरन पंचकोस महिमा सी॥
बिस्वनाथ पालक कृपालु चित, लालति नित गिरिजा सी।
सिद्धसची सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमासी॥
पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपंचनदासी।
ब्रह्मजीव सम राम नाम जुग आखर बिस्व-बिकासी॥
चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन जेहि, चहत प्रपंच-उदासी॥
कहत पुरान रची केसव निजकर-करतूति-कलासी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी॥२॥

[विनय-पत्रिका]

२-अंतर अयन = अन्तर्गृही, मध्यस्थल। गलकंबल = गाय के गले में लटकती हुई खाल। बरुना = एक नदी। सरितासी = सरिता (नदी) + असी (एक नदी)। बिभाति = शोभा देती है। लूम = पूँछ। बिषान = सींग। लोल दिनेश = लोलार्क; इस नाम का एक कुंड। त्रिलोचन = काशी के एक तीर्थ का नाम। लालति = प्यार करती है। शची = इन्द्राणी। माधव = बिन्दुमाधव भगवान्। गव्य = पंचगव्य; गाय के गोबर, मूत्र, दूध, दही और घृत का संमिश्रण, जिसे पीने से पापों का प्रायश्चित्त किया जाता है। आखर = अक्षर। चारितु = चारा, घास। प्रपंच = संसार। सुपासी = सुखी।

गंगा

सवैया

ब्रह्म जो व्यापक वेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन ग्यान गुनीको।
जो करता भरता हरता सुर-साहिब, साहिब दीन दुनी को॥
सोइ भयो द्रवरूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा तुलसी जल काहे न सेवत देव-धुनी को॥ १॥

*

बारि तिहारो निहारि मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दहौंगो॥
बरु बारहि बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥२॥

[कवितावली]

राग रामकली

जय जय भगीरथ-नंदिनि, मुनि-चय-चकोर-चंदिनि,
नर-नाग-बिबुध-बंदिनि, जय जन्हु-बालिका।

१-गम = गम्य, शक्ति। गिरा = सरस्वती। दुनी = दुनिया। द्रवरूप = जलरूप। बिरंचि = ब्रह्मा। देवधुनी = गंगा।

२-बारि = जल। मुरारि = मुर दैत्य के शत्रु, विष्णु। ईस = शिव। दहौंगो = जलूँगा। बरु = भलेही। बहोरि = फिर। खोरि = दोष।

३-बिबुध = देवता। जन्हु = एक ऋषि।

विष्णु-पद-सरोजजासि, ईस-सीस पर बिभासि,
त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-छालिका ॥
बिमल बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रय-ताप-हारि,
भवँर वर, बिभंगतर तरंग-मालिका ।
पुरजन-पूजोपहार, सोभित ससि-धवल धार,
भंजनि भव-भार, भक्ति-कल्प-थालिका ॥
निज-तट-वासी बिहंग, जल-थल-चर पसु पतंग,
कीट जटिल तापस सब सरिस पालिका ।
तुलसी तव तीर-तीर सुमिरत रघुबंस-बीर,
बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका ॥ ३ ॥

*

हरति पाप त्रिविध ताप सुमिरत सुरसरित ।
बिलसति महि कल्पबेलि मुद-मनोरथ-फरित ॥
सोहति ससि-धवल धार सुधा-सलिल-भरित ।
बिमलतर तरंग लसत रघुबर के से चरित ॥
तो बिनु जगदंब गंग ! कलिजुग का करित !
घोर भव-अपार-सिंधु तुलसी कैसे तरित ? ॥ ४ ॥

[बिनय-पत्रिका]

३-पदसरोजजासि = पदसरोजजा + असि; चरणारविन्दों से उत्पन्न हुई हो । विभाति = शोभित हो रही हो । त्रिपथगासि = पाताल, भूलोक और स्वर्लोक से जानेवाली हो । छालिका = धोनेवाली, स्वच्छ करनेवाली । विभंगतर = बहुत ही चंचल । थालिका = थाल्हा, थामला ।

४—विलसति = शोभित होती है । फरित = फली हुई । करित = करता । तरित = तरता । ' करित ' और ' तरित ' अवधी प्रयोग हैं ।

यमुना

राग बिलावल

जमुना ज्यों-ज्यों लागी बाढ़न।
त्यों-त्यों सुकृत-सुभट कलिभूपहिं निदरि लगे बढ़ि काढ़न॥
ज्यों-ज्यों जल मलीन त्यों-त्यों जमगन मुख मलीन लहै आढ़ न।
तुलसिदास जगदघ-जवास ज्यों अनघ-मेघ लागे डाढ़न॥ १॥

[विनय-पत्रिका]

भरत-कूप

चौपाई

भरत अत्रि-अनुसासन पाई। जल-भाजन सब दिये चलाई॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गये जहँ कूप अगाधू॥
पावन पाथ पुन्य थल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू॥

१–सुकृत-सुभट = पुण्यरूपी योद्धा। आढ़ = आड़, अवलम्ब। जवास = जवासा, जो वर्षा में जलकर सूख जाता है। डाढ़न लागे = जलाने लगे।

२–अत्रि = एक ऋषि। अनुसासन = आज्ञा। सानुज = भाई शत्रुघ्न सहित। अगाध = गहरा। पाथ = जल। केहू = किसी को।

तब सेवकन्ह सरस थल देखा । कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा ॥
बिधिबस भयउ बिस्व-उपकारू । सुगम अगम अति धरम बिचारू॥
भरत-कूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ-जल-जोगा ॥
प्रेम सनेह निमज्जत प्रानी ।होइहहिं बिमल करम-मन-बानी॥१॥

[राम-चरित-मानस]

—:०:—

रामेश्वर

चौपाई

श्रीराम-बचन—

जो रामेश्वर-दरसन करिहहिं । ते तनु तजि हरिलोक सिधरिहहिं ॥
जो गंगा-जल आनि चढ़ाइहि । सो सायुज्य मुकुति नर पाइहि ॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि । भगति मोरि संकर तेहि देइहि ॥
ममकृत सेतु जो दरसन करिही । सो बिनुस्रम भव-सागर तरिही॥१॥

[राम-चरित-मानस]

—:०००:—

१—जोगा = योग्य । निमज्जत = स्नान करने से ।

१—आनि = लाकर । सायुज्य = चार मुक्तियों में से एक, जिस में जीव और परमात्मा का संयोग होता है । अकाम = निष्काम, इच्छारहित । कृत = बनाया हुआ ।

अध्यात्म-विन्दु

ब्रह्म-निरूपण

(निर्गुण एवं सगुण)

चौपाई

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत-प्रेम-बस सगुन सो होई ॥
जो गुन-रहित सगुन सोइ कैसे । जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥
सहज प्रकासरूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥१॥

× × × × × × ×

आदि अंत कोउ जासु न पावा । मति अनुमान निगम अस गावा॥
बिनुपद चलइ सुनइ बिनुकाना । करबिनु करम करइ बिधि नाना॥
आननरहित सकल रसभोगी । बिनुबानी बकता बड़ जोगी॥
तनबिनु परस नयनबिनु देखा । ग्रहइ घ्रानबिनु बास असेखा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥२॥

(बालकाण्ड)

× × × × × × ×

१—अगुन = निर्गुण । बुध = पंडित । अज = जन्मरहित । उपल = ओला, बर्फ का पत्थर । बिहान = प्रातःकाल, उदय ।

२—निगम = वेद । बकता = वक्ता, बोलनेवाला । परस = स्पर्श । घ्रान = नाक । असेखा = अशेष, संपूर्ण । असि = ऐसी । अलौकिक = विलक्षण ।

फूले कमल सोह सर कैसा । निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा ॥३॥

(किष्किंधा काण्ड)

× × × × × × ×

व्यापक व्याप्य अखंड-अनंता । अखिल अमोघ सक्ति भगवंता ॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता । समदरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्मल निराकार निर्मोहा । नित्य निरंजन सुख-संदोहा ॥
प्रकृति-पार प्रभु सब उर-बासी । ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥४॥

दोहा

निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन न जानहिं कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि-मन भ्रम होइ ॥ ५ ॥

× × × × × × ×

चौपाई

अकल अनीह अनाम अरूपा । अनुभवगम्य अखंड अनूपा ॥
मनगोतीत अमल अबिनासी । निरबिकार निरवधि सुखरासी ॥६॥

(उत्तरकांड)

दोहा

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत ।
बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत ॥ ७ ॥

(बैराग्य-संदीपिनी)

४–अमोघ = सफल, सत्य । अदभ्र = अपार, अनंत । गिरागोतीता = वाणी और इन्द्रियज्ञान से परे । अनवद्य = निर्दोष । संदोह = समूह । निरीह = इच्छा-रहित । विरज = राग-रहित ।

६–अकल = कला-रहित । अनीह = इच्छा-रहित । निरबधि = संपूर्णतः ।

माया-निरूपण

(माया; भ्रमवाद; माया-परिवार; मोह; विश्व-वैचित्र्य;)

माया

चौपाई

ऊमर तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥
जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥१॥

× × × × × × ×

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव-निकाया॥
गो गोचर जहँलगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु-प्रेरित नहिं निज बल ताके॥२॥

[आरण्य काण्ड]

× × × × ×

जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह मन करई॥३॥

× × × × ×

प्रभु-माया बलवंत, भवानी। जाहि न मोह कवन अस प्रानी॥४॥

१—ऊमर = गूलर। निकाय = समूह। चराचर = चर + अचर; चैतन्य और जड़।

२—अपर = दूसरा। प्रेरित = यंत्रित, अधीन।

३—बरिआई = जबरदस्ती।

४—भवानी = पार्वती से तात्पर्य है।

दोहा

सिव बिरंचि कहँ मोहइ, को है बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान॥ ५ ॥

[राम च० मा० उत्तर]

सोरठा

सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं, भजिय महामायापतिहिं ॥ ६ ॥

[दोहावली]

राग बिलावल

माधव ! असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं जबलगि करहु न दाया॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव-बिपति सतावै॥
ब्रह्म-पियूष मधुर सीतल जौपै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजलरूप बिषय कारन निसि-बासर धावै॥
जेहि के भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै।
सपने परबस परयौ जागि देखत केहिं जाइ निहोरै॥
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य, झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरि-कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं॥ ७ ॥

५—बपुरा = बेचारा, गरीब।

७—मोह-जनित = अज्ञान से उत्पन्न। भव = संसार। रस = आनन्द। कत = क्यों, कैसे। पियूष = अमृत। चिंतामनि = स्वर्ग का एक रत्न जो, कहते हैं, सर्व चिंताओं को दूर कर देता है। भ्रम = संशय, अज्ञान।

राग आसावरी

मैं तोहि अब जान्यौं संसार।

बाँधि न सकहि मोहिं हरि के बल, प्रगट कपट-आगार॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन पुनि किए बिचार।
ज्यौं कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार॥८॥

× × × × ×

[विनय-पत्रिका]

भ्रमवाद

चौपाई

जथा गगन घन-पटल निहारी। झंपेउ भानु कहहिं कुबिचारी।
चितव जो लोचन अंगुलि लाये। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाये॥

दोहा

रजत सीप महुं भास जिमि, जथा भानु-कर-वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि॥ १॥

[बालकांड]

× × ×

८—आगार = घर। कमनीय = सुंदर। कछू……विचार = ज्ञानोदय होने पर अस्तित्व तक नहीं रहता। कदली = केला। सार = गूदा।

१—झंपेउ = छिप गया। भाये = भाव, समझ। रजत = चाँदी। भानु-कर-वारि = मृगमरीचिका। मृषा = असत्य।

चौपाई

नयन-दोष जाकहँ जब होई । पीतबरन ससि कहँ कह सोई ॥
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा । सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा ॥
नौकारूढ़ चलत जग देखा । अचल मोह-बस आपुहि लेखा ॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी । कहहिं परसपर मिथ्यावादी ॥
माया-बस मतिमंद अभागी । हृदय-जवनिका बहु बिधि लागी ॥
ते सठ हठबस संसय करहीं । निज अग्यान राम पर धरहीं ॥२॥

(उत्तर कांड)

राग भैरव

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी ।
देह गेह नेह जानु जैसे घन-दामिनी ॥
सोवत सपने सहै संसृति-संताप रे ।
बूड़ो मृग-वारि, खायो जेवरी को साँप रे ॥ ३ ॥

\+ \+ \+

राग बिलावल

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि राम-भगति सुरसरिता आस करत ओस-कनकी ॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की ।

२—नयन-दोष = नेत्र-रोग । खगेस = पक्षि-राज गरुड़ । उयउ = उदय हुआ । नौकारूढ़ = नाव पर चढ़ा हुआ । जवनिका = परदा । संसय = संदेह, विकल्प-ज्ञान ।

३—जड़ = मूर्ख, अचेतन । जामिनी = रात । संसृति = संसार । खायो = काट खाया । जेवरी = रस्सी ।

४—चातक = पपीहा ।

नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की ॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की ।
टूटत अति आतुर अहार-बस छति बिसारि आनन की ॥ ४ ॥

\+ + +

राग बिलावल

हे हरि, कस न हरहु भ्रम भारी ।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जबलगि नहिं कृपा तुम्हारी ॥
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं ॥
बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस परयौ कीर की नाईं ॥
सपने ब्याधि बिबिध बाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई ।
वैद्य अनेक उपाय करहिं, जागे बिनु पीर न जाई ॥ ५ ॥

\+ + + +

हे हरि, यह भ्रम की अधिकाई ।
देखत सुनत कहत समुझत संसय संदेह न जाई ॥
जो जग मृषा, तापत्रय अनुभव होहिं कहहु केहि लेखे ।
कहि न जाइ मृग-बारि सत्य, भ्रम तें दुख होहि बिसेखे ॥
सुभग सेज सोवत सपने बारिधि बूडत भय लागै ॥
कोटिहुँ नाव न पार पाव कोउ जबलगि आपु न जागै ॥२॥

\+ + + +

(विनय-पत्रिका)

—:ooo:—

सेन = बाज पक्षी । आतुर = अधीर । छति = क्षति, हानि ।

५—मृषा = असत्य । भासै = देख पड़ता है । अविद्यमान = नाशवान्, क्षणिक । कीर = तोता । दृश्य = संसार । गिरा = वाणी । जिउ = जीव । ब्याधि = रोग ।

६—संसय = विकल्प-ज्ञान, कुछ का कुछ मान लेना । तापत्रय = दैविक, भौतिक, दैहिक दुःख । बारिधि = समुद्र । जागै = आत्मज्ञान हो ।

मायापरिवार

चौपाई

मोह न अंध कीन्ह कहु केही । को जग काम नचाव न जेही ॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बउराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥१॥

दोहा

ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुन-आगार ।
केहि कै लोभ बिडम्बना कीन्ह न यहि संसार ॥ २ ॥
श्री-मद् बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृग-लोचनि-लोचन-बिसिख, को अस लाग न जाहि ॥ ३ ॥

चौपाई

गुनकृत सन्निपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निबेही ॥
जोबन-ज्वर केहि नहिं बलकावा । ममता केहि कर जसु न नसावा।
मच्छर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक-समीर डोलावा ॥
चिंता-साँपिन को नहिं खाया । को जग जाहि न ब्यापी माया ॥
कीट—मनोरथ दारु—सरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥
सुत बित लोक ईषना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥

१—केही = किसे । बउराहा = पागल ।

२—कोविद = विद्वान । बिडम्बना = बदनामी ।

३—बक्र = टेढा, लूला—लँगड़ा । प्रभुता = ऐश्वर्य । बधिर = बहरा । लोचन-बिसिख = नेत्ररूपी बाण ।

४—गुनकृत = सत्व, रज और तमोगुण से उत्पन्न । सन्निपात = त्रिदोष । निबेही = निर्लेप । बलकावा = अनर्गल बकवाया, पागल बनाया । मच्छर = मात्सर्य । कीट = कीड़ा । दारु = लकड़ी । बित = धन । ईषना = ईषणा, लालसा ।

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरनइ पारा॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥४॥

दोहा

व्यापि रहेउ संसार महँ माया-कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाखंड॥ ५॥

(रा० च० मा० उत्तर)

—:o:—

मोह

चौपाई

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।
जनम मरन जहँ लगि जग-जालू। संपति बिपति करम अरु कालू॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरग नरक जहँ लगि व्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोहमूल परमारथ नाहीं॥ १॥

दोहा

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥ २॥

चौपाई

मोह-निसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा॥३॥

[रा० च० मा० अयोध्या]

—:o:—

५—कटक=सेना। भट=योद्धा।

१—मंदा=बुरा। मध्यम=उदासीन। मोहमूल=अज्ञान-जनित।

२—रंक=गरीब। नाकपति=इन्द्र। प्रपंच=झूठा संसार।

राग बिलावल

माधव, मोह-फाँस क्यों टूटै ?
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै ॥
घृत-पूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिम्ब दिखावै ।
ईंधन अनल लगाइ कलपसत औटत नास न पावै ॥
तरु-कोटर महँ बस बिहंग, तरु काटे मरै न जैसे ।
साधन करिय विचार-हीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥
अंतर मलिन, विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे ।
मरै न उरग अनेक जतन बलमीक बिबिध बिधि मारे ॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु विमल बिबेक न होई ।
बिनु बिबेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई ॥ ४ ॥

[विनयपत्रिका]

—:*:—

विश्व-वैचित्र्य

हरिगीतिका

अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कंध साखा पंचबीस अनेक परन सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आस्रित रहे ।
पल्लवत फूलत नव ललित संसार बिटप नमामहे ॥ १ ॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

४—अभ्यंतर ग्रन्थि = भीतर की गाँठ, भेदबुद्धि । अनल = आग । कोटर = छेद । बिचार = आत्मबोध । पखारे = धोकर । उरग = साँप । बलमीक = बाँबी, साँप का निवासस्थान । निधि = समुद्र ।

१—देखो—विनय-विन्दु-अन्तर्गत राम-विनय का छन्द ४ ।

राग बिलावल

केसव, कहि न जाइ का कहिए ?
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोए मिटै न, मरै भीति दुख, पाइय यहि तनु हेरे ॥
रविकर-नीर बसै अति दारुन मकररूप तेहि माहीं ।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ॥ २ ॥

[विनयपत्रिका]

—:०:—

अवतार-वाद

चौपाई

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद परधामा ।
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना । तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन-हित लागी । परम कृपालु प्रनत-अनुरागी ॥१

× × × ×

जब-जब होइ धरम की हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति, जाइ नहिं बरनी । सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी ॥

२—भीति=दीवार । रविकर-नीर=मृगजल, मृगतृष्णा, भ्रम से तात्पर्य है । चराचर=चर और अचर, चैतन्य और जड़ । जुगल=दोनों अर्थात् सत्य भी और असत्य भी । आपन=आत्मा ।

१—अनीह=निरीह, इच्छारहित । अज=जन्मरहित । कृत=किये । प्रनत-अनुरागी=शरण में आये हुओं पर प्रेम करनेवाला ।

२—सीदहिं=कष्ट देते हैं ।

तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन-पीरा॥२॥

दोहा

असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज स्रुति-सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस, राम-जनम कर हेतु॥ ३॥

× × × × × × ×

चौपाई

अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। चिदानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक-बस अहई। भगत-हेतु लीला तनु गहई॥ ४॥

[राम च० मा०-बाल]

× × × × × × ×

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥५॥

× × × × ×

दोहा

भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुरहित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तन, सुनत मिटहिं जगजाल॥६॥

[रा० च० मा०-अयोध्या]

३—थापहिं = प्रतिष्ठित करते हैं। स्रुति-सेतु = वेदरूपी पुल, वैदिक धर्म। बिसद = उत्तम, शुभ्र।

४—अगुन = निर्गुण। परमारथवादी = मोक्षवादी, अध्यात्मवादी। नेति = (न + इति) ऐसा नहीं; अनिर्वाच्य। चिदानंद = चैतन्य और आनंदरूप। निरुपाधि = निर्विकार।

६—भूसुर = ब्राह्मण। सुरभि = गाय। हितलागि = भलाई के लिये।

दोहा

भगतहेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर-अनुरूप ॥ ७ ॥
जथा अनेक बेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ-सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ ॥ ८ ॥

चौपाई

असि रघुपति-लीला उरगारी। दनुज-बिमोहनि जन-सुखकारी॥९॥

(रा० च० मा०—उत्तर)

सोरठा

अज अद्वैत अनाम, अलख रूप-गुन-रहित जो।
मायापति सोइ राम, दासहेतु नरतनु धरेउ ॥१०॥

[वैराग्य-संदीपिनी]

पूर्णब्रह्म राम

चौपाई

सबकर-परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यानगुन-धामू ॥ १ ॥

[रा० च० मा०—बाल]

× × × × × × ×

७—प्राकृत = साधारण। अनुरूप = समान।
९—उरगारी = सर्पों का शत्रु गरुड़। बिमोहनि = भुलावा देनेवाली।
१०—अद्वैत = एक। गुनरहित = निर्गुण ब्रह्म।
१—प्रकास्य = प्रकाशित, किसी से जिसने प्रकाश (विकास) पाया है।

राम ब्रह्म परमारथ-रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार-रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा॥२॥

[रा० च० मा०--अयोध्या]

× × × × × × ×

तात राम कहँ नर जनि मानहु। निर्गुनब्रह्म अजितअज जानहु ॥३॥

[रा० च० मा०--किष्किंधा]

सोइ सच्चिदानंदघन रामा। अज बिग्यानरूप बलधामा ॥
व्यापक व्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ सक्ति भगवंता ॥
अगुन अदभ्र गिरा-गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख-संदोहा ॥
प्रकृति-पार प्रभु सब उर-बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥४॥

[रा० च० मा०--उत्तर]

सोरठा

राम ! स्वरूप तुम्हार, बचन-अगोचर बुद्धि-पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥५॥

[दोहावली]

दंडक

जयति सच्चिद्व्यापकानंद यत् ब्रह्म-
बिग्रह-व्यक्त लीलावतारी।

२--गदभेद = भेदरहित; समदर्शी। निरूपहिं = वर्णन करते हैं।

४--अमोघ = सफल। अदभ्र = संपूर्ण। अनवद्य = अनिंद्य। संदोह = समूह। प्रकृति-पार = माया से परे। बिरज = राग-रहित।

६--सच्चिद् = (सत् + चिद्) सत्य और चैतन्य रूप। व्यापकानन्द = व्यापक + आनन्द। यद् = जो। विग्रह-व्यक्त = मूर्तिमान होकर जो प्रकट हुआ है।

विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोच बस
विमल गुणगेह नर-देह-धारी ॥
जयति कोशलाधीश कल्याण कोशल-सुता-
कुशल कैवल्य-फल-चारु-चारी।
वेद-बोधित-कर्म-धर्म-धरणी-धेनु
विप्र-सेवक साधु-मोदकारी ॥ ६ ॥

× × ×

दंडक

सर्व-सौभाग्यप्रद, सर्वतोभद्र-निधि
सर्व सर्वेस सर्वाभिरामं।
शर्व-हृदि-कंज-मकरंद-मधुकर रुचिर
रूप भूपालमनि नौमि रामं ॥
सर्व सुखधाम गुनग्राम विश्राम-पद
नाम सर्वास्पदं अति पुनीतं।
निर्मलं सांत सुबिसुद्ध बोधायतन
क्रोध-मद-हरन करुनानिकेतं ॥
अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभु-
मेकमनवद्यमजमद्वितीयं।

विकल = व्याकुल, दुखी। कोशल-सुता = कौशल्या। कुशल = मंगल। कैवल्य = मोक्ष। बेद-बोधित = वेद-विहित, वेदोक्त। मोदकारी = आनन्दवर्द्धक।

७-सर्वतो भद्रनिधि = सभी प्रकार के कल्याणों के भांडार। शर्व = शिव। हृदि = हृदय। मकरंद = पराग। नौमि = वन्दन करता हूँ। बिश्राम-पद = मोक्ष-स्थान। सर्वास्पद = सब के पात्र अर्थात् आधार। बोधायतन = ज्ञान के स्थान, ज्ञानस्वरूप। गोतीतमव्यक्त = (गो + अतीतम् + अव्यक्त) इन्द्रिय-ज्ञान से परे और अप्रकट अर्थात् निराकार। अनवद्य = अनिंद्य।

प्राकृतं प्रकट परमातमा परमहित
प्रेरकानंत बंदे तुरीयं ॥

× × × ×

सिद्धि साधक साध्य, वाच्य वाचक रूप,
मंत्र जापक जाप्य, सृष्टि सृष्टा ।
परम कारन, कंजनाभ, जलदाभतनु,
सगुन निर्गुन, सकल दृश्य-दृष्टा ॥७॥

× × × ×

दंडक

विश्व-विख्यात, विश्वेश, विश्वायतन,
विश्व-मर्याद, व्यालादगामी ।
ब्रह्मवरदेश, वागीश, व्यापक, विमल,
विपुल बलवान, निर्वानस्वामी ॥
प्रकृति महतत्व सब्दादि गुन देवता
व्योम मरुदग्नि अमलांबु उर्वी ।
बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा,
काल परमानु, चिच्छक्ति गुर्वी ॥

प्रेरक = यंत्री । तुरीय = निर्गुण ब्रह्म । साध्य = लक्ष्य । वाच्य = जिसका वर्णन किया जाय । जाप्य = जिसका जप किया जाय । सृष्टा = रचयिता । कंजनाभ = जिसकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ है, विष्णु । जलदाभ = मेघ-के समान रूपवाला ।

८—विश्वायतन = संसार भर जिस का घर है, विराट्रूप । व्यालादगामी = सर्प-भक्षक (गरुड़) पर सवार होनेवाले । वागीश = वाणी के स्वामी (अधिष्ठाता) । निर्वान = निर्वाण, मोक्ष । व्योम = आकाश । मरुदग्नि = (मरुत् + अग्नि) पवन और आग । अमलांबु = स्वच्छ जल । उर्वी = पृथिवी । चिच्छक्ति = (चित् + शक्ति) चैतन्य शक्ति । गुर्वी = बड़ी ।

सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि !
व्यक्तमव्यक्त गतभेद विष्णो ।
भुवन भवदंश, कामारि-वंदित,
पद-द्वंद्व मंदाकिनी-जनक जिष्णो ॥
आदि मध्यांत भगवंत त्वं सर्वगतमीश,
पश्यन्ति ये ब्रह्मवादी ।
यथा पटतंतु घट मृत्तिका, सर्प स्रग,
दारु-करि, कनक कटकांगदादी ॥
गंभीर गर्वघ्न गूढ़ार्थवित् गुप्त,
गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता ।
ज्ञेय ज्ञानप्रिय प्रचुर, गरिमागार,
घोर-संसार-पर पार-दाता ॥८॥

× × × ×

राग बिलावल

हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई ।
सोइ जानकी-पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई ॥ ९ ॥

× × × ×

[विनय-पत्रिका]

सर्वमेवात्र =(सर्वम् + एव + अत्र) सब ही यहाँ । व्यक्तमव्यक्त = व्यक्त (प्रकट) और अव्यक्त (अप्रकट) भवदंश = आप का अंश । कामारि = शिव । जनक = पिता, उत्पत्ति-कर्ता । जिष्णो = हे सर्वविजयी । सर्वगत = सर्वव्यापक । पश्यन्ति = देखते हैं । स्रग = माला । दारु-करि = लकडी का हाथी । कटकांगदादि = कटक (कड़ा), अंगद (बाजूबन्द) आदि । वित् = जाननेवाला । ज्ञाता = जाननेवाला । गरिमागार = बड़ाई के घर ।

विराट्‌दर्शन

चौपाई

[सती दीख कौतुक मग जाता । आगे राम सहित श्री भ्राता ॥
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा । सहित बंधु सिया सुंदर वेखा ॥]
जहँ चितवहि तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥
देखे सिव बिधि विष्णु अनेका । अमित प्रभाव एक ते एका ॥
बंदत चरन करत प्रभु-सेवा । बिबिध बेष देखे सब देवा ॥१॥

दोहा

सती विधात्री इंदिरा, देखी अमित अनूप ।
जेहि-जेहि वेष अजादि सुर, तेहि-तेहि तनु अनुरूप ॥२॥

चौपाई

देखे जहँ-तहँ रघुपति जेते । सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जे संसारा । देखे सकल अनेक प्रकारा ॥
पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेषा । रामरूप दूसर नहिं देखा ॥ ३ ॥

× × × × × × ×

[रा० च० मा०-बाल]

पद पाताल सीस अज-धामा । अपर लोक अँग-अँग बिश्रामा ॥
भृकुटि-विलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ॥
जासु प्रान अश्विनीकुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥

१–सती = दक्ष की पुत्री और शिवजी की प्रथम पत्नी । श्री = सीता जी । प्रवीन = विद्वान् ।

२–विधात्री = सरस्वती । इंदिरा = लक्ष्मी । अजादि = ब्रह्मा आदि ।

४–अजधाम = ब्रह्मलोक । दिवाकर = सूर्य । कच = बाल । अश्विनीकुमार = सूर्य-पुत्र

स्रवन दिसा दस बेद बखानी । मारुत साँस निगम निज बानी ॥
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हाँस बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अंबुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ॥
रोम-राजि अष्टादश भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो यातना । जगमय प्रभु की बहुत कलपना॥४॥

दोहा

अहंकार सिव, बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान ।
मनुज-बास चर-अचर-मय, रूप राम भगवान ॥ ५ ॥

[रा० च० मा०—लंका]

जीव-निरूपण

चौपाई

हरष बिषाद ज्ञान अज्ञाना । जीवधरम अहमिति अभिमाना॥१॥

× × × × × × ×

[रा० च० मा०—बाल]

दोहार्द्ध

माया ईस न आपु कहँ जान कहिय सो जीव ॥ २ ॥

× × × ×

[रा० च० मा०—आरण्य]

मारुत = पवन । निगम = वेद । अंबुपति = वरुण अथवा समुद्र । जीहा = जीभ । समीहा = इच्छा; संयोग । रोमराजि = रोमावली । जारा = जाल । उदधि = समुद्र । अधगो = नीचे की इंद्रिय । यातना = नरक ।

५—अज = ब्रह्मा ।

१—अहमिति = (अहम + इति) मैं ऐसा ।

चौपाई

मायाबस्य जीव सचराचर ॥ ३ ॥

× × × ×

मायाबस्य जीव अभिमानी ॥ ४ ॥

× × × ×

जौं सबके रह ज्ञान एकरस।
ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस ॥ ५ ॥

दोहार्द्ध

मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान ? ॥ ६ ॥

+ × × ×

चौपाई

ईश्वर-अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँधेउ कीर मरकट की नाईं ॥७॥

[रा० च० मा०-उत्तर]

राग सूहो

जिय जब तें हरितें बिलगान्यो। तबतें देह गेह निज जान्यो ॥
माया-बस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो ॥८॥

× × × × ×

[विनय-पत्रिका]

५-एकरस = एकसा, त्रिकालाबाधित।

६-परिछिन्न = परिमित, अलग, विभक्त। जड़ = मूर्ख, अज्ञानी।

७-कीर = तोता। मरकट = बंदर।

८-बिलगान्यौ = विलग हुआ। सरूप = स्वरूप, अपना निजरूप।

ईश्वर-जीव-भेद

चौपाई

ज्ञान अखंड एक सीतावर । मायाबस्य जीव सचराचर ॥
मायाबस्य जीव अभिमानी । ईसबस्य माया गुनखानी ॥
परबस जीव, स्वबस भगवंता । जीव अनेक, एक श्री-कंता ॥

[रा० च० मा०-उत्तर]

राग टोड़ी

ब्रह्म तू, हौं जीव, तुही ठाकुर, हौं चेरो ।
तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हितु मेरो ॥ २ ॥

[विनय-पत्रिका]

मन

राग धनाश्री

कबहूं मन विश्राम न मान्यो ।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ-तहँ इंद्रिन-तान्यो ॥
जदपि विषय सँग सहे दुसह दुख विषय-जाल-अरुझान्यो ।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिं जान्यो ॥
जनम अनेक किये नाना विधि करम-कीच चित सान्यो ।
होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो ॥
निज-हित नाथ, पिता गुरु हरिसों हरषि हृदय नहिं आन्यो ।
तुलसिदास कब तृषा जाइ, सर खनतहिं जनम सिरान्यो ॥१॥

* * * *

२–ठाकुर = स्वामी ।

१–सहज सुख = आत्मानन्द । तान्यो = खींच-तान की । विवेक = सत् और असत् का यथार्थ ज्ञान । खनतहिं = खोदते-खोदते ही । सिरान्यो = बीत गया ।

मेरो मन हरि ! हठ न तजै ।
निसिदिन नाथ! देउँ सिख बहुविधि, करत सुभाव निजै ॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै ।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै ॥
लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यों जहँ-तहँ सिर पदत्रान बजै ।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग, कबहुं न मूढ़ लजै ॥
हौं हारयौ करि जतन बिबिध बिधि अतिसय प्रबल अजै ।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥ २ ॥

*　　*　　*　　*

राग टोड़ी

दीनबंधु, सुख-सिंधु, कृपाकर, कारुनीक रघुराई ।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिविध ज्वर, करत फिरत बौराई ॥
कबहुं जोग-रत, भोग-निरत सठ, हठ बियोग-बस होई ।
कबहुं मोह-बस द्रोह करत बहु, कबहुं दया अति सोई ॥
कबहुं दीन मतिहीन रंकतर, कबहुं भूप अभिमानी ।
कबहुं मूढ़ पंडित बिडंबरत, कबहुं धरमरत ज्ञानी ॥
कबहुं देख जग धनमय रिपुमय, कबहुं नारिमय भासै ।
संसृति-सन्निपात-दारुनदुख बिनु हरिकृपा न नासै ॥

२–निजै = अपनाही; चंचलता ही । अनुभवति = अनुभव करती है । अनुकूल = प्रसन्न, अनुरक्त । सूल = कष्ट । भजै = संभोग करती है । गृहपसु = कुत्ता । पदत्रान = जूता । अजै = अजय । प्रेरक = प्रेरणा करनेवाला । बरजै = हटके ।

३–कारुनीक = करुणामय, दयालु । त्रिविध ज्वर = दैहिक, भौतिक और दैविक कष्ट । बौराई = पागलपन । बिडम्बरत = दंभ-मग्न, दांभिक । भासै = प्रतीत होता है । संसृति = संसार । सन्निपात = त्रिदोष ।

संजम जप तप नेम धरम व्रत बहु भेषज-समुदाई ।
तुलसिदास भवरोग राम-पद-प्रेम-हीन नहिं जाई ॥ ३ ॥

[विनय-पत्रिका]

मानस रोग

चौपाई

सुनहु तात अब मानस रोगा । जेहिंते दुख पावहिं सब लोगा ॥
मोह सकल व्याधिन कर मूला । तेहिते पुनि उपजइ बहु सूला ॥
काम बात, कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई । उपजइ सन्निपात सुखदाई ॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दादु, कंडु इरखाई । हरष बिषाद गरह बहुताई ॥
परसुख देखि जरनि सोइ छई । कुष्ट दुष्टता मन-कुटिलई ॥
अहंकार अति दुखद डवँरुआ । दंभ कपट मद मान नहरुआ ॥
तृष्णा उदर-बृद्धि अति भारी । त्रिविध ईषना तरुन तिजारी ॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका । कहँ लगि कहउँ कुरोग अनेका ॥
मानस रोग कछुक मैं गाये । हहिं सब के लखि बिरलेन्हि पाये ॥

[रा० च० मा०–उत्तर]

संजम = संयम । नेम = नियम । भेषज = ओषधि । भवरोग = संसाररूपी रोग; जन्म-मरण का दुःख ।

साधन-बिन्दु

साधन-धाम

चौपाई

बड़े भाग मानुष-तनु पावा। सुर-दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा॥
साधन-धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सुधारा॥१॥

दोहा

सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि-धुनि पछिताइ।
कालहि करमहि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ॥ २॥

चौपाई

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल करम सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर-देही। देत ईस बिनुहेतु सनेही॥
नरतन भव-वारिधि कहुं बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुरु दृढ़ नावा। दुरलभ साज सुलभ करि पावा ३

१–मानस = मानसिक, मन-संबंधी। मोह = अज्ञान। कंडु = खाज। गरह = ग्रह, अरिष्ट, बाधा। छई = क्षय। कुष्ट = कुष्ठ, कोढ़। डवँरुआ = घुटनों की गांठ का रोग विशेष। नहरुआ = एक रोग जो कमर में होता है। उदर-वृद्धि = पेट का बढ़ जाना। ईषना = लालसा, उत्कट वासना। हहिं = है।

२–परत्र = परलोक।

३–आकर = प्रकार; अंडज, उद्भिज, पिंडज और स्वेदज। बिनुहेतु सनेही = निष्काम प्रेमी। बेरो = बेड़ा, जहाजों का समूह। सनुमुख मरुत = अनुकूल पवन। अनुग्रह = कृपाभाव। करनधार = कर्णधार, केवट। नावा = नाव।

दोहा

जो न तरइ भवसागर नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निंदक मंदमति आतम-हन-गति जाइ ॥ ४ ॥

× × × ×

चौपाई

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा । जो तनु पाइ भजिय रघुबीरा ॥
राम-बिमुख लहि विधि सम देही । कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही ५॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

नर-तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत जेही ॥
नरक सर्ग अपवर्ग निसेनी । ग्यान-विराग भगति सुख-देनी ६

दोहा

जेहि सरीर रति राम सों, सोइ आदरैं सुजान ।
रुद्र देह तजि नेह-बस, बानर भे हनुमान ॥ ७ ॥

[दोहावली]

राम-नाम

चौपाई

बंदौं राम-नाम रघुबर को । हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥
बिधि-हरि-हर-मय वेद प्रान सो । अगुन अनूपम गुन-निधान सो ॥
महामंत्र जोइ जपत महेसू । कासी मुकुति हेतु उपदेसू ॥
महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजियन नाम-प्रभाऊ ॥
जान आदिकबि नाम-प्रतापू । भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥

४—आतमहन = आत्मघाती ।

५—कोविद = विद्वान् ।

६—अपवर्ग = मोक्ष ।

१—कृसानु = अग्नि । हिमकर = चन्द्रमा । आदिकवि = वाल्मीकि से तात्पर्य है ।

सहस नाम सम सुनि सिव-बानी। जपि जेंई पिय संग भवानी ॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय-भूषन ती को ॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को॥१॥

दोहा

बरषा रितु रघुपति-भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास ॥ २ ॥

चौपाई

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ ॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती ॥
भगति सुतिय कल करन-बिभूषन। जग-हित-हेतु बिमल बिधु पूषन ॥
जन-मन-कंज-मंजु-मधुकर से। जीह-जसोमति हरि हलधर से ॥

दोहा

एक छत्र इक मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥ ४ ॥

चौपाई

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ ईस-उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू॥
देखिअहिं रूप नाम-आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम-बिहीना ॥
रूप बिसेष नाम बिनु जाने। करतलगत न परहिं पहिचाने॥

जेंई = भोजन किया। भवानी = पार्वती। तिय-भूषण = स्त्रियों में श्रेष्ठ। ती को = स्त्री को।

२-सालि = धान्य।

३-आखर = अक्षर। दोऊ = 'रा' और 'म' यह दोनों। सँघाती = साथी, सखा। पूषन = सूर्य। जीह = जीभ। जसोमति = यशोदाजी। हलधर = बलरामजी।

५-सुसामुझि = बुद्धिमान्। साधी = निश्चित कही है। करतलगत = हथेली पर

सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे । आवत हृदय सनेह बिसेखे ॥
अगुन-सगुन बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥५॥

दोहा

राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह-देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहरउ, जौं चाहसि उँजियार ॥ ६ ॥

चौपाई

नाम जीह जपि जागहिं जोगी । बिरत बिरंचि-प्रपंच-बियोगी ॥
ब्रह्म-सुखहिं अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ । कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ॥

दोहा

सकल कामनाहीन जे, राम-भगति-रसलीन ।
नाम-सुप्रेम-पियूष-हृद, तिनहुँ किये मन मीन ॥ ८ ॥

चौपाई

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म-सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते । किय जेहि जग निजबस निज बूते॥
एक दारुगत देखिय एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥
उभय अगम जुग सुभग नाम ते । कहहुँ नाम बड़ ब्रह्म राम ते ॥९॥

रखा हुआ । सुसाखी = सुंदर साक्षी । प्रबोधक = समझानेवाले । दुभाखी = द्विभाषिया; दो भाषाएँ जाननेवाला ।

७–बिरंचि–प्रपंच–वियोगी = ब्रह्मा-कृत समस्त संसार से उदासीन । अनामय = नीरोग ।

८–पियूष-हृद = अमृत का कुंड ।

९–अगाध = गंभीर । निजबूते = अपने बल से । दारुगत = काठ के भीतर की (आग) । पावक = अग्निं ।

दोहा

निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम-प्रभाव अपार ।
कहउँ नाम बड़ राम तें, निज विचार अनुसार ॥१०॥

चौपाई

राम-भगत हित नर-तनु-धारी । सहि संकट किय साधु सुखारी ॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा । भगत होहिं मुदमंगल-बासा ॥
राम एक तापस-तिय तारी । नाम कोटि खल-कुमति सुधारी ॥
रिषि हित राम सुकेतु-सुताकी । सहित-सेन सुत कीन्ह बिबाकी ॥
सहित दोष-दुख दास दुरासा । दलइ नाम जिमि रबि निसि नासा ॥
भंजेउ राम आपु भव-चापू । भव-भय-भंजन नाम-प्रतापू ॥
दंडक-बन प्रभु कीन्ह सोहावन । जन मन अमित नाम किय पावन ॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन । नाम सकल कलि-कलुष-निकंदन ॥

दोहा

सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, बेद-बिदित गुन गाथ ॥ १२ ॥

चौपाई

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ । राखे सरन जान सब कोऊ ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे । लोक बेद बर बिरद बिराजे ॥
राम भालु-कपि-कटक बटोरा । सेतु हेतु स्रम कीन्ह न थोरा ॥

११–अनयासा = अनायास, बिना ही परिश्रम के । बासा = बास, स्थान । तापस-तिय = तपस्वी की स्त्री, गोतम ऋषि की पत्नी अहल्या । रिषिहित = ऋषि विश्वामित्र के लिये । सुकेतु-सुता = ताड़का । बिबाकी कीन्ह = निःशेष कर दिया, सर्वनाश कर डाला । भव-चापू = शिव-धनुष । निकर = समूह । निकंदन = नाशक ।

१३–सुकंठ = सुग्रीव । नेवाजे = उद्धार किये । बिरद = यश । कटक = सेना ।

नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं । करहु बिचार सुजन मन माँहीं ॥
राम सकुल रन रावन मारा । सीय सहित निज पुर पगु धारा ॥
राजा राम अवध रजधानी । गावत गुन सुर मुनि बरबानी ॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती । बिनु स्रम प्रबल मोह-दल जीती ॥
फिरत सनेह-मगन सुख अपने । नाम-प्रसाद सोच नहिं सपने ॥१३

दोहा

ब्रह्म राम तें नाम बड़, बरदायक-बर-दानि ।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जिय जानि ॥१४॥
नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान-निवास ।
जो सुमिरत भयो भाग तें, तुलसी तुलसीदास ॥१५॥

चौपाई

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका । भये नाम जपि जीव बिसोका ॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ॥
भाय कुभाय अनख आलस हूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ १६

× × × × ×

राम नाम कर अमित प्रभावा । संत पुरान उपनिषद गावा ॥
संतत जपत संभु अविनासी । सिव भगवान ज्ञान-गुन-रासी १७

× × × × ×

अपने सुख = आत्मानन्द में । प्रसाद = कृपा । वरदायक-वरदानि = वरदाताओं को भी वर देनेवाला ।

१४—सतकोटि = रामायण की अक्षर संख्या सौ करोड़ मानी जाती है; बराबर सौ करोड़ में तीन-तीन का भाग देते जाने से अन्त में दो अक्षर बचते हैं। वे दो अक्षर 'रा' और 'म' हैं ।

१५—कल्यान-निवास = मंगल का स्थान, सब का भला करनेवाला ।

१६—बिसोका = विशोक, सुखी । कुभाय = बुरा भाव । अनख = ईर्ष्या, क्रोध ।

१७—उपनिषद् = ज्ञानकांड के वैदिक ग्रन्थ, जिन में आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का निरूपण है ।

बिबसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम-अनेक-रचित अघ दहहीं ॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव-बारिधि गोपद इव तरहीं ॥
[रा० च० मा०—बाल]

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप-पुंज समुहाहीं ॥
उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भे ब्रह्म-समाना ॥१८॥

दोहा

स्वपच सबर खस जनम जड़, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन-विख्यात ॥ १९ ॥
[रा० च० मा०—अयोध्या]

चौपाई

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। स्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह तें अधिका। होउ नाथ अघ-खग-गन-बधिका॥२०

दोहा

राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन बिमल, बसहु भगत-उर-ब्योम ॥२१॥
[रा० च० मा०—अरण्य]

चौपाई

जनम-जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं ॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहिं सम गति अबिनासी॥२२॥
[रा० च० मा०-किष्किंधा]

१८—रचित = किये हुए। गोपद इव = गाय के खुर में भरे हुए जल की तरह; सहजही। समुहाहीं = सामने जाते हैं। उलटा नाम = मरा।

१९—स्वपच = चांडाल। सबर = भील। खस = एक नीच जाति। पाँवर = पामर, पापी, पतित।

२१—राका रजनी = पूर्णिमा की रात्रि। सोम = चन्द्रमा। उडुगन = तारागण। ब्योम = आकाश।

चौपाई

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥२३॥

[रा० च० मा०—सुंदर]

चौपाई

कलिजुग केवल हरिगुन-गाहा। गावत नर पावहिं भव-थाहा॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम-गुन-गाना॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम-प्रताप प्रगट कलि माहीं॥२४॥

दोहा

कृतजुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम तें पावहिं लोग॥२५॥

× × × × × × ×

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि-भजन न भव तरिअ, यह सिद्धांत अपेल॥२६॥

(रा० च० मा०—उत्तर)

बरवा

संकट-सोच-बिमोचन, मंगलगेह।
तुलसी राम नाम पर करिय सनेह॥
कलि नहिं ज्ञान, बिराग, न जोग-समाधि।
राम नाम जपु तुलसी नित निरुपाधि॥

२३—गिरा=वाणी।

२४—गाहा=गाथा, गीत। थाहा=थाह, अन्त।

२५—कृतजुग=सत्ययुग। मख=यज्ञ।

२६—बारि=पानी। सिकता=धूल। बरु=चाहे, भलेही। अपेल=अमिट, निश्चित।

२७—बिमोचन=छुड़ानेवाला। निरुपाधि=उपाधि-रहित, बाधा-रहित।

राम नाम दुइ आखर, हिय-हितु जानु।
राम लषन सम तुलसी, सिखब न आनु॥
तप, तीरथ, मख, दान, नेम, उपवास।
सब तें अधिक राम जपु तुलसीदास॥
महिमा राम नाम कै जान महेस।
देत परमपद कासी करि उपदेस॥
राम नाम पर तुलसी नेह निबाहु।
एहि तें अधिक, न एहि सम जीवनलाहु॥
दोष-दुरित-दुख-दारिद-दाहक नाम।
सकल सुमंगलदायक तुलसी राम॥
केहि गिनती महँ, गिनती जस बनघास।
राम जपत भए तुलसी तुलसीदास॥
आगम निगम पुरान कहत करि लीक।
तुलसी नाम राम कर सुमिरन नीक॥
कामधेनु हरि-नाम, कामतरु राम।
तुलसी सुलभ चारि फल सुमिरत नाम॥
तुलसी राम नाम जपु, आलस छाँडु।
राम बिमुख कलिकाल को भयो न भाँडु॥
तुलसी राम नाम सम, मित्र न आन।
जो पहुँचाव रामपुर, तनु अवसान॥
नाम भरोस, नाम बल, नाम सनेहु।
जनम-जनम रघुनंदन! तुलसिहि देहु॥

आखर = अक्षर। परमपद = मोक्ष। लाहु = लाभ। दुरित = पाप। आगम = शास्त्र। निगम = वेद। कहत करि लीक = लकीर खींच कर कहते हैं, निश्चय रूप से कहते हैं। भांडु = भांड, बहुरूपिया। अवसान = अंत।

जनम-जनम जहँ-जहँ तनु तुलसिहि देहु ।
तहँ-तहँ राम ! निबाहिब नाम-सनेहु ॥२७॥

[बरवै रामायण]

दोहा

राम नाम को अंक है, सब साधन है सून ।
अंक गये कछु हाथ नहिं, अंक रहे दसगून ॥ २८ ॥
राम नाम अवलंब बिनु, परमारथ को आस ।
बरषत बारिद-बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास ॥ २९ ॥
दंपति-रस रसना, दसन परिजन, बदन सुगेह ।
तुलसी हरहित बरन सिसु, संपति सहज सनेह ॥ ३० ॥
राम नाम कलि कामतरु, सकल-सुमंगल-कंद ।
सुमिरत करतल सिद्धि सब, पग-पग परमानंद ॥ ३१ ॥
जलथल नभ गति अमित अति, अग जग जीव अनेक ।
तुलसी तोसे दीन कहँ, राम नाम गति एक ॥ ३२ ॥
राम भरोसो, राम बल, राम नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, माँगत तुलसीदास ॥ ३३ ॥
राम नाम रति, राम गति, राम-नाम-बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, दुहुँदिसि तुलसीदास ॥ ३४ ॥

[दोहावली]

२८–सून = शून्य । गून = गुणा ।
२९- परमारथ = मोक्षानन्द । बारिद = मेघ ।
३०–परिजन = कुटुम्बी । सुगेह = सुन्दर घर । हरहित बरन = राम नाम ।
३१–कामतरु = कल्पवृक्ष । कन्द = मेघ ।
३२–अग = अचर । जग = जंगम, चर ।
३४–रति = प्रीति । दुहुँ दिसि = दोनों लोक, संसार और परलोक ।

कवित्त

बेदहू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
राम नाम ही सों रीझे सकल भलाई है।
कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई,
साधना अनेक चितई न चित लाई है॥
छाछी को ललात जेते रामनाम के प्रसाद,
खात खुनसात सोंधे दूध की मलाई है।
राम-राज सुनियत राजनीति की अवधि,
नाम राम! रावरो तौ चामकी चलाई है॥३५॥

*

बरन-धरम गयो, आश्रम निवास तज्यो,
त्रासन-चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुबासना बिनास्यो ज्ञान,
बचन बिराग बेष जगत हरो-सो है॥
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो-सो है।
काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि,
राम नाम को भरोसो ताहि को भरोसो है॥३६॥

३५-रीझे=लगन लगाने से। चितई न=नहीं देखा। न चितलाई है=न ध्यान ही दिया। ललात=ललचा रहे हैं। प्रसाद=कृपा; बदौलत। खुनसात=नाक भौं सिकोड़ते हैं, घृणा और क्रोध का भाव दिखाते हैं। अवधि=सीमा, मर्यादा। चाम की चलाई है=चमड़े तक का सिक्का चला दिया है; पापियों तक का उद्धार कर दिया है।

३६-त्रासन-चकित=भय से भौंचक्का होकर। परावनो=भगदड़। हरोसो है=ठगसा लिया है। गोरख=गोरखनाथ। निगम-नियोग=वेद की आज्ञा, वेदोक्त धर्म। छरो-सो है=छल सा लिया है। काय=काया, शरीर।

सवैया

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल, नृपाल कृपाल न, राज-समाज बड़ोई छली है॥
बर्न-बिभाग न आश्रम-धर्म, दुनी दुख-दोस-दरिद्र-दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है॥ ३७॥

*

राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबि-कोकिलहू की।
नामहिं तें गज की, गनिका की, अजामिल की चलि गै चल-चूकी॥
नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडु-बधू की।
ताको भलो अजहूँ तुलसी जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की॥ ३८॥

*

नाम अजामिल-से खल तारन, तारन बारन बारबधू को।
नाम हरे प्रहलाद-बिषाद, पिता भय सांसति सागर सूको॥
नाम सों प्रीति प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको।
राखिहैं राम सो जासु हिये तुलसी हुलसै बल आखर दू को॥ ३९॥

*

कवित्त

राम नाम मातुपितु, स्वामि समरथ हितु,
आस राम नाम की, भरोसो राम नाम को।

३७—दुनी=दुनिया। दली है=दलित अर्थात् पीड़ित कर दिया है।

३८—कवि-कोकिल=वाल्मीकि से आशय हैं। चल-चूकी=चंचलता और भूल। चलिगै=निभ गई। पति=लाज। पांडु-बधू=द्रौपदी। आखर दू=दो अक्षर 'रा' और 'म'।

३९—बारन=हाथी। बारबधू=गणिका। साँसति=भय। सूको=सूख गया। गिल्यो=निगल गया।

प्रेम राम नाम हीसों, नेम राम नाम ही को,
जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को ॥
स्वारथ सकल परमारथ को राम नाम,
राम नाम हीन तुलसी न काहू काम को।
राम की सपथ सरबस मेरे राम नाम,
कामधेनु कामतरु मोसे छीन छाम को ॥४०॥
[कवितावली]

राग भैरव

राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
राम-नाम-नव-नेह-मेह को मन, हठि होहि पपीहा ॥
सब साधन-फल कूप-सरित-सर-सागर-सलिल निरासा।
राम-नाम-रति स्वाति-सुधा-सुभ-सीकर प्रेम-पियासा ॥
गरजि-तरजि पाषान बरषि पबि प्रीति परखि जिय जानै।
अधिक-अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै ॥
राम नाम गति, राम नाम मति, राम नाम-अनुरागी।
ह्वैगए, हैं, जे होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़भागी ॥
एक अंग मग अगम गवन करि बिलमु न छिन-छिन छाहें।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहें॥४१॥

*

४०–मरम = भेद। न दाहनो न बाम कों = न तो सन्मार्ग ही का भेद जानता हूँ और न कुमार्ग ही का। कामतरु = कल्पवृक्ष। छाम = क्षाम, दुर्बल। छीन छाम = बहुत ही दुर्बल।

४१–जीहा = जीभ। हठि = ज़बरदस्ती। पपीहा = चातक। स्वाति = स्वाति नक्षत्र में बरसा हुआ जल। सीकर = बूँद। तरजि = डाँट-डपटकर। पाषान = ओला। पवि = वज्र, बिजली। परमिति = पूरी सीमा। निरुपधि = निर्विघ्न।

राम नाम जपु जिय सदा सानुराग, रे।
कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग, रे॥
राम-सुमिरन सब विधि ही को राज, रे।
राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज, रे॥
राम नाम महामनि फनि जग-जाल, रे।
मनि बिना फनि जियै ब्याकुल बिहाल, रे॥
राम-नाम कामतरु देत फल चारि, रे।
कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि, रे॥
राम नाम-प्रेम परमारथ को सार, रे।
राम नाम तुलसी को जीवन-अधार, रे॥ ४२॥

*

सुमिरु सनेह सों तू नाम राम राय को।
संबर निसंबर को, सखा असहाय को॥
भाग है अभाग हू को, गुन गुनहीन को।
गाहक गरीब को, दयालु दानि दीन को॥
कुल अकुलीन को सुन्यो है, बेद साखि है।
पाँगुरे को हाथ पाँय, आँधरे को आँखि है॥
माय बाप भूखे को, अधार निराधार को।
सेतु भवसागर को, हेतु सुखसार को॥
पतित-पावन राम नाम सों न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी-सो ऊसरो॥ ४३॥

४२–सानुराग = प्रेमसहित। जाग = याग, यज्ञ। विधि = विधान, कार्य, कर्म। निषेध = अकार्य। फनि = साँप। पुरारि = शिवजी। परमारथ = अध्यात्म, मोक्ष।

४३–संबर निसंबर को = जिसके पास मार्गव्यय नहीं है उसका मार्ग व्यय। पाँगुर = लँगड़ा। सेतु = पुल। हेतु = कारण। ऊसरो = ऊसर; वह जमीन जिसपर बोने से कुछ भी पैदा न हो।

राग बिलावल

राम राम राम राम राम राम जपत।
मंगल मुद उदित होत, कलिमल छल छपत॥
कहु केहि लहे फल रसाल बबुर बीज बपत।
हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत॥
काल करम गुन सुभाव सबके सीस तपत।
राम नाम महिमा की चरचा चले चपत॥
साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत।
कलिजुग बर बनिज बिपुल नाम-नगर खपत॥
नाम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत।
पावन किय रावन-रिपु तुलसिहु से अपत॥ ४४॥

*

राग सारंग

बिस्वास एक राम नाम को।
मानत नहिं परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बाम को॥
पढ़िबो परयो न छठी छमत, ऋगु, जजुर, अथर्वन, साम को।
व्रत तीरथ, तप सुनि सहमत, पचि मरै करै तन छाम को?
करम-जाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को।
ज्ञान, विराग, जोग, जप, तप, भय, लोभ, मोह, कोह, काम को॥
सब दिन सब लायक भयो गायक रघुनायक-गुन-ग्राम को।

४४-छपत = छिप जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। के = किसने। बपत = बोने से। जाय = व्यर्थ। गालगूल = वृथालाप, अनर्गल बातें। गपत = गप हाँकने से। चपत = दबता है। खपत = खप जाता है, बिक जाता है। अपत = अपवित्र।

४५-छठी न पर्यो = भाग्य में नहीं लिखा है। छ मत = छः शास्त्र, अर्थात् वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्व और उत्तर मीमांसा वा वेदान्त। रिग = ऋक्वेद। जजुर = यजुर्वेद। सहमत = डरता है। छाम = क्षाम, दुर्बल।

बैठे नाम-काम-तरु तर डर कौन घोर घन घाम को ॥
को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को ।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥४५॥

*

राग कल्याण

प्रिय राम-नाम तें जाहि न रामो ।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य परिनामो ॥
सकुचत समुझि नाम-महिमा मद लोभ मोह कोह कामो ।
राम-नाम-जप-निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो ॥
नाम-प्रभाव सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो ।
जो सुनि सुमिरि भाग-भाजन भइ सुकृत भील-भामो ॥
बालमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन-सामो ।
उलटे पलटे नाम-महातम गुञ्जनि जितो ललामो ॥
राम तें अधिक नाम-करतब जेहि किए नगर-गत गामो ।
भए बजाई दाहिने जो जपि तुलसिदास से बामो ॥४६॥

*

राम रावरो नाम मेरो मातु-पितु है ।
सुजन सनेही गुरु साहब सखा सुहृद
राम-नाम-प्रेम-पन अबिचल बितु है ॥

तर = तले, नीचे । परधाम = साकेतलोक ।

४६–रामो = स्वयं राम भी । परिनामो = अंत भी । कोह = क्रोध । सिला = पत्थर । जामो = जम उठा । भाग-भाजन = भाग्यवती । भील-भामो = भील की स्त्री, शबरी । सामो = सामान । जितो = जीत लिया, पा लिया । ललामो = ललाम; यहां रत्न से तात्पर्य है । नगरगत = नागर, शहर में रहनेवाला चतुर मनुष्य । गामो = ग्रामीण । बामो = बुरा ।

४७–बितु = वित्त, धन ।

सत कोटि चरित अपार दधि-निधि मथि
लियो काढ़ि बामदेव नाम-घृतु है।
नाम को भरोसो बल, चारिहू फल को फल
सुमिरिए छाँड़ि छल, भलो क्रतु है॥
स्वारथ-साधक परमारथ-दायक नाम
राम नाम सारिखो न और हितु है।
तुलसी सुभाय कही, साँचियै परैगी सही
सीतानाथ-नाम चित हू को चितु है॥ ४७॥

[विनयपत्रिका]

भक्ति

(नवधा भक्ति)

चौपाई

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥१॥

दोहा

गुरु-पद-पंकज-सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान॥२॥

चौपाई

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा॥

४७-दाधिनिधि = समुद्र। बामदेव = शिवजी। नाम-घृतु = राम-नाम रूपी घी। क्रतु = कर्म, यज्ञ। स्वारथ = व्यवहार। परमारथ = मोक्ष। सारिखो = सरीखा, समान।

३-दम = इन्द्रिय-दमन, जितेन्द्रियत्व। बिरति = वैराग्य।

सातव सम मोहिमय जग देखा । मोते संत अधिक कर लेखा ॥
आठव जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हिय हरष न दीना३॥

[रा० च० मा०—आरण्य]

प्रेमपरा भक्ति

चौपाई

जाके हृदय भगति जस प्रीती । प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहि रीती ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
रामहिं केवल प्रेम पियारा । जानि लेउ जो जाननिहारा ॥१॥

+ + + +

[रा० च० मा०—बाल]

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई । केहि छाया कबि-मति अनुसरई२॥

+ + + +

आन उपाव न देखिय देवा । मानत राम सुसेवक-सेवा ॥३॥

+ + + +

जलद जनम भरि सुरति बिसारेउ । जाचत जल पवि पाहन डारेउ ॥
चातक रटनि घटे घटि जाई । बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई ॥
कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे । तिमि प्रियतम-पद-नेम निबाहे ॥४

[रा० च० मा०—अयोध्या]

जथालाभ = जो भी मिल जाय । सब सन = सब से ।

१–समाना = एकरूप, एकरस ।

२–छाया = आधार । अनुसरई = अनुसरण करे ।

४–पबि = बिजली । पाहन = पत्थर, ओला । कनक = सोना । बान = चमक, असलियत ।

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई । सो मम भगति भगत-सुखदाई ॥
सो स्वतन्त्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥
भगति तात अनुपम सुखमूला । मिलइ जो संत होहिं अनुकूला ॥
भगति के साधन कहउँ बखानी । सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं विप्रचरन अति प्रीती । निजनिज करम-निरत स्रुतिरीती ॥
यहि कर फल पुनि विषय-बिरागा । तब मम चरन उपज अनुरागा ॥
स्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं । मम लीला-रति अति मन माहीं ॥
संत-चरन-पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु-पितु-मातु-बंधु-पति-सेवा । सब मोहि कहँ जानइ दृढ़ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाके । तात निरंतर बस मैं ताके ॥५॥

दोहा

वचन करम मन मोरि गति, भजन करहिं निहकाम ।
तिन्ह के हृदय कमल महु, करउँ सदा बिस्राम ॥६॥

(रा० च० मा०-अरण्य)

चौपाई

तत्व प्रेमकर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति-रस एतनहि माहीं ॥७॥

× × × × ×

दोहा

तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिस्राम ।
जब लगि भजत न राम कहँ, सोक-धाम तजि काम ॥ ८ ॥

(रा० च० मा०-सुन्दर)

५-अवलंब = आधार । अनुकूल = कृपालु । निरत = संलग्न । स्रवनादिक = श्रवण, अर्चन, पाद-सेवन, दास्य इत्यादि नौ प्रकार की भक्ति । क्रम = कर्म से । पुलक = रोमांच । दंभ = पाखंड । निरंतर = सदा ।

६-निहकाम = निष्काम, कामनारहित ।

चौपाई

भगति स्वतंत्र सकल-सुख-खानी । बिनु संतसंग न पावहिं प्रानी ॥
कहहु भगति-पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथालाभ संतोष सदाई ॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई । एहि आचरन-बस्य मैं भाई ॥९॥

× × × × × × ×

प्रेम-भगति-जल बिनु रघुराई । अभिअंतर मल कबहुँ न जाई ॥१०॥

× × × × × × ×

भगतिहीन गुन सब सुख कैसे । लवन बिना बहु ब्यंजन जैसे ॥११॥

× × × × × × ×

सब कर फल रघुपति-पद-प्रेमा । तेहि बिनु कोउ न पावइ षेमा॥१२॥

× × × × × × ×

भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव-संभव खेदा ॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अन्तर । सावधान सुनु सोउ बिहंगबर ॥
ज्ञान बिराग जोग बिज्ञाना । ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती । अबला अबल सहज जड़जाती॥१३॥

दोहा

पुरुष त्यागि सक नारिहिं, जो बिरक्त मतिधीर ।
न तु कामी जो बिषय-बस, बिमुख जो पद रघुबीर ॥ १४ ॥

९–प्रयास = परिश्रम, उपाय । वस्य = वशीभूत, अधीन ।

११–लवन = लवण, नमक ।

१२–षेमा = क्षेम, कुशल ।

१३–भवसंभव खेदा = संसार से उत्पन्न दुःख; जन्म-मरण की यातना । बिहंगवर = गरुड़ । हरिजान = हरियान, गरुड़ ।

सोरठा

सो मुनि ज्ञान-निधान, मृगनयनी-बिधुमुख निरखि ।
बिकल होहिं हरिजान, नारि बिस्व-माया प्रगट ॥ १५ ॥

चौपाई

इहां न पच्छपात कछु राखउँ । बेद-पुरान-सन्त-मत भाषउँ ॥
मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥
माया भगति सुनहु तुम दोऊ । नारिबर्ग जानहिं सब कोऊ ॥
पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी । माया खलु नर्त्तकी बिचारी ॥
भगतिहिं सानुकूल रघुराया । तातें तेहि डरपति अति माया ॥
राम-भगति निरुपम निरुपाधी । बसइ जासु उर सदा अबाधी ॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ॥ १६ ॥

× × × ×

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं । अनइच्छित आवइ बरिआईं ॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई । कोटि भाँति कोउ करइ उपाई ॥
तथा मोच्छ-सुख सुनु खगराई । रहि न सकइ हरिभगति बिहाई ।
अस बिचारि हरिभगत सयाने । मुकुति निरादरि भगति लोभाने ॥ १७ ॥

× × × × × × ×

राम-भगति-चिन्तामनि सुन्दर । बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ।
राम-भगति-मनि उर बस जाके । दुख लव-लेस न सपनेहु ताके ॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । राम-कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ॥

१५—बिधुमुख = चंद्रमुख । प्रगट = प्रत्यक्ष ।

१६—पन्नगारि = सर्प-शत्रु गरुड़ । वर्ग = जाति । नर्त्तकी = नटी । सानुकूल = कृपालु । अबाधी = अबाधित ।

१७—बरियाई = ज़बरदस्ती । बिहाई = छोड़कर, बिना । निरादरि = तुच्छ समझ कर ।

पावन परवत बेद पुराना । राम कथा रुचिराकर नाना ।
मरमी सज्जन सुमति-कुदारी । ज्ञान बिराग नयन उरगारी ॥
भाव-सहित खोदइ जो प्रानी । पाव भगति-मनि सब सुखखानी॥१८॥

दोहा

बिरति-चरम असि-ज्ञान मद लोभ मोह रिपु मारि ।
जय पाइय सो हरि-भगति देखु खगेस बिचारि ॥ १९ ॥

× × × ×

चौपाई

तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ज्ञान-निपुनाई ॥
नाना करम धरम ब्रत दाना । संजम दम जप तप मख नाना ॥
भूत-दया द्विज-गुरु-सेवकाई । विद्या बिनय बिबेक बड़ाई ॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी । सबकर फल हरि-भगति भवानी ॥
सो रघुनाथ-भगति स्रुति गाई । रामकृपा काहू एक पाई ॥२०॥

[रा० च० मा०-उत्तर]

बरवा

स्वारथ परमारथ हित, एक उपाय ।
सीयराम-पद तुलसी, प्रेम बढ़ाय ॥ २१ ॥

[बरवै रामायण]

दोहा

ज्यों जग बैरी मीन को, आपु-सहित, बिनु बारि ।
त्यों तुलसी रघुबीर बिनु, गति आपनी बिचारि ॥ २२ ॥

१८-रुचिराकर = सुंदर खानि । मरमी = भेद जाननेवाला । उरगारि = गरुड़ ।

१९-बिरति-चरम = वैराग्य-रूपी ढाल । असि = तलवार ।

२०-निपुनाई = निपुणता, चतुराई । भूत = प्राणी । भवानी = पार्वतीजी ।

राम-प्रेम बिन दूबरो, राम प्रेम ही पीन।
रघुबर कबहुँक करहुगे, तुलसी ज्यों जल मीन ॥ २३ ॥
तुलसी जौलौं विषय की, मुधा माधुरी मीठि।
तौलौं सुधा सहस्र सम, रामभगति सुठि सीठि ॥ २४ ॥
प्रीति रामसों नीतिपथ, चलिय राग रिस जीति।
तुलसी सन्तन के मते, इहै भगति की रीति ॥ २५ ॥
जाय कहब करतूति बिनु, जाय जोग बिनु छेम।
तुलसी जाय उपाय सब, बिना राम-पद-प्रेम ॥ २६ ॥
बड़ि प्रतीत गठि बन्ध तें, बड़ो जोग तें छेम।
बड़ो सुसेवक साइँ तें, बड़ो नेम ते प्रेम ॥ २७ ॥
का भाषा का संसकृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच ॥ २८ ॥
[दोहावली]

राग सोरठ

रघुपति-भक्ति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई ॥
जो जेहि कला-कुसल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी ॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बलतें न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै ॥

२३—पीन = पुष्ट, मोटा।
२४—मुधा = व्यर्थ, झूठी। सीठि = खट्टी, फीकी, नीरस।
२६—जाय = व्यर्थ। कहब = कथनी। उपाय = साधन।
२८—संसकृत = संस्कृत भाषा। कामरी = कंबल। कुमाच = एक प्रकार का रेशमी वस्त्र।
२९—कुशल = प्रवीण, दक्ष। सफरी = मछली। सर्करा = शक्कर, चीनी।
सिकता = बालू। सूच्छम = छोटी। पिपीलिका = चींटी। प्रयास = श्रम।

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोई हरि-पद अनुभवै परमसुख अतिसय द्वैत-वियोगी॥
सोक, मोह, भय, हरष, दिवसनिसि, देस, काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निर्मूल न जाहीं॥२६॥

[विनय-पत्रिका]

——:o:——

एकाश्रय एवं अनन्य भाव

समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक-प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

दोहा

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर-रूप-स्वामि भगवन्त॥ १॥

[रा० च० मा०—किष्किंधा]

× × × × × × ×

चौपाई

रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं। संतत सुनिय राम-गुन-ग्रामहिं॥
जासु पतित-पावन बड़ बाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजिअ मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति केहि नहिं पाई२॥

× × × × ×

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोविद कृतज्ञ संन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ज्ञानी। धर्म-निरत पंडित विज्ञानी॥
तरहिं न बिनु सेये मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥३॥

दृश्य = संसार। सोवै निद्रा तजि = तुरीयावस्था में लीन होता है। अतिशय = आत्यंतिक। द्वैत-वियोगी = अभिन्न, जीव ब्रह्मैक्यावस्था में लीन। संसय = भ्रम। निर्मूल = जड़ से।

१—अनन्य = जो एक को छोडकर किसी दूसरे को नहीं जानता।

२—संतत = सदा। ग्राम = समूह। बाना = विरद। कुटिलाई = कपटाचरण।

३—उदासी = विरक्त। कोविद = विद्वान्।

दोहा

कामहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुबंस निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥ ४ ॥

[रा० च० मा०-उत्तर]

दोहा

रामहिं डरु, करु राम सों ममता, प्रीति प्रतीति।
तुलसी निरुपधि राम को भये हारेहू जीति ॥५॥
एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम-घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ॥६॥
रामचन्द्र-मुख-चन्द्रमा चित-चकोर जब होइ।
रामराज सब काज सुभ समय सुहावन होइ ॥७॥

[दोहावली]

सवैया

जबै जमराज-रजायसु तें मोहिं लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तात न मात न स्वामि सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति-बँटैया ॥
साँसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुनै चहुँ ओर डटैया।
एक कृपालु तहाँ तुलसी दसरत्थ को नंदन बंदि-कटैया ॥८॥
जहाँ जम-जातना, घोर नदी, भट कोटि जलच्चर दंत-टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार, न बोहित नाव, न नीक खेवैया ॥
तुलसी जहँ मातु पिता न सखा, नहि कोऊ कहूँ अवलंब-देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया ॥९॥

५-निरुपधि = उपाधिरहित।

८-रजायसु = आज्ञा। भट = यमदूत से तात्पर्य है। साँसति = यातना, कष्ट।
डटैया = डाँटडपट बतलानेवाले। बंदि = बंधन, कैद।

९-जलच्चर = जलचर, मगर इत्यादि। दंत टेवैया = दाँत पैने करनेवाले।
बोहित = जहाज़।

जहाँ हित, स्वामि, न संग सखा बनिता सुत बंधु न बापु न मैया।
काय गिरा मनके जन के अपराध सबै छल छाँड़ि छमैया॥
तुलसी तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन दुःख-दमैया।
जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया॥१०॥

[कवितावली]

पद

जेहि उर बसत स्यामसुन्दर घन तेहि निर्गुन कस आवै।
तुलसिदास सो भजन बहाओ जाहि दूसरो भावै॥ ११॥

[श्रीकृष्ण-गीतावली]

राग धनाश्री

जानकीजीवन की बलि जैहौं।
चित कहै रामसीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं॥
उपजी उर प्रतीति, सपनेहुँ सुख प्रभु-पद-विमुख न पैहौं।
मन समेत या तन के बासिन इहै सिखावन दैहौं॥
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं॥
नातो नेह नाथसों करि सब नातो नेह बहैहौं।
यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं॥१२॥

१०—बनिता = स्त्री। काय = शरीर। गिरा = वाणी, वचन। छमैया = क्षमा कर देनेवाले। दमैया = दमन करनेवाला। रमैया = राम।

११—आवै = ध्यान में आसकता है। बहाओ = हटाओ।

१२—जानकीजीवन = सीतापति रामचन्द्र। रसना = जीभ। गैहौं = गाऊँगा, कहूँगा। तन के बासिन = इन्द्रियों को। नैहौं = झुकाऊँगा। छरभार = भलाई-बुराई की जवाबदेही।

राग गौरी

एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपालु ।
प्रेम-कनौड़ो राम सो नहिं दूसरो दयालु ॥

× × × ×

जाको मन जासों बँध्यो, ताको सुखदायक सोइ ।
सरल सील साहिब सदा सीतापति सरिस न कोइ ॥१३॥

× × × ×

राग कल्याण

नाहिनै नाथ अवलंब मोहि आन की ।
करम मन बचन पन सत्य, करुनानिधे !
एक गति राम, भवदीय पद-त्रान की ॥
कोह-मद-मोह-ममतायतन जानि मन,
बात नहिं जाति कहि ज्ञान-विज्ञान की ।
काम संकलप उर निरखि बहु बासनहि,
आस नहिं एकहू आँक निरबान की ॥
बेद-बोधित करम धरम बिनु, अगम अति,
जदपि जिय लालसा अमरपुर जान की ।
सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन,
द्रवहिं हठजोग दिए भोग बलि प्रान की ॥
भगति दुरलभ परम, संभु-सुक-मुनि-मधुप,
प्यास पद-कंज-मकरंद-मधु-पान की ।

१३—कनौड़ो = एहसानमंद । बँध्यो = फँसा है, लगा है ।

१४—भवदीय = आप के । पदत्रान = जूता । ममतायतन = ममता का आयतन अर्थात् स्थान । आँक = अंश । निरबान = निर्वाण, मोक्ष । बोधित = समझाये हुए । अमरपुर = स्वर्ग । मकरंद = पराग ।

पतित-पावन सुनत नाम विश्राम कृत,
भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रंथि अभिमान की ॥
नरक अधिकार मम घोर संसार-तम-कूपकहिं,
भूप ! मोहिं सक्ति आपान की ।
दास तुलसी सोउ त्रास नहिं गनत मन,
सुमिरि-गुह गीध-गज ज्ञाति हनुमान की ॥१४॥

राग कल्याण

हरि तजि और भजिए काहि ?
नाहिनै कोउ राम सो, ममता प्रनत पर जाहि ॥
कनक-कसिपु बिरंचि को जन करम मन अरु बात ।
सुतहिं दुखवत बिधि न वरज्यौ काल के घर जात ॥
संभु-सेवक जान जग, बहु बार दिये दस सीस ।
करत राम-बिरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईस ॥
और देवन की कहा कहौं स्वारथहि के मीत ।
कबहुं काहु न राखि लियो कोउ सरन गयउ सभीत ॥
को न सेवत देत संपति, लोकहू यह रीति ।
दास तुलसी दीन पर एक राम ही कर प्रीति ॥ १५ ॥
गरैगी जीह जो कहौं और को हौं ।
जानकीजीवन ! जनम-जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं ॥

विश्राम = शान्ति । ग्रन्थि = गाठ । कूपक = कुवाँ । आपान की = आप की । ज्ञाति = जाति । गुह = निषाद ।

१५–प्रनत = शरणागत । कनककसिपु = हिरण्यकशिपु । बात = वचन, वाणी । सुतहिं = पुत्र प्रह्लाद को । ईस = शिवजी । राखिलियो = शरण में लिया, अंगीकार किया ।

१६–गरैगी = गल जायगी । जीह = जीभ । ज्यायो = जिलाया हुआ, पाला-पोसा हुआ । कौर = जूठा टुकड़ा; अन्न ।

तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं।
तुम्हसों कपट करि कलप-कलप कृमि ह्वैहौं नरक घोर को हौं॥
कहा भयो जो मन मिलि कलि-कालहि कियो भौंतुवा भौंर को हौं।
तुलसिदास सीतल नित यहि बल बड़े ठिकाने ठौर को हौं॥ १६॥

[विनयपत्रिका]

—:०:—

चातक की अनन्यता

दोहा

जौं घन बरषै समय सिर, जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित-चातकहिं, तऊ तिहारी आस॥ १७॥
चातक तुलसी के मते, स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेमतृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि॥ १८॥
बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुकटूक।
तुलसी परी न चाहिए चतुर चातकहि चूक॥ १९॥
उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर॥ २०॥
मान राखिबो माँगिबो, पियसों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौं चातक-मत लेहु॥ २१॥

जोर = जोड़, बराबरी। कृमि = कीड़ा। भौंतुवा = जल का एक छोटा काला कीड़ा। सीतल = प्रसन्न, संतुष्ट।

१७—समय सिर = ठीक वक्त पर। उदास = विरक्त।

१८—स्वाति = एक नक्षत्र, जिसमें बरसा हुआ जलही, कहते हैं, पपीहा पीता है।

१९—परुष = कठोर। पाहन = ओला। पयद = मेघ।

२०—उपल = ओला। कुलिस = बज्र; बिजली।

नहिं जाचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी माँगनेहि को बारिद बिन देइ ॥ २२ ॥
डोलत बिपुल बिहंग बन, पियत पोषरिन बारि ।
सुजस धवल चातक नवल! तुही भुवन दसचारि ॥२३॥
बध्यौ बधिक पर्‍यो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच ॥२४॥
तुलसी चातक देत सिख सुतहि बार ही बार ।
तात न तरपन कीजियो बिना स्वाति-जल-धार ॥ २५ ॥

सोरठा

जियत न नाई नारि, चातक घन तजि दूसरहि ।
सुरसरिहू को बारि, मरत न माँगेउ अरध जल ॥ २६ ॥
सुन रे तुलसीदास, प्यास पपीहहि प्रेम की ।
परिहरि चारिउ मास, जो अँचवै जल स्वाति को ॥ २७ ॥

[दोहावली]

मीन की अनन्यता

दोहा

देउ आपने हाथ जल, मीनहिं माहुर घोरि ।
तुलसी जियै जो बारि बिनु, तौतु देहि कवि खोरि ॥२८॥

२२–नाई = झुका कर, नम्र होकर । बारिद = मेघ ।
२३–सुजस धवल = निष्कलंक कीर्तिवाला ।
२४–पुन्य जल = पवित्र पानी गंगा-जल । खोंच = कारिख ।
२५–तात = प्यारे । तरपन = तर्पण, जलांजलि-दान ।
२६–न नाई नारि = गरदन न झुकायी, सिर नीचा न किया ।
२७–चारिउ मास = वर्षा के चारो महीने । अँचवै = पीता हैं ।
२८–माहुर = विष । खोरि = दोष ।

मकर, उरग, दादुर, कमठ, जलजीवन जल गेह ।
तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह ॥ २६ ॥
सुलभ प्रीति प्रीतम सबै, कहत, करत सब कोइ ।
तुलसी मीन पुनीत ते, त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥ ३० ॥
[दोहावली]

ज्ञान-दीपक

चौपाई

जीव-हृदय तम मोह बिसेखी । ग्रन्थि छूटि किमि परइ न देखी ।
अस संजोग ईस जब करई । तबहुँ कदाचित सो निरबरई ॥
सात्विक श्रद्धा धेनु लवाई । जो हरि-कृपा हृदय बसि आई ॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा । जे श्रुति कह सुभ धरम-अचारा ॥
तेइ तृन हरित चरइ जब गाई । भाव बच्छ-सिसु धेनु पेन्हाई ॥
नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा । निरमल मन अहीर निजदासा ॥
परम धरममय पय दुहि भाई । अवटइ अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छिमा जुड़ावहि । धृति सम जावन देइ जमाई ॥
मुदिता मथइ बिचार-मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । बिमल बिराग सुपरम पुनीता ॥

२९—उरग = साँप । दादुर = मेंढ़क । कमठ = कछुवा ।

३१—मोहतम=अज्ञान-रूपी अँधेरा । ग्रन्थि=मायात्मक भेदबुद्धि-रूपी गाँठ । निरबरई= खुले । लवाई=जो हाल ही में ब्यानी हो । जम=संयम । पेन्हाई=थन में दूध का आना । नोइ=दूध दुहते समय गाय के पैरमें बाँधी जानेवाली रस्सी । अकाम = इच्छारहित । तोष = संतोष । जुड़ावहि=ठंडा करे । मुदिता=सदा प्रसन्न रहने की अवस्था । दम = इन्द्रिय-दमन । रजु = रस्सी । जुड़ावइ = ठंडा करे ।

दोहा

जोग-अगिन करि प्रगट तब करम सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावइ ग्यान-घृत ममता-मल जरि जाइ ॥ ३१ ॥
तब बिज्ञानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ ।
चित्त-दिया भरि धरइ दृढ़, समता-दियटि बनाइ ॥ ३२ ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहिं कपास ते काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करइ सुगाढ़ि ॥ ३३ ॥

सोरठा

एहि बिधि लेसइ दीप, तेज-रासि-बिज्ञानमय ।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब ॥३४॥

चौपाई

सोहमस्मि इतिवृत्ति अखंडा । दीप-सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम-अनुभव-सुख-सुप्रकासा । तब भवमूल भेद-भ्रमनासा ॥
प्रबल अविद्या करि परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा । उर गृह बैठि ग्रन्थि निरवारा ॥
छोरन ग्रन्थि पाव जो कोई । तौ यहि जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रन्थि जानि खगराया । बिघन अनेक करइ तब माया ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई । बुद्धिहिं लोभ दिखावइँ आई ॥
कल बल छल करि जाइ समीपा । अंचल बात बुझावहिं दीपा ॥
होइ बुद्धि जो परम सयाने । तिन्ह तन चितव न अनहित जाने ॥

३२—विसद = स्वच्छ । दियटि = दीवट ।

३३—तीनि अवस्था = जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्ति । तीनि गुन = सत्त्व, रज और तम । तूल = रुई । तुरीय = चौथी तन्मयता की अवस्था ।

३४—सलभ = पतिंगे ।

३५—सोऽहमस्मि = सः + अहम् + अस्मि; वह ब्रह्म मैं हूँ, जीवब्रह्मैक्य । इति-वृत्ति = ऐसी अवस्था । भवमूल = संसार का आदि कारण । कृतारथ = सफल प्रयत्न । बात = हवा । तिन्हतन = उनकी तरफ । अनहित = बुरा,

जौं तिहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी । तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥
इन्द्रिय-द्वार-झरोखा नाना । तहँ-तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देखहिं विषय-बयारी । ते हठ देहिं कपाट उघारी ॥
जब सो प्रभंजन उर-गृह जाई । तबहि दीप-बिज्ञान बुझाई ॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा । बुद्धि बिकल भई विषय-बतासा ॥
इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ज्ञान सुहाई । विषय-भोग पर प्रीति सदाई ॥
विषय-समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ॥

दोहा

तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति-क्लेस ।
हरि-माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस ॥ ३५ ॥
कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन बिबेक ।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥ ३६ ॥

चौपाई

ज्ञान क पंथ कृपान क धारा । परत खगेस होइ नहिं बारा ॥
जौं निरबिघन पंथ निरबहई । सो कैवल्य परमपद लहई ॥
अति दुरलभ कैवल्य परम पद । संत पुरान निगम आगम बद ॥

अनिष्ट । उपाधी = विघ्न, उपद्रव । थाना = स्थान । बयारी = हवा । हठ = ज़बरदस्ती से । देहिं उघारी = खोले देते हैं । प्रभंजन = पवन । उरगृह = हृदय-रूपी घर । दीप-बिज्ञान = ज्ञान-रूपी दीपक । बतासा = हवा । कृत = किया । को बार बहोरी = फिर कौन बालता है । संसृति = संसार । बिहगेस = गरुड़ से तात्पर्य है ।

३६–घुनाक्षर न्याय = घुन लगने से लकड़ी में अक्षर बन जाते हैं: फिर वे नष्ट हो जाते हैं । प्रत्यूह = विघ्न ।

३७–कृपान = तलवार । बारा = बचाव, रक्षा । निरबहई = निभ जाय । कैवल्य = मोक्ष । निगम आगम = वेद शास्त्र । बद = कहते हैं ।

राम भजत सोइ मुकुत गोसाईं । अनइच्छित आवइ बरिआईं ॥३७॥

[रा० च० मा०-उत्तर]

शान्ति

दोहा

रैनि को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भानु ।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञानु ॥ ३८ ॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग ।
त्याग को भूषन शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग ॥ ३९ ॥

चौपाई

अमल अदाग शांतिपद सारा । सकल कलेसन करत प्रहारा ॥
तुलसी उर धारै जो कोई । रहै अनंदसिंधु महँ सोई ॥
परमशांति-सुख रहै समाई । तहँ उतपात न भेदै आई ॥ ४० ॥

दोहा

सात दीप नव खंड लौं, तीनि लोक जग माहिं ।
तुलसी शान्ति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं ॥ ४१ ॥
महा शान्ति-जल परसिकै, शांत भये जन जोइ ।
अहं-अगिनि से नहिं दहैं, कोटि करै जो कोइ ॥ ४२ ॥

[वैराग्य-संदीपिनी]

बरिआईं = ज़बरदस्ती, आपही ।

३९–अदाग = निष्कलंक, विशुद्ध ।

४०–उतपात……आई = विघ्न आकर नहीं सताते ।

४१–दीप = द्वीप, टापू । अपर = और । अहं-अगिनि = अहंकार-रूपी आग ।

तप

चौपाई

[मातु पितहि पुनि यह मत भावा]। तप सुखप्रद दुख दोष नसावा ॥
तप-बल रचइ प्रपंच बिधाता। तप-बल बिष्णु सकल जगत्राता ॥
तप-बल संभु करहिं संहारा। तप-बल सेष धरइ महि-भारा ॥
तप-अधार सब सृष्टि भवानी। [करहि जाइ तप अस जियजानी] ॥

[रा० च० मा०—बाल]

भगवत्कृपा

दोहा

बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
रामकृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिश्राम ॥ ४४ ॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

राग धनाश्री

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीति ॥
जिन बाँधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी।
सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति बाँध्यो हठि सकत न छोरी ॥
जाकी मायाबस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो ॥
विश्वंभर श्रीपति त्रिभुवनपति बेद-बिदित यह लीख।
बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगी भीख ॥

४३—प्रपंच = संसार। त्राता = रक्षक। महि = पृथ्वी।

४४—विश्राम = शान्ति-सुख।

४५—अविछिन्न = अखंड। जसुमति = यशोदा। लीख = लीक, रेखा, मर्यादा।
द्विज = वामन अवतार से तात्पर्य है।

जाको नाम लिए छूटत भव जनम-मरन-दुखभार।
अंबरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जनम्यौ दसबार॥
जोग विराग,ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनि ज्ञानी।
बानर भालु चपल पसु पाँवर, नाथ तहाँ रति मानी॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि ससि सब आज्ञाकारी।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत-करधारी॥ ४५॥

*

ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य, झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरि कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मनमाहीं॥ ४६॥

*

करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रकतबीज जिमि बाढ़त जाहीं॥
हरनि एक अघ-असुर-जालिका। तुलसिदास प्रभु-कृपा-कालिका॥४७॥

*

जब-कब राम-कृपा दुख जाई। तुलसिदास नहिं आन उपाई॥४८॥

*

नाथ-कृपा भवसिंधु धेनु-पद सम जिय जानि सिरावौं॥ ४९॥

*

बिनु तव कृपा दयालु दास हितु मोह न छूटै माया॥ ५०॥

[विनय-पत्रिका]

भव = संसार। अंबरीष = एक परम वैष्णव राजा। पाँवर = पामर, पापी। रति = प्रीति। उग्रसेन = कंस के पिता, और श्रीकृष्ण के नाना।

४७–सुकृत = सत्कर्म, पुण्य। सिराहीं = समाप्त होते हैं, नष्ट होते हैं। रकत बीज = एक राक्षस, जिसे कालीने मारा था।

४८–आन = अन्य, दूसरा।

४९–धेनु-पद सम = गाय के खुर में भरे हुए जल के समान; अत्यन्त सुगमता से अभिप्राय है। सिरावौं = संतोष मानता हूँ, प्रसन्न होता हूँ।

पुरुष-परीक्षा-बिन्दु

संत

चौपाई

साधु-चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहि जग जसु पावा॥१॥

[रा० च० मा० —बाल]

चौपाई

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसंध कवि कोविद जोगी॥
सावधान मानद मदहीना। धीर भगति-पथ परम प्रबीना॥२॥

दोहा

गुनागार संसार-दुख-रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय जिन्ह कहुँ देह न गेह॥ ३॥

१-सरिस = समान। निरस = नीरस, सांसारिक विषय-रस से रहित, उदासीन। बिसद = शुभ्र, स्वच्छ। छिद्र = दोष।

२-षट बिकार = छः दोष, अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। अनघ = पापरहित। अकामा = कामनारहित। अकिंचन = जिसके पास पैसा-पाई कुछ न हो। बोध = ज्ञान। अनीह = इच्छा-रहित, निस्पृह। सत्यसंध = सत्यसंकल्प। मानद = दूसरों को मान देनेवाला।

३-गुनागार = गुणों का स्थान। बिगत-संदेह = संशय-रहित।

चौपाई

निजगुन स्रवन सुनत सकुचाहीं। परगुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाव सबहिंसन प्रीती॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु-गोबिंद-बिप्र-पद-प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयित्री दाया। मुदिता मम पद-प्रीति अमाया॥
बिरति बिबेक बिनय बिज्ञाना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतुरहित परहित-रत सीला॥
सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद स्रुति तेते॥
संत असंतन्ह कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥

दोहा

तातें सुर-सीसन्ह चढ़त, जग-वल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु-बदन यह दंड॥ ४॥

चौपाई

बिषय-अलंपट सील-गुनाकर। परदुख दुख, सुख सुख देखे पर॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत! प्रान सम मम ते प्रानी॥
बिगत काम मम नाम-परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥

४-मयित्री = मैत्री, मित्रता। अमाया = मायारहित। जथारथ = यथार्थ, सत्य। काऊ = कभी। हेतुरहित = बिना ही कारण के। परहित-रत = परोपकारी। सारद = शारदा, सरस्वती। तेते = उतने। कुठार = कुल्हाड़ा। परसु = फरसा, कुल्हाड़ा। मलय = चंदन। जग-वल्लभ = संसार का प्यारा। श्रीखंड = चंदन।

५-अलंपट = निर्लेप। अभूतरिपु = अजातशत्रु, जिसका कोई भी शत्रु नहीं है। अमर्ष = क्रोध। क्रम = कर्म से। नाम-परायन = नाम में रत। मुदितायन =

सीतलता सरलता मयित्री । द्विज-पद-प्रीति धरम-जनयित्री ॥
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानहु तात संत संतत फुर ॥
समदम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

दोहा

निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद-कंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुनमन्दिर सुखपुंज ॥ ५ ॥

× × × ×

चौपाई

पर-उपकार बचन मन काया । संत सहज सुभाव खगराया ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी । पर-दुख-हेतु असंत अभागी ॥
भूरज तरु सम संत कृपाला । परहित नित सह बिपति बिसाला ॥
संत-उदय संतत सुखकारी । बिस्वसुखद जिमि इंदु तमारी ॥६॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

दोहा

सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि ।
तुलसी सरलै संतजन, ताहि परी पहिचानि ॥ ७ ॥

चौपाई

अति सीतल अतिही सुखदाई । सम दम रामभजन अधिकाई ॥
जड़ जीवन को करै सचेता । जग माहीं बिचरत एहि हेता ॥८॥

प्रसन्नता का स्थान, परमप्रसन्न । मयित्री = मैत्री । जनयित्री = उत्पन्न करनेवाली । संतत = सदा । फुर = सत्य । परुष = कठोर । उभय = दोनों । अस्तुति = स्तुति, प्रशंसा ।

६—भूरज तरु = पृथ्वी से उत्पन्न धूल और वृक्ष । इन्दु = चन्द्रमा । तमारी = अंधकार का शत्रु, सूर्य ।

८—जड़ = मूर्ख, अज्ञानी । सचेता = जाग्रत, बोधित ।

दोहा

की मुख पट दीन्हें रहै, जथाअरथ भाषंत ।
तुलसी या संसार में, सो बिचारयुत संत ॥९॥
सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनै नहिं काहिं ।
तुलसी यह मत संत को, बोलै समता माहिं॥१०॥

चौपाई

अति अनन्य गति इन्द्रीजीता । जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता ॥
मृगतृष्णा सम जग जिय जानो । तुलसी ताहि संत पहिचानो॥११॥

दोहा

सो जन जगत-जहाज है, जाके राग न दोष ।
तुलसी तृष्णा त्यागिकै, गहेउ सील संतोष ॥१२॥
सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम ।
तुलसी रहिए एहि रहनि, संत जनन को काम ॥१३॥
निज संगी निजसम करत, दुर्जन मन दुख दून ।
मलयाचल हैं संत जन, तुलसी दोष-बिहून ॥१४॥
कोमल बानी संत की, स्रवै अमृतमय आइ ।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ ॥१५॥
तन करि मन करि बचन करि, काहू दूषत नाहिं।
तुलसी ऐसे संतजन, रामरूप जग माहिं ॥१६॥

९–की मुख पट दीन्हे रहै = या तो बिल्कुल ही मुँह से न बोले। जथाअरथ = यथार्थ, जैसा चाहिए वैसा ।

११–चीता = चित्त ।

१२–जगत-जहाज = संसार-सागर से जहाज के समान पार कर देनेवाला ।

१४–बिहून = रहित ।

१५–मैन = मोम, द्रवीभूत ।

अतिकोमल अरु बिमल रुचि, मानस मैं मल नाहिं।
तुलसी रत मन होइ रहै अपने साहब माहिं ॥१७॥

कंचन काँचहि सम गनै, कामिनि काठ पषान ।
तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म-समान ॥१८॥

आकिंचन, इंद्रिय-दमन, रमन राम इकतार ।
तुलसी ऐसे संतजन, बिरले या संसार ॥१९॥

अहंवाद 'मैं तैं' नहीं, दुष्टसंग नहिं कोइ ।
दुख तें दुख नहिं ऊपजै, सुख तें सुख नहिं होइ ॥२०॥

'मैं तैं' मेट्यो मोह-तम, उगो सु आतम-भानु ।
संतराज सो जानिए, तुलसी या सहिदानु ॥२१॥

[वैराग्य-संदीपिनी]

दोहा

जे जन रूखे बिषय-रस, चिकने राम-सनेह ।
तुलसी ते प्रिय रामकों, कानन बसहिं कि गेह ॥२२॥

तुलसी रामहुँ तें अधिक, राम-भक्त जिय जान ।
रिनिया राजा राम भे, धनिक भये हनुमान ॥२३॥

छिद्यो न तरुनि-कटाच्छ-सर, करेउ न कठिन सनेहु ।
तुलसी तिनकी देह को, जगत-कवच करि लेहु ॥२४॥

१७—मानस = मन । साहिब = मालिक, ईश्वर ।

१८—पषान = पाषाण, पत्थर ।

१९—आकिंचन = अकिंचन, सर्वस्वत्यागी । इकतार = एकरस ।

२१—सहिदान = पहिचान ।

२२—रूखे = विरक्त । चिकने = अनुरक्त ।

सधन सगुन सधरम सगन, सबल सुसाइँ महीप।
तुलसी जे अभिमान बिनु, ते त्रिभुवन के दीप ॥२५॥

[दोहावली]

सवैया

भौंह-कमान सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे।
कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे ॥
लोभ सबै नटके बस ह्वै कपि ज्यों जग में बहु नाच न नाचे।
नीके हैं साधु सबै तुलसी पै तेई रघुबीर के सेवक साँचे ॥ २६ ॥

[कवितावली]

सत्संग

चौपाई

बिनु सतसंग बिबेक न होई। रामकृपा-बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगति मुद-मंगल-मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई ॥१॥

[रा० च० मा०-बाल]

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होहिं अनुकूला॥२॥

[रा० च० मा०—अरण्य]

२५—सगन = गण अर्थात् सेवक-सहित। दीप = श्रेष्ठ।

२६—कमान-सँधान = धनुष का चढ़ाव। बाँचे = बच गये। गुमान-अवाँ = अहंकार रूपी आवाँ। आँचे = जले। नीके = भले।

१—परसि = छूकर। कुधातु = लोहे से तात्पर्य है, जो पारस के छू जाने से सोने में परिणत हो जाता है।

दोहा

तात स्वर्ग-अपवर्ग-सुख, धरिय तुला इक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत-संग ॥३॥

[रा० च० मा०—सुंदर]

बिनु सतसंग न हरि-कथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गये बिनु राम-पद, होहि न दृढ़ अनुराग ॥४॥

× × × × × × ×

चौपाई

सब कर फल हरि भगति सुहाई । सो बिनु संत न काहू पाई ॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा । रामभगति तेहि सुलभ बिहंगा ॥५॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

पद

बिनु सतसंग भगति नहिं होई । ते तब मिलैं द्रवै जब सोई ॥
जब द्रवै दीन-दयालु राघव साधु-संगति पाइये ।
जेहि दरस परस समागमादिक पाप-रासि नसाइये ॥
जिन्ह के मिले सुख दुख समान, अमानतादिक गुन भये ।
मद मोह लोभ बिषाद क्रोध सुबोध ते सहजहिं गये ॥
सेवत साधु द्वैत-भय भागै । श्रीरघुबीर-चरन-लय लागै ॥६॥

[विनय-पत्रिका]

३–अपवर्ग = मोक्ष । तूल = तुल्य, समान । लव = पलमात्र ।

६–द्रवै जब सोई = जब वह अर्थात् परमात्मा कृपा करता है । समागमादिक = संग आदि । सुबोध = सुंदर ज्ञान । द्वैत = भेदबुद्धि; संसार । लय = प्रेम ।

राग-द्वेष-रहित

दोहा

सोइ पंडित, सोइ पारखी, सोई संत सुजान ।
सोई सूर, सचेत[1] सो, सोई सुभट प्रमान ॥ १ ॥
सोइ ज्ञानी सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि ।
तुलसी जाके चित भई राग-द्वेष की हानि ॥ २ ॥

[वैराग्य-संदीपिनी]

सहज

दोहा

हित सों हित रति राम सों, रिपु सों बैर बिहाउ ।
उदासीन सबसों सरल, तुलसी सहज सुभाउ ॥ १ ॥
तुलसी ममता रामसों, समता सब संसार ।
राग न रोष न दोष दुख, दास भए भवपार ॥ २ ॥

[दोहावली]

सफलजीवन

चौपाई

देह धरे कर फल यह भाई । भजिय राम सब काम बिहाई ॥
सोइ गुनज्ञ सोई बड़भागी । जो रघुबीर-चरन-अनुरागी ॥ १ ॥

[रा० च० मा०-किष्किंधा]

१-सचेत = सावधान ।

१-बिहाउ = त्याग । उदासीन = निरपेक्ष ।

१-काम = इच्छा, संकल्प ।

सोइ सरबज्ञ, तज्ञ सोइ पंडित। सोई गुनगृह बिज्ञान-अखंडित ॥
दच्छ सकल लच्छनजुत सोई। जाके पद-सरोज-रति होई ॥

× × × × ×

सोइ सरबज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता। सोइ महि-मंडित पंडित दाता ॥
धरम-परायन सोइ कुल-त्राता। राम-चरन जाकर मन राता ॥
नीति-निपुन सोइ परमसयाना। श्रुति-सिद्धांत नीक तेहि जाना ॥
सो कबि कोबिद सो रनधीरा। जो छलछाँड़ि भजइ रघुबीरा ॥

दोहा

सो कुल धन्य उमा! सुनु, जगत-पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर-परायन, जेहि नर उपज बिनीत ॥ ३ ॥

[रा० च० मा०—अरण्य]

सोरठा

जीवन-मरन-सुनाम, जैसे दसरथराय को।
जियत खिलाये राम, राम-बिरह तनु परिहरेउ ॥ ४ ॥

[दोहावली]

सवैया

सिय राम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति राम-कथा, मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहिं को थलु है ॥
मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति रामसों, रामहिं को बलु है।
सब की न कहैं, तुलसी के मते इतनो जगजीवन को फलु है ॥ ५ ॥

२—तज्ञ = ब्रह्मवेत्ता। गुनगृह = सर्वगुणसंपन्न। अखंडित = पूर्ण। दच्छ = चतुर।

३—त्राता = रक्षक। राता = अनुरक्त हुआ। नीक = भली भाँति।

५—विलोचन-मीन = नेत्र-रूपी मछली। थलु = स्थल, स्थान। रति = प्रीति।

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर-जरे मद-अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़िजाते॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तो कहा तुलसी जुपै जानकीनाथ के रंग न राते॥६॥
[कवितावली]

पद

जाको हरि दृढ़करि अंग कर्यो।
सोइ सुसील पुनीत बेद-बिद, बिद्या-गुननि-भर्यो॥ ७॥

*

सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि राम ! तुम रीझे।
गनिका गीध बधिक हरिपुर गये, लै करसी प्रयाग कब सीझे ?
कबहुँ न डग्यो निगम-मग तें पग नृग जग जानि जिते दुख पाए।
गज धौं कौन दिछित जाके सुमिरत लै सुनाभ-बाहन तजि धाए॥
सुरमुनि विप्र बिहाय बड़े कुल गोकुल जनम गोपगृह लीन्हो।
बायों दियो बिभव कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर-घर कीन्हो॥
मानत भलहिं भलो भगतनि तें, कछुक रीति पारथहिं जनाई।
तुलसी सहज सनेह राम-बस और सबै जलकी चिकनाई॥ ८॥
[विनय-पत्रिका]

६–मतंग = हाथी। जंजीर-जरे = साँकड़ों से बँधे हुए। अंबु = जल। तीखे = तेज़। तुरंग = घोड़ा। गौनहुतें = गमन से भी। खरे = खड़े। राते = रँगे।
७–अंग कर्यौ = शरण में लिया, अपनाया। वेदविद = वेद जाननेवाला।
८–सुकृती = पुण्यात्मा। करसी = कंडा। लै......सीझे = प्रयाग में कब पंचाग्नि में तपे। निगम = वेद। नृग = एक राजा। दिछित = दीक्षित, गुरुमुख। सुनाभ = चक्र। बाहन = गरुड़ से तात्पर्य है। बायों दियो = किनारा खींचा। कुरुपति = दुर्योधन। पारथ = अर्जुन।

आदर्श पुरुष

चौपाई

नारि-नयन-सर जाहि न लागा। घोर क्रोध-तम-निसि जो जागा॥
लोभ-पास[१] जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
[यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ-कोई]॥६॥

[रा० च० मा०-किष्किंधा]

अधिकारी

चौपाई

गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥

[रा० च० मा०—बाल]

राम-कथा के ते अधिकारी। जिन्ह के सतसंगति अति प्यारी॥
गुरु-पद-प्रीति नीतिरत जेई। द्विज-सेवक अधिकारी तेई॥
ता कहँ यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई॥११॥

(रा० च० मा०—उत्तर)

—:*:—

भगवत्-प्रिय

चौपाई

पुनि-पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक-सम प्रिय कोउ नाहीं॥
भगति-हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय अस मम बानी॥

१—पास = फाँसी। गर = गला।

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक् गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥
कोउ सरबज्ञ धरमरत कोई। सब पर प्रीति पितहिं सम होई॥
कोउ पितु-भगत बचन-मन-करमा। सपनेहुँ जान न दूसर धरमा॥
सो सुत प्रिय पितु-प्रान-समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥
अखिल बिस्व यह मम उपजाया। सब पर मोहि बराबर दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजइ मोहि मन बच अरु काया॥

दोहा

पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोइ।
भगति-भाव भजि कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥ १॥

(रा० च० मा०—उत्तर)

सन्मित्र

चौपाई

जे न मित्र-दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र क दुख-रज मेरु समाना॥
जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते सठ हठ कत करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटइ अवगुनन्हि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई। बल-अनुमान सदा हित करई॥

१—बिपुल = बहुत। पृथक = जुदा, भिन्न। अयाना = मूर्ख। त्रिजग (१) तिर्यक्, पशु-पक्षी आदि; (२) तीनों लोक। चराचर = चैतन्य और जड़। काया = शरीर से।

१—मेरु = पर्वत। निवारि = रोककर, हटाकर। संक = शंका, संदेह। बल-अनुमान = यथाशक्ति। हित = भला।

बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥१॥
(रा० च० मा० किष्किंधा)

बिरक्त

चौपाई

जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय-बिलास-बिरागा ॥१॥
× × × ×
रमा-बिलास राम-अनुरागी। तजत बमन इव जन बड़भागी ॥२॥
[रा० च० मा०—अयोध्या]
कहिय तात सो परमबिरागी। तृन-सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥३॥
[रा० च० मा०—अरण्य]

अंगीकृत

पद

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहैं।
जेहि सुभाव बिषयनि लग्यो तेहि सहज नाथसों नेह, छाँड़ि छल, करिहैं॥
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरिहैं।
अपनोसो स्वारथ स्वामीसों चहुँबिधि चातक ज्यों एक टेकतें नहिं टरिहैं॥

१—जागा = ज्ञान प्राप्त हुआ।
२—रमा-बिलास = धन का वैभव। इव = तरह।
३—तीनि गुन = सत्व, रज और तम।
१—फिरि परिहैं = फिर जायगा, हट जायगा। चहुँ बिधि = सब प्रकार से, अनन्य होकर। चातक = पपीहा।

हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित कलिकुचाल परिहरिहै॥
प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो राम को बिस्वास प्रेम लखि आनंद उमँगि उरभरिहै॥१।

[विनयपत्रिका]

असन्त अथवा दुष्ट

चौपाई

परहित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरे हरष बिषाद बसेरे॥
हरिहर-जसु-राकेस राहुसे। पर-अकाज भट सहसबाहु से॥
जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित-घृत जिनके मन-माखी॥
तेज कृसानु, रोष महिषेसा। अघ-अवगुन-धन-धनी धनेसा॥
उदय केतु-सम हित सबही के। कुंभकरन-सम सोवत नीके॥
पर-अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम-उपल कृषीदल गरहीं॥
बन्दउँ खल जस शेष सरोषा। सहसबदन बरनइ परदोषा॥
पुनि प्रनवउँ प्रथुराज समाना। पर-अघ सुनइ सहसदस काना॥
बहुरि सक्रसम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥
बचन-बज्र जेहि सदा पियारा। सहसनयन परदोष निहारा॥१॥

× × × × × × ×

ढरिहै = बहायेगा।

१—उजरे = उजड़ जाने पर। बसेरे = बस जाने पर। राकेस = चंद्रमा। सहसबाहु = सहस्रार्जुन, जिसे परशुरामने मारा था। महिषेसा = महिषासुर दैत्य, जिसे कालीने मारा था। अकाज = अनिष्ट, हानि। उपल = पत्थर, ओला। सक्र = इन्द्र। सुरानीक = (१) सुरा (शराब) + नीक (अच्छी); (२) सुर + अनीक = देवताओं की सेना।

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाव अभंगू॥
लखि सुबेष जग-बंचक जेऊ। बेष-प्रताप पूजिअहि तेऊ॥
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥२॥

[रा० च० मा०-बाल]

सुनहु असंतन केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिअ न काऊ॥
तिन्हकर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहिं घालइ हरहाई॥
खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा परसंपति देखी॥
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-परायन। निरदय कपटी कुटिल मलायन॥
बैरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाहिं महा अहि हृदय कठोरा॥

दोहा

पर-द्रोही परदार-रत, पर-धन पर-अपवाद।
ते नर पावँर पापमय, देह धरे मनुजाद॥३॥

चौपाई

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिसनोदर-पर जमपुर-त्रास न॥
काहू कै जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥

२-बंचक=ठग। कालनेमि=एक कपटी राक्षस जिसे हनुमान्‌ने, संजीवनी लेने जाते समय, मारा था।

३-काऊ=कभी। कपिला=गाय। घालइ=मारता है। हरहाई=बाघ। मलायन=विकारों के स्थान। परदार-रत=दूसरों की स्त्रियों में अनुरक्त, परस्त्रीगामी। मनुजाद=राक्षस।

४-डासन=बिछौना। सिसनोदरपर=शिश्न (कामेन्द्रिय)+उदर (पेट) के पीछे पड़े हुए, महाकामी और महालोभी।

जब काहू के देखहिं बिपती। सुखी होहिं मानहुँ जग-नृपती ॥
स्वारथ-रत परिवार-बिरोधी। लंपट काम लोभ अतिक्रोधी ॥
मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं। आपु गये अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा। संत-संग हरि-कथा न भावा ॥
अवगुन-सिंधु मंदमति कामी। वेदबिदूषक पर-धन-स्वामी ॥
विप्रद्रोह सुरद्रोह बिसेषा। दंभ कपट जिय धरे सुबेषा ॥

दोहा

ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृन्द बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥ ४ ॥
(रा० च० मा०—उत्तर)

नीच निचाई नहिं तजै, सज्जनहू के संग।
तुलसी चंदन-बिटप बसि बिनु बिष भे न भुअंग ॥ ५ ॥
तुलसी जे कीरति चहहिं, पर की कीरति खोइ।
तिन के मुँह मसि लागिहै, मिटिहि न मरिहैं धोइ ॥ ६ ॥
[दोहावली]

दुष्ट-संग

चौपाई

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट-संग जनि देइ बिधाता ॥१॥
[रा० च० मा०-सुन्दर]

घालहिं=नष्ट करते हैं। विदूषक=निंदक। कृतजुग = सत्ययुग। वृन्द = समूह।
५-भुअंग = साँप।
६—मसि = स्याही = कलंक।

जेहि तें नीच बड़ाई पावा । सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा ॥
धूम अनल-संभव सुनु भाई । तेहि बुझाव घन पदवी पाई ॥
रज मग परी निरादर रहई । सब कर पग-प्रहार नित सहई ॥
मरुत उड़ाइ प्रथम तेहि भरई । नृप-किरीट पुनि नयनन्ह परई ॥
सुनु खगपति, अस समुझि प्रसंगा । बुध नहिं करहिं अधम कर संगा ॥
कबि-कोविद गावहिं असि नीती । खल सन कलह न भल नहिं प्रीती ॥
उदासीन नित रहिय गोसाईं । खल परिहरिय स्वान की नाईं ॥२॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

दोहा

तुलसी संगति पोच की, सुजनहिं होति मदानि ।
ज्यों हरि रूप सुताहि तें, कीन जुहारी आनि ॥ ३ ॥
बसि कुसंग चह सुजनता, ताकी आस निरास ।
तीरथ हू को नाम भो, 'गया' मगह के पास ॥ ४ ॥

[दोहावली]

२—संभव = उत्पन्न । मरुत = पवन । किरीट = मुकुट । बुध = पंडित । उदासीन = निरपेक्ष।

३—मदानि = कल्याणदायिनी । ज्यों...आनि = एक कथा है, कि एक बढ़ई ने काठ के दो हाथ जोड़कर विष्णु का रूप बनाया और एक राज-कन्या पर मुग्ध होकर उससे विवाह कर डाला। एक बार कन्या के पिता पर शत्रुओं ने चढ़ाई कर दी। उसने अपनी कन्या से अपने पति विष्णु से सहायता मांगने को कहा। अपने रूप की मर्यादा का ख़याल करके भगवान् ने सचमुच उसकी रक्षा की।

४—मगह = मगहर; एक अपवित्र स्थान, जहाँ मरने पर, कहते हैं, नरक-वास मिलता है।

विफलजीवन-लक्षण

दोहा

जरउ सो संपति, सदन, सुख, सुहृद, मातु, पितु, भाइ।
सनमुख होत जो राम-पद, करइ न सहज सहाइ ॥ १ ॥
[रा० च० मा०—अयोध्या]

तुलसी जोपै राम सों, नाहिंन सहज सनेह।
मूँड़ मुड़ायो बादिही, भाँड़ भयो तजि गेह ॥ २ ॥
हिय फाटहु, फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं, स्रवहिं, पुलकहिं नहीं, तुलसी सुमिरत राम ॥ ३ ॥
रामहिं सुमिरत, रन भिरत, देत, परत गुरु-पाय।
तुलसी जिनहिं न पुलक तनु, ते जग जीवत जाय ॥ ४ ॥

सोरठा

हृदय सो कुलिस-समान, जो न द्रवहि हरि-गुन सुनत।
कर न राम-गुन-गान, जीह सो दादुर-जीह सम ॥ ५ ॥
स्रवै न सलिल सनेहु, तुलसी सुनि रघुबीर-जस।
ते नयना जनि देहु, राम ! करहु बरु आँधरो ॥ ६ ॥
रहै न जल भरिपूरि, राम ! सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि, भरि-भरि मूठी मेलिये ॥ ७ ॥
[दोहावली]

२—बादिही = वृथाही।

३—द्रवहिं नहीं = भाव से पिघल नहीं जाते। स्रवहिं नहीं = प्रेम से आँसू नहीं बहाते। इसमें क्रमालंकार है।

४—भिरत = भिड़ते हुए, लड़ते हुए। देत = दान करते हुए। पुलक = रोमांच। जाय = वृथा।

७—मेलिये = डालनी चाहिए।

सवैया

तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़तावस ते न कहँ कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ बिषान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन, जानकीनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिन ह्वै॥ ८॥
सुरराज-सो राज-समाज, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप-सो धन भो।
पवमान-सो पावक-सो, जस सोम-सो, पूषन-सो भवभूषन भो॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो, बसहू मन भो।
सब जाय सुभाय कहै तुलसी जो न जानकीजीवन को जन भो॥९॥
राज सुरेस पचासक को, बिधि के कर को जो पटो लिखि पाये।
पूत सुपूत, पुनीत प्रिया निज सुन्दरता रति को मद नाये॥
संपति सिद्धि सबै तुलसी, मन की मनसा चितवैं चित लाये।
जानकीजीवन जाने बिना जग ऐसेउ जीव न जीव कहाये॥ १०॥

*

छप्पय

जाय सो सुभट समर्थ, पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाइ, विषय-वासना न छंडै॥
जाय धनिक बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महिं।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान, जो रत न सुकर्महिं॥

८–जड़तावस = अज्ञानवश। बिषान = सींग। मुई = मरी। गई किन च्वै = क्यों न गर्भ गिर गया।

९–समृद्धि = बढ़ती। पवमान = पवन। सोम = चन्द्रमा। पूषन = सूर्य। समीरन साधिकै = प्राणायाम करके।

१०–पटो = पट्टा। रति को मद नाये = सुंदरता में रति को भी लज्जित कर दिया। चितलाये = मन लगाकर।

११–रारि न मंडै = युद्ध न करे। जती = यति, संन्यासी।

सुत जाय मातु-पितु-भक्ति बिनु, तिय सो जाय जेहि पति न हित ।
सब जाय दासतुलसी कहै, जो न राम-पद-नेह नित ॥ ११ ॥

[कवितावली]

*

राग सोरठ

जो पै रहनि राम सों नाहीं ।
तौ नर खर-कूकर-सूकर-से जाय जियत जग माहीं ॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के ।
मनुज-देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय-पी के ॥
सूर, सुजान, सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।
बिनु हरि-भजन इँनारुन के फल, तजत नहीं करुआई ॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने ।
तुलसी, प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ॥ १२ ॥

कलि-पाखंड एवं पाखंडी

दोहा

कलिमल ग्रसे धरम सब, गुप्त भये सदग्रंथ ।
दंभिन्ह निज मत कलपिकै, प्रगट किये बहु पंथ ॥ १ ॥

पति न हित = पति प्यारा न हो ।

१२—रहनि = लगन । गरुआई = भारीपन, बड़प्पन । इँनारुन = इन्द्रायण, एक कड़ुवा फल । भूति = ऐश्वर्य । सलोने = सुंदर । अलोने = बिना नमक का ।

१—मत कलपिकै = सिद्धान्त बनाकर ।

चौपाई

मिथ्यारंभ दंभरत जोई। ता कहँ संत कहहिं सब कोई॥
सोइ सयान जो परधनहारी। जो कर दंभ सो वड़ आचारी॥
जो कह झूठ, मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥
निराचार जो स्रुति-पथ-त्यागी। कलिजुग सोइ ज्ञानी वैरागी॥
जाके नख अरु जटा विसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

दोहा

असुभ बेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं॥ २॥

सोरठा

जे अपकारीचार, तिन्ह कर गौरव मान्य बहु।
मन-क्रम-बचन लबार, ते बकता कलिकाल महँ॥ ३॥

दोहा

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि-नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ-बस, करहिं विप्र-गुरु-घात॥ ४॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह तें कछु घाटि?
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि दिखावहिं डाँटि॥ ५॥

२-मिथ्यारंभ = झूठे काम करनेवाला। दंभ = पाखंड। तापस = तपसी। भच्छाभच्छ = भक्ष्य (जो खाने योग्य) और अभक्ष्य (जो न खाने योग्य)।

३-लबार = झूठा। बकता = वक्ता, व्याख्यानदाता।

५-बादहिं = कहते हैं। घाटि = घट, कम, नीच।

चौपाई

परतिय-लंपट कपट-सयाने । मोह-द्रोह-ममता-लपटाने ॥
तेइ अभेदवादी ज्ञानी नर । देखेउँ मैं चरित्र कलिजुग कर ॥
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ।
नारि मुई गृह-संपति नासी । मूँड़ मुड़ाइ होंहिं संन्यासी ॥
ते बिप्रन्ह सन पाँव पुजावहिं । उभयलोकनिजहाथनसावहिं ॥६॥

[रा० च० मा०-उत्तर]

दोहा

बचन बेष क्यों जानिये, मन मलीन नर-नारि ।
सूपनखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख बिचारि ॥ ७ ॥
लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याय ?
कब कोढ़ी काया लही ? जग बहराइच जाइ ॥ ८ ॥
साखी सबदी दोहरा, कहि कहनी उपखान ।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद-पुरान ॥ ९ ॥
श्रुति-संमत हरि-भक्ति-पथ, संजुत-बिरति-बिबेक ।
तेहि परिहरहिं बिमोहबस, कल्पहिं पंथ अनेक ॥ १० ॥
चोर, चतुर, बटपार, नट, प्रभुप्रिय भँडुवा, भंड ।
सब-भच्छक परमारथी, कलि सुपंथ पाखंड ॥ ११ ॥

[दोहावली]

६–अभेद वादी = अद्वैतवादी, जीव और ब्रह्म को एक माननेवाले । मुई = मरी । उभय = दोनों । निज हाथ = स्वयंही ।
७–मृग = कपटमृग, मारीच से तात्पर्य है । प्रमुख = इत्यादि ।
८–बहराइच = बहराइच के गाजीमियां की दरगाह की ओर संकेत हैं, जहां हज़ारों हिन्दू और मुसल्मान यात्री जाते हैं ।
९–कहनी = कहानी । उपखान = उपाख्यान ।
१०–श्रुति-संमत = वेद-विहित ।
११–बटपार = राहगीरों को लूट लेनेवाले । भंड = भाँड ।

अनधिकारी

चौपाई

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपिन सन सुंदर नीती ॥
ममतारत सन ज्ञान-कहानी । अतिलोभी सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि-कथा । ऊसर बीज बये फल जथा ॥१॥

(रा० च० मा०-सुन्दर)

यह न कहीजै सठ हठसीलहिं । जो मन लाइ न सुन हरि-लीलहिं ॥
कहिय न लोभिहिं,क्रोधिहिं,कामिहिं । जोनभजइसचराचर-स्वामिहिं ॥
द्विज-द्रोहिहिं न सुनाइय कबहूँ । सुरपति सरिस होइ नृप तबहूँ ॥२॥

[रा० च० मा०-उत्तर]

दोहा

जुपै मूढ़ उपदेस के, होते जोग जहान ।
क्यों न सुजोधन बोधकै, आये स्याम सुजान ? ॥ ३ ॥
काम-क्रोध-मद-लोभरत, गृहासक्त दुखरूप ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ परे भवकूप ॥ ४ ॥

[दोहावली]

१-ममतारत = गृहासक्त । जथा = यथा, जैसे ।

३-जोग = योग्य, लायक । सुजोधन = दुर्योधन । बोधिकै = समझाकर ।

४-भव-कूप = संसार-रूपी कुवाँ ।

कुमित्र

चौपाई

आगे कह मृदुबचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि-गति-सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई॥
[रा० च० मा०-किष्किंधा]

—:o:—

संत-असंत-भेद

चौपाई

बन्दउँ संत-असंतन्ह-चरना। दुखप्रद उभय, बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दारुन दुख देहीं॥
उपजहिं एकसंग जल माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जगजलधि अगाधू॥१॥

दोहा

भलो भलाई पै लहहि, लहहि निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥ २॥
जड़-चेतन गुन-दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत-हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि-बिकार॥ ३॥
[रा० च० मा०-बाल]

——:o:——

१-बीच=अंतर, भेद। जलज=कमल। बिलगाहीं=अलग करते हैं। सुरा=वारुणी, शराब। जनक=पिता, उत्पत्ति-स्थान। जनक······अगाधू=वारुणी और अमृत दोनों ही समुद्र-मंथन के समय समुद्र से निकले थे।
२-गरल=विष। करतार=ब्रह्मा। पय=दूध। बारि=जल।

उद्‌बोध-बिन्दु

दोहा

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥ १ ॥

[रा० च० मा०—अयोध्या]

चौपाई

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच-रचित यह अधम सरीरा ॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा २

[रा० च० मा०—किष्किंधा]

अहंकार ममता मद त्यागू। महामोह-निसि सूतत जागू ॥ ३ ॥

[रा० च० मा०—लंका]

कबहुँक करि करुना नरदेही। देत ईस बिनुहेतु सनेही ॥
नरतनु भव-बारिधि कहुँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सद्‌गुरु दृढ़ नावा। दुरलभ साज सुलभ करि पावा ॥

दोहा

जो न तरइ भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति, आतम-हन-गति जाइ ॥ ४ ॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

१—नाकपति = स्वर्गाधीश, इन्द्र। प्रपंच = संसार। जिय जोइ = मन में समझ ले।

२—छिति = पृथिवी। पंच-रचित = पंच महाभूतों से बना हुआ। नित्य=अमर।

३—सूतत जागू = सोने से जागो।

४—बिनुहेतु = निष्काम। बेरो = बेड़ा। सनमुख = अनुकूल। करनधार = खेनेवाला। आतमहन = आत्मघाती।

दोहा

केहि मग प्रविसति, जाति केहि, कहु दर्पन में छाँह ।
तुलसी त्यों जग-जीव-गति, करी जीव के नाँह ॥ ५ ॥
तुलसी देखत, अनुभवत, सुनत न समुझत नीचु ।
चपरि चपेटे देत नित, केस गहे कर मीचु ॥ ६ ॥
जीव सोव सम सुख सयन, सपने कछु करतूति ।
जागत दीन मलीन सोइ, बिकल बिषाद बिभूति ॥ ७ ॥

[दोहावली]

सवैया

बिषया परनारि निसा-तरुनाई, सु पाइ पर्‌यौ अनुरागहि रे ।
जम के पहरू दुख रोग बियोग बिलोकतहू न बिरागहि रे ॥
ममतावस तैं सब भूलि गयौ, भयौ भोर, महाभय भागहि रे ।
जरठाइ दिसा रबि-काल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ॥ ८॥
जनम्यो जेहि जोनि अनेक क्रिया सुख लागि करी, न परै बरनी ।
जननी जनकादि हितू भये भूरि, बहोरि भई उर की जरनी ॥
तुलसी, अब राम को दास कहाइ हिये धरु चातक की धरनी ।
करि हंस को बेष बड़ो सब सों तजि दे बक बायस की करनी ॥ ९॥

५–जीव के नाहँ = परमात्मा ।

६–चपरि = चपलता से ।

८–पहरू = पाहरू, चौकीदार । जरठाई = बुढ़ापा । रवि-काल = मृत्यु-रूपी सूर्य । जड़ = मूर्ख ।

९–भूरि = बहुत । जरनी = जलन । धरनी = धारणा । चातक की धरनी धरु = पपीहे की भाँति अनन्य भाव से राम का भजन कर । बायस = कौआ ।

कवित्त

'कालिह ही तरुन तन, कालिह ही धरनि धन,
कालिह ही जितौंगो रन' कहत कुचालि है ।
'कालिह ही साधौंगो काज, कालिहही राजा समाज,'
मसक ह्वै कहै ' भार मेरे मेरु हालि है ' ॥
तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति है, घने घर घालि है ।
देखत सुनत समुझतहू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न ' कालहू को काल कालिह है ' ॥ १० ॥

[कवितावली]

राग भैरव

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी ।
देह गेह नेह जानु जैसे घन-दामिनी ॥
सोवत सपने सहै संसृति-संताप, रे ।
बूड़ो मृगबारि, खायो जेवरी को साँप, रे ॥
कहैं बेद बुध, तू तो बूझि मन माहिं रे ।
दोष दुख सपने के जागे ही पै जाहिं, रे ॥
तुलसी, जागे तें जाइ ताप तिहुँ ताय, रे ।
राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय, रे ॥ ११ ॥

१०—साधौंगो = सिद्ध करूँगा । मसक = मच्छर । कुभाँति = दुर्बुद्धि । घने = बहुत । घालना = नाश करना ।

११—जड़ = मूर्ख । जामिनी = यामिनी, रात । संसृति = संसार । मृगवारि = मृगतृष्णारूपी जल; जेठ-वैशाख के महीनों में मृगों को प्रायः धूप की किरणों में जल का भ्रम हो जाया करता है; उसे पीने को वे दौड़ते हैं, पर वहाँ क्या रखा है ? इसी 'भ्रम' को 'मृगजल' कहते हैं । जेवरी = रस्सी । ताय = ताप । तिहुँताय = दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख ।

राग बिलावल

मन मेरे ! मानहि सिख मेरी । जो निजु भगति चहै हरि केरी ॥
उर आनहि प्रभु-कृत हित जेते । सेवहि तजे अपनपो, चेते ॥
दुख-सुख अरु अपमान-बड़ाई । सब सम लेखहिं बिपति बिहाई ॥
सुनु सठ काल-ग्रसित यह देही । जनि तेहि लागि बिदूषहि केही ॥
तुलसिदास, बिनु असि मति आये । मिलहिं न राम कपट-लय लाये॥१२॥

× × × ×

राग सूहो बिलावल

देखत ही आई बिरुधाई । जो तैं सपनेहु नाहिं बुलाई ॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं । सो अब प्रगट देखु तन माहीं ॥
सो प्रगट तनु जर्जर जराबस ब्याधि सूल सतावई ।
सिर कंप इंद्रिय-सक्ति-प्रतिहत बचन काहु न भावई ॥
गृहपालहू तें अति निरादर, खान-पान न पावई ।
ऐसेहु दसा न बिराग, तहँ तृष्णा-तरंग बढ़ावई ॥ १३ ॥

× × × ×

राग गौरी

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु, भाई रे ।
नाहिं तो भव-बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई, रे ॥

१२—केरी = की । अपनपो = अहंकार । न बिदूषहि केही = किसी की निंदा न कर । कपट-लय लाये = कपट पूर्वक प्रेम करने से ।

१३—बिरुधाई = बुढ़ापा । जरा = बुढ़ापा । व्याधि = रोग । प्रतिहत = नष्ट गृहपाल = घर रखानेवाला कुत्ता ।

बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला, रे ।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोलबिनु डोला, रे ॥
विषम कहार मार-मद-माते चलहिं न पाउँ बटोरा, रे ।
मंद बिलंद अभेरा दलकत पाइय दुख झकझोरा, रे ॥
काँट कुराय लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाउँ बझाऊ, रे ।
जस-जस चलिय दूरि तस-तस निज बास न भेट लगाऊ रे ॥
मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँ कर भूला, रे ।
तुलसिदास, भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला, रे ॥१४॥

*

भैरवी

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरि-पद भजु करम-बचन अरु हीते ॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते ।
'हम-हम' करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते ।
अंतहुँ तोहिं तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते ॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़! त्यागु दुरासा जी ते ।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ विषय-भोग बहु घी ते ॥१५॥

*

१४—अटखट = अंटसंट, गड़बड़। सरल = सड़ा, जीर्ण। दिहल = दिया। खटोला = पालकी। मार = कामदेव। कहार = इन्द्रियों से अभिप्राय है। मंद-बिलंद = नीचा ऊँचा। अभेरा = धक्का। दलकन = झटका। लोटन = साँप से आशय है; इसका झाड़ी भी अर्थ है। बझाऊ = उलझन। संबल = मार्गव्यय, कलेवा।

१५—हीते = हृदय से। रीते = खाली हाथ। सहसबाहु = सहस्रार्जुन, जिसे परशुरामने मारा था। पामर = अधम। जड़ = मूर्ख।

तांबे सो पीठि मनहुँ तनु पायो ।
नीच ! मीच जानत न सीस पर, ईस निपट बिसरायो ॥
अवनि,रवनि,धन,धाम, सुहृद,सुत को न इन्हहिं अपनायो ।
काके भए, गए सँग काके, सब सनेह छल-छायो ॥
जिन्ह भूपनि जग-जीति, बाँधि जम अपनी बाहँ बसायो ।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हें, तू गिनती कब आयो ॥
देखु बिचारि सार का साँचो, कहा निगम निजु गायो ।
भजहिं न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेस मन लायो॥१६॥

राग कल्याण

जनम गयो बादिहिं बर बीति ।
परमारथ पाले न पर्यो कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥
खेलत-खात लरिकपन गो चलि, जौवन जुवनित लियो जीति ।
रोग-बियोग-सोग-स्रम-संकुल बड़ि बय बृथहि अतीति ॥
राग-रोष-इरषा-बिमोह-बस रुची न साधु-समीति ।
कहे न सुने गुन-गन रघुबर के, भई न राम-पद-प्रीति ॥
हृदय दहत पछिताय-अनल अब सुनत दुसह भवभीति ।
तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिय समुझि बिरद की रीति ॥१७॥

*

१६–तांबे सो······पायो = मानो तूने तांबे से मढ़ा हुआ शरीर पाया है–इस क्षणभंगुर शरीर को अमर मान रखा है । मीच = मौत । रवनि = रमणी, स्त्री । निजु = सिद्धान्त-रूप से । लायो = लगाया ।

१७–बादिहि = व्यर्थही । पाले न पर्यो = हाथ न लगा । अनुदिन = नित्यप्रति । सोग = शोक । संकुल = पूर्ण । पछिताय = पश्चात्ताप । भीति = भय । बिरद = बानी, यश । अतीति = बीत गयी । समीति = (समिति), सभा ।

राग कल्याण

मैं जानी हरि-पद-रति नाहीं ।
सपनेहु नहिं बिराग मन माहीं ॥
जे रघुबीर-चरन-अनुरागे
तिन्ह सब भोग रोग-सम त्यागे ॥
काम-भुअंग डसत जब जाही ।
विषय-नींब कटु लगति न ताही ॥
असमंजस अस हृदय बिचारी ।
बढ़त सोच नित-नूतन भारी ॥
जब-कब राम-कृपा दुख जाई ।
तुलसिदास नहिं आन उपाई ॥

*

राग बिलावल

राम से प्रीतम की प्रीति-रहित जीव जाय जियत ।
जेहि सुख सुख मानि लेत, सुख सो समुझि कियत ?
जहँ-जहँ जेहि जोनि जनम महि पताल बियत ।
तहँ-तहँ तू बिषय-सुखहिं चहत, लहत नियत ॥
कत बिमोह लट्यो फट्यो गगन मगन सियत ।
तुलसी प्रभु-सुजस गाय क्यों न सुधा पियत ॥ १६ ॥

१८–भुअंग = सर्प । कटु = कड़वी । असमंजस = दुविधा ।

१९–जाय = व्यर्थ । कियत = कितना । बियत = आकाश । नियत = प्रारब्ध ।

लट्यो = सनाहुआ ।

राग गौरी

सहज सनेही राम सों तैं कियो न सहज सनेह।
तातें भव-भाजन भयो, सुनु अजहुँ सिखावन एह ॥
ज्यों मुख मुकुर विलोकिए, अरु चित न रहै अनुहारि।
त्यों सेवतहुँ न आपने ये मातु पिता सुत नारि ॥
दै-दै सुमन तिल वासिकै अरु खरि परिहरि रस लेत।
स्वारथ-हित भूतल भरे मन मेचक, तनु सेत ॥
करि बीत्यो, अब करतु है, करिबे हित मीत अपार।
कबहुँ न कोउ रघुबीर-सो नेह-निबाहनिहार ॥
जासों सब नातो फुरै तासों न करी पहिचानि।
तातें कछु समुझ्यो नहीं, कहा लाभ कह हानि ॥
साँचो जान्यो झूठ को, झूठे कहँ साँचो जानि।
को न गयो, को न जातहै, को न जैहै करि हित-हानि ॥
बेद कह्यो, बुध कहत हैं, अरु हौंहुँ कहत हौं टेरि।
तुलसी प्रभु साँचो हितू, तू हिये की आँखिन हेरि ॥ २० ॥

[विनय-पत्रिका]

२०—भव-भाजन=संसार का पात्र; संसार में बार-बार आने-जाने, जन्म लेने और मरने के योग्य। मुकुर=दर्पण। अनुहारि=सूरत। खरि=खली, तेल निकाल लेने के बाद जो फोक निकलता है। मेचक=काला; कपटी, फुर=सच्चा साबित होता है। हौंहुँ=मैं भी।

व्यवहार-विन्दु

लोक-हित एवं समाज-चिन्तन

घनाक्षरी

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोचबस,
कहैं एक-एकन सों "कहाँ जाई, का करी?"
बेदहू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु!
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी॥ १॥

*

किसबी किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल नट चोर चार चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेटकी॥

१–सीद्यमान=दुखी, क्लेशित। साँकरे=संकट के समय पर। दारिद=दारिद्र्य। दुंनी=दुनिया। दुरित=पाप। हहा करी=विनती करता है।
२–किसबी=परिश्रमी। चेटकी=बाजीगर। अटत=भटकते हैं। अहन=दिन-दिन भर। अखेटकी=शिकारी।

ऊँचे-नीचे करम धरम अकरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा-बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की ॥ २ ॥

*

निपट अनेरे अघ-औगुन-बसेरे नर,
नारिऊ घनेरे, जगदंब ! चेरी-चेरे हैं।
दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु,
लोभ मोह कोह काम कलिमल घेरे हैं ॥
लोक-रीति राखी, राम साखी, बामदेव जान,
जनकी बिनति मानि मातु कही 'मेरे हैं'।
महामाई महेशानि महिमा की खानि,
मोद-मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं ॥ ३ ॥
[कवितावली]

राग बिलावल

दीन-दयालु ! दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँताप-तई है।
देव-दुआर पुकारत आरत सब की सब सुख-हानि भई है ॥
प्रभु के बचन बेद-बुध-सम्मत 'मम मूरति महिदेव-मई है'।
तिन्ह की मति रिस राग मोह मद लोभ लालची लीलि लई है ॥

पचत = मरे-मिटते हैं। बेटकी = लड़की। घनस्याम = काला बादल; रामजी से अभिप्राय है। बड़वागि = समुद्र की आग।

३–अनेरे = अन्यायी। बसेरे = स्थान। भूसुर = ब्राह्मण। साखी = साक्षी, गवाह। महेशानि = पार्वती। महामाई = जगदंबा।

४–दुरित = पाप। दुनी = दुनिया। तई = तच गई है। महिदेव = ब्राह्मण।

राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है ।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतु-वाद हठि हेरि हई है ॥
आश्रम-बरन धरम-बिरहित जग लोक-बेद-मरजाद गई है ।
प्रजा पतित पाखंड-पाप-रत, अपने-अपने रंग-रई है ।
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है ।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥
परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सकल, नहिं सिद्धि सई है ।
कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल, जामति न बई है ॥
कलि-करनी बरनिए कहाँलौं करत फिरत बिनु टहल टई है ।
तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जानै चित कहा ठई है ॥
त्यों-त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों-ज्यों सीलवस ढील दई है ।
सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है ॥
दीजै दादि देखि नातो, बलि, मही मोद मंगल-रितई है ।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवध चितवनि चितई है ॥
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि, करुना-बारि भूमि भिजई है ।
राम-राज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत-बिजई है ॥
समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब, सुकृत-सेन हारत जितई है ।
सुजन सुभाव सराहत सादर अनायास साँसति बितई है ॥

कलुष = पापपूर्ण । परमिति = परंपरा की रीति । हेतुबाद = नास्तिकवाद । हई = नष्ट की । रई = रँगी, अनुरक्त हुई । सीदत = कष्ट पाता है । खलई = दुष्टता । सई = सही, सच्ची । गोमर = कसाई । बई = बोई हुई । बिनु टहल टई = बेकाम का काम । तरजिए = डाँट दीजिए । जई = छोटा-सा फल, जिसे बतिया कहते हैं । दादि = न्याय । रितई है = खाली करदी है । साँसति = यातना, कष्ट । सुकृत = पुण्य ।

उथपे-थपन, उजार-बसावन, गई-बहोर बिरद सदई है ।
तुलसी प्रभु आरत-आरतिहर अभय-बाँह केहि-केहि न दई है ॥ ४ ॥
[विनय-पत्रिका]

दोहा

गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल ।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल ॥ ५ ॥
सुर-सदननि तीरथ, पुरिन, निपट कुचालि कुसाज ।
मनहुँ मवासे मारि कलि राजत सहित समाज ॥ ६ ॥
[दोहावली]

राजधर्म एवं राजनीति

चौपाई

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक-अधिकारी॥१॥
× × × × × × ×
सोचिय नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥२॥
× × × × × × ×
बेद-बिहित संमत सबही का । जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥३॥
× × × × × × ×

उथपे-थपन = उजड़े को बसानेवाले । गई-बहोर = गई हुई चीज को लौटा देना । बिरद = बाना । सदई = सदा ही । आरतिहर = दुःख दूर करनेवाले ।

५—महामहिपाल = बादशाह । साम, दाम, भेद, दंड = राजनीति के चार भेद ।

६—मवासे मारि = किले बाँधकर ।

३—टीका = राज्याभिषेक, राज्याधिकार ।

अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू ॥ ४ ॥

× × × ×

नीति न तजिय राज-पद पाये ॥ ५ ॥

× × × ×

सब तें कठिन राज-मद भाई ॥ ६ ॥

दोहा

मुखिया मुख-सो चाहिए, खान-पान कहँ एक ।
पालइ-पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥ ७ ॥

[रा० च० मा० —अयोध्या]

चौपाई

संग तें जती, कुमंत्र तें राजा । मान तें ज्ञान, पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥ ८ ॥

सोरठार्द्ध

रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि ॥ ९ ॥

× × × ×

चौपाई

शास्त्र सुचिंतित पुनि-पुनि देखिय । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ॥
राखिय नारि जदपि उर माहीं । जुवती शास्त्र नृपति बस नाहीं ॥ १० ॥

× × × × × × ×

७—मुखिया = प्रधान, शासक ।

८—संग = आसक्ति । जती = यती, संन्यासी । पान = मद्यपान । प्रनय = प्रेम ।

९—रुज = रोग । अहि = साँप । छोट करि = तुच्छ समझकर ।

१०—सुचिंतित = भली भाँति अनुशीलन किया हुआ ।

रिपु पर दया परम कदराई ॥ ११ ॥

[रा० च० मा०—अरण्य]

नीति-बिरोध न मारिय दूता ॥ १२ ॥

× × × × ×

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥

× × × × × × ×

सचिव बैद गुरु तीन जौं, प्रिय बोलहिं भय-आस ।
राज, धर्म, तन तीनि कर होइ बेगिही नास ॥ १४ ॥

[रा० च० मा०—सुंदर]

नाथ बैरु कीजिय ताही सों । बुधि बल सकिय जीति जाही सों ॥१५॥

दोहार्द्ध

नीति-बिरोध न करिय प्रभु, मंत्रिन्ह मति अति थोर ॥ १६ ॥

× × × × ×

चौपाई

प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं । ऐसे नर-निकाय जग अहहीं ॥
बचन परमहित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥१७॥

× × × × × × ×

दोहा

प्रीति बिरोध समान सन, करिय नीति असि आहि ।
जो मृगपति बध मेडुकहिं, भल कि कहइ कोउ ताहि ॥ १८ ॥

[रा० च० मा०—लंका]

११—कदराई = कायरता ।

१३—सुमति = एकता । निदान = कारण, अंत ।

१४—सचिव = मंत्री ।

१७—निकाय = समूह, बहुत ।

चौपाई

राज कि रहइ नीति बिनु जाने ? १९ ॥

(रा० च० मा०-उत्तर)

दोहा

बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ ।
तुलसी प्रजा-सुभाग तें, भूप भानु-सो होइ ॥ २० ॥
सुधा सुनाज, कुनाज फल, आम असन सम जानि ।
सुप्रभु प्रजा-हित लेहि कर, सामादिक अनुमानि ॥ २१ ॥
पाके, पकये विटप-दल, उत्तम मध्यम नीच ।
फल नर लहैं, नरेस त्यों करि बिचार मन बीच ॥ २२ ॥
कर के कर, मन के मनहिं, वचन वचन गुन जानि ।
भूपहि भूलि न परिहरै, बिजय बिभूति सयानि ॥ २३ ॥
रैयत, राज-समाज, घर, तन, धन, धरम, सुबाहु ।
शांत सुसचिवन सौंपि सुख, बिलसहि नित नरनाहु ॥ २४ ॥
माली भानु किसान सम, नीति-निपुन नरपाल ।
प्रजा-भाग बस होहिंगे, कबहुँ-कबहुँ कलिकाल ॥ २५ ॥
प्रभु तें प्रभु-गन दुखद, लखि प्रजहिं सँभारै राउ ।
कर तें होत कृपान को, कठिन घोर घन घाउ ॥ २६ ॥
जा रिपु सों हारेहु हँसी, जिते पाप परितापु ।
तासों रारि निवारिए, समय सँभारिय आपु ॥ २७ ॥

[दोहावली]

२०—करषत = खींचते हुए, लेते हुए, कर लेते हुए ।
२१—सुधा = दूध, ईख-रस आदि पीने के उत्तम पदार्थ । सामादिक = साम, दाम, दंड और भेद के अनुसार ।
२४—सुबाहु = सेना । नरनाहु = राजा ।
२६—राउ = राजा । कृपान = तलवार ।
२७—परिताप = दुःख, पश्चात्ताप । रारि = लड़ाई । निवारिए = बचानी चाहिए ।

सुराज और कुराज

चौपाई

जस सुराज खल-उद्यम गयऊ ॥ १ ॥

× × × ×

प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥ २ ॥

× × × ×

पंक न रेनु सोह असि धरनी । नीति-निपुन नृप कै जसि करनी ॥ ३ ॥

[रा० च० मा०—किष्किंधा]

छंद

नृप पाप-परायन धर्म नहीं । करि दंड-बिडंब प्रजा नितही ॥ ४ ॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

दोहा

चढ़े बघूरे चंग ज्यों, ज्ञान ज्यों सोक-समाज ।
करम-धरम सुख-संपदा, त्यों जानिबे कुराज ॥ ५ ॥
कंटक करि-करि परत गिरि, साखा सहस खजूरि ।
मरहिं कुनृप करि-करि कुनय सों कुचालि भव भूरि ॥ ६ ॥
राज करत बिनु काज ही, करैं कुचालि कुसाज ।
तुलसी ते दसकंध ज्यों, जइहैं सहित समाज ॥ ७ ॥
राज करत बिनु काजही, ठटहिं जो कूर कुठाट ।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों, जइहैं बारह बाट ॥ ८ ॥

[दोहावली]

३—पंक = कीचड़ ।

५—बघूरा = बवंडर, आँधी ।

६—कुनय = कुनीति, अत्याचार ।

८—कुरुराज = दुर्योधन । जइहैं बारह बाट = नष्ट-भ्रष्ट हो जायँगे ।

परोपकार

चौपाई

परहित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥ १ ॥

[रा० च० मा० बाल]

दोहार्द्ध

परउपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ ॥ २ ॥

[रा० च० मा०—अरण्य]

परहित-सरिस धर्म नहिं भाई ॥ ३ ॥

× ×

परउपकार बचन-मन-काया । संत सहज सुभाव खगराया ॥ ४ ॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

× × × ×

पद

काज कहा नरतनु धरि सार्‌यो ?
पर-उपकार सार श्रुति को जो सो धोखेहु न बिचार्‌यो ॥ ५ ॥

× × × × ×

लाभ कहा मानुष-तनु पाये ?
काय-बचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये ॥ ६ ॥

× × × × ×

५—सार्‌यो = पूरा किया ।

६—घटत न काज पराये = दूसरे के काम में नहीं आता ।

जानतहूँ मन-बचन-कर्म परहित कीन्हें तरिए।
सो बिपरीत देखि परसुख बिनु कारन ही जरिए ॥ ७ ॥

× × × × ×

परहित-निरत निरंतर मन-क्रम-बचन नेम निबहौंगो ॥ ८ ॥
[विनय-पत्रिका]

—:*:—

सेवक एवं सेवा-धर्म

चौपाई

जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू । हर-गिरितें गुरु-सेवक-धरमू ॥१॥

× × × × ×

करइ स्वामि-हित सेवक सोई।
दूषन कोटि देइ किन कोई ॥ २ ॥

× × × ×

सब तें सेवक-धरम कठोरा ॥ ३ ॥

+ + +

सेवा-धरम कठिन जग जाना ॥ ४ ॥
[रा० च० मा०–अयोध्या]

भानु पीठि, उर सेइय आगी। स्वामिहि सर्बभाव छल त्यागी ५
(रा० च० मा० किष्किंधा]

१–त=तो। हर-गिरि=कैलाश पर्वत। गुरु=भारी।
५–सर्बभाव=सभी तरह से, सर्वस्व अर्पित करके।

नारी-धर्म

[करेहु सदा संकर-पद-पूजा]। नारि-धरम 'पतिदेव' न दूजा ॥१॥
[रा० च० मा०—बाल]

एहि तें अधिक धर्म नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा ॥२॥

× × × × ×

जहँलगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ त ताते ॥
तन धन धाम धरनि पुर राजू। पति-बिहीन सब सोक-समाजू ॥
भोग रोग-सम, भूषन भारू। जम-जातना सरिस संसारू ॥
जिअ बिनु देह, नदी बिनु बारी। तइसिअ नाथ, पुरुष बिनु नारी ३
[रा० च० मा० अयोध्या कांड]

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित-दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अतिदीना ॥
ऐसेहु पति कर किये अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकइ धरम एकब्रत नेमा। काय-बचन-मन पति-पद प्रेमा ॥४॥

३—तरनिहुँत=सूर्य से भी। ताते=तप्त, गरम, जलानेवाले। जातना=यातना, कष्ट। जिअ=जीव। बारी=वारि, जल। तइसिअ=वैसेही।

४—मितप्रद=एक हद तक सुख देनेवाले। जड़=मूर्ख। बधिर=बहरा। अपावना=अपवित्र

सोरठा

सहज अपावन नारि, पति सेवत सुभगति लहइ ।
जसु गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥ ५ ॥

[रा० च० मा०-अरण्य]

साधारण नीति

[रा० च० मा०-बालकण्ड]

चौपाई

कतहुँ सुधाइहु तें बड़ दोषू ॥ १ ॥

का बरषा जब कृषी सुखाने । समय चूकि पुनि का पछिताने॥२॥

कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि-सम सब कहँ हित होई॥३॥

कुपथ माँग रुज-व्याकुल रोगी । बैद न देइ, सुनहु मुनि जोगी ॥४॥

गुन-अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥५॥

तुलसिका = तुलसी, बिना तुलसी-दल के भगवान् का पूजन निरर्थक माना जाता है ।

१-सुधाइहु तें = सिधाई से भी ।

३-भनिति = काव्य-रचना । भूति = विभूति, ऐश्वर्य ।

४-रुज = रोग ।

५-भाव = अच्छा लगे ।

दोहा

ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥६॥

चौपाई

छत्रिय-तनु धरि समर सकाना। कुल-कलंक तेहि पाँवर जाना ॥७॥

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइय बिनु बोलेहु न सँदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गये कल्यान न होई ॥८॥

जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब तें कठिन जाति-अपमाना ॥९॥

दोहा

जल पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति की रीति भलि।
बिलग होइ रस जाइ, कपट-खटाई परतहीं ॥ १० ॥

चौपाई

जो लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥ ११॥

टेढ़ जानि बंदइ सब काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू ॥१२॥

६–ग्रह = सूर्य, चंद्र, राहु, केतु आदि नवग्रह। भेषज = औषधि। सुलच्छन = चतुर।

७–सकाना = डर गया। पावँर = पामर, नीच।

१०–पय = दूध। रस = दूध; आनंद।

११–अचगरि = अनुचित।

१२–बक्र = टेढ़ा, द्वैज का चंद्रमा।

तेजवंत लघु गनिय न, रानी ! ॥ १३ ॥

दोहा

मंत्र परमलघु जासु बस, बिधि हरिहर सुर सर्व ।
महामत्त गजराज कहँ, बस कर अंकुस खर्ब ॥ १४ ॥

रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहि ॥ १५ ॥

संत कहहिं असि नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव ।
होइ न बिमल बिवेक उर, गुरु सन किए दुराव ॥ १६ ॥

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलापु ॥ १७ ॥

[रा० च० मा०–अयोध्या कांड से]

दोहा

मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख, सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु जनम जग जाय ॥ १ ॥

१४–खर्ब = छोटा ।
१५–अपि = भी ।
१६–दुराव = छिपाव ।
१७–प्रलाप = बकवाद ।
१–सिख = शिक्षा, उपदेश । सुभाय = स्वभाव से । जाय = व्यर्थ ।

चौपाई

पितु-आयसु सब धरम क टीका ॥ २ ॥

नहिं बिष-बेलि अमिय-फल फरहीं ॥ ३ ॥

दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि पेम कुसल रौताई ॥४॥

जस काछिय तस चाहिय नाचा ॥ ५ ॥

चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान-सम जाके ॥६॥

रहइ न नीच मते चतुराई ॥ ७ ॥

कसे कनक, मनि पारिखि पाये। पुरुष परिखियहि समय सुभाये॥८॥

ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती ॥९॥

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहिं आपुन दाऊ ॥१०॥

अरि-बस दैव जियावत जाही। मरनु नीक तेहि जीव न चाही ॥११॥

४—रौताई = सरदारी

८—कसे = कसौटी पर कसने पर, जाँचने पर।

१०—काऊ = कभी। दाऊ = दाव।

अरध तजहिं बुध सरबस जाता ॥ १२ ॥

अनुचित उचित काज कछु होऊ। समुझि करिय भल कह सबकोऊ१३

दोहा

अनुचित-उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितु-बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति-ऐन ॥ १४ ॥

[रा० च० मा-अरण्यकांड से]

चौपाई

धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपद काल परखियहि चारी ॥१॥

नवनि नीच कै अति दुखदाई ॥ २ ॥

मित्र करइ सतरिपु कै करनी। ता कहँ बिबुध-नदी बैतरनी ॥३॥

[रा० च० मा०-किष्किंधाकांड से]

चौपाई

महावृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि स्वतंत्र भये बिगरहिं नारी॥१॥

दामिनि दमकि रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥२॥

१४–भाजन = पात्र। अमरपति-ऐन = स्वर्ग।

१९–आपद काल = विपत्ति का अवसर।

३–विबुधनदी वैतरनी = गंगा भी नरक की वैतरणी नदी के समान दु:खदायिनी है।

२–थिर = स्थिर, टिकाऊ।

अनुज-बधू भगिनी सुत-नारी। सुनु सठ कन्या, सम ए चारी।
इन्हहिं कुदिष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई ॥३॥

[रा० च० मा-सुंदरकांड से]

चौपाई

उमा ! संत कै इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई ॥ १ ॥

कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा ॥ २ ॥

दोहा

काटेइ पर कदली फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाँटेहि पै नव नीच ॥ ३ ॥

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ ॥ ४ ॥

चौपाई

जो आपन चाहइ कल्याना। सुजस सुमति सुभगति सुख नाना ॥
सो पर-नारि-लिलारु गोसाईं। तजइ चौथ के चंद कि नाईं ॥ ५ ॥

३—कुदिष्टि = कुदृष्टि, विषय-वासना की नज़र।

१—मंद = बुराई।

३—कदली = केला। नव = झुकता है, वश में होता है।

५—चौथ का चंद = भाद्रपद के शुक्लपक्ष की चतुर्थी का चंद्रमा, जिसे देखने से, कहते हैं, अकारण ही कलंक लगता है।

दोहा

सरनागत कहँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावँर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥ ६ ॥

[रा० च० मा०—लंकाकांड से]

छंद

[संसार महँ पूरुष त्रिबिध, पाटल रसाल पनस समा]।
एक सुमनप्रद, एक सुमनफल, एक फलइ केवल लागहीं ।
एक कहहिं, कहहिं करहिं अपर, एक करहिं कहत न बागहीं ॥१॥

सोरठा

फूलइ-फलइ न बेंत, जदपि सुधा बरसहिं जलद ।
मूरख-हृदय न चेत, जौं गुरु मिलैं बिरंचि सिव ॥ २ ॥

चौपाई

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी । बिष्णु-बिमुख श्रुति-संत-बिरोधी॥
तनु-पोषक निंदक अघखानी । जीवत सव सम चौदह प्रानी ॥३॥

[रा० च० मा०-उत्तरकांड से]

सोरठार्द्ध

अति नीचहु सन प्रीति, करिय जानि निज परमहित ॥ १ ॥

१—पाटल = लोध्र नाम का फूल । रसाल = आम । पनस = कटहर । कहत न बागहीं = कहते नहीं फिरते ।

२—चेत = बोध ।

३—कौल = वाममार्गी । संतत = सदा । सव = शव, मुर्दा । प्रानी = जीव ।

चौपाई

उदासीन नित रहिय गोसाईं । खल परिहरिय स्वान की नाईं २

कवि कोविद गावहिं असि नीती । खल सन कलह न भल नहिंप्रीती ३

काहू सुमति कि खल सँग जामी । सुभगति पाव कि परतियगामी ४

खल बिनुस्वारथ पर-अपकारी । अहि मूषक इव सुनु उरगारी ५

जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥६॥

दुष्ट-हृदय जग-आरति हेतू । जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥७॥

[राम-चरित-मानस]

दोहा

परमारथ-पहिचानि-मति लसति विषय लपटानि ।
निकसि चिता तें अधजरति, मानहुँ सती परानि ॥ १ ॥
सदा न जे सुमिरत रहहिं, मिलि न कहहिं प्रिय बैन ।
तेपै तिन्ह के जाहिं घर, जिनके हिये न नैन ॥ २ ॥

२–उदासीन = निरपेक्ष, विरक्त ।

४–जामी = उत्पन्न हुई । सुभगति = मोक्ष ।

५–मूषक = चूहा । इव = समान । उरगारि = गरुड़ ।

७–आराति = दुःख । केतू = केतु, जिसका उदय अनिष्टकर माना जाता है ।

१–परानि = भागी ।

माखी, काक, उलूक, बक, दादुर-से भये लोग।
भले ते सुक, पिक, मोर-से, कोउ न प्रेम-पथ-जोग ॥ ३ ॥
हृदय कपट, बरबेष धरि, बचन कहैं गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिए मन खोलि ॥ ४ ॥
चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल।
छीर-नीर-बिबरन समय, बक उघरत तेहि काल ॥ ५ ॥
मिलै जो सरलहि सरल ह्वै, कुटिल न सहज बिहाय।
सो सहेतु, ज्यों बक्रगति, ब्याल न बिलै समाय ॥ ६ ॥
सुकृत न सुकृती परिहरै, कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले, गीधराज मारीच ॥ ७ ॥
पियहिं सुमन-रस अलि बिटप, काटि कोल फल खात।
तुलसी तरुजीवी जुगल, सुमति कुमति की बात ॥ ८ ॥
अवसर कौड़ी जो चुकै, बहुरि दिये का लाख?
दुइज न चंदा देखिये, उदौ कहा भरि पाख ॥ ९ ॥
तुलसी जगजीवन अहित, कतहुँ कोउ हित जानि।
सोषक भानु कृसानु महि पवन, एक घन दानि ॥१०॥
उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की, बैर बितिक्रम जानि ॥११॥

३—पिक = कोयल। प्रेम-पथ-जोग = प्रेम करने योग्य।

४—गढ़ि छोलि = खूब बना-बनाकर, नमक मिर्च लगाकर।

५—बिबरन = निर्णय, अलग-अगल करना। उघरत = खुल जाता है।

८—कोल = सूअर

९—अवसर = ठीक समय पर। पाख = पक्ष।

१०—सोषक = सोखनेवाले। कृसानु = अग्नि।

११—सिकता = बालू। प्रीति······जानि = पत्थर परकी, बालू पर की और पानी पर की लकीर की सो प्रीति क्रम से उत्तम, मध्यम और निकृष्ट है। वैर का क्रम इसका उलटा है।

पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमारथ-पथ पाँच ।
लहहिं सुजन, परिहरहिं खल, सुनहु सिखावन साँच ॥१२॥
तुलसी अपनो आचरनु, भलो न लागत कासु ।
तेहि न बसात जो खात नित, लहसुनहू की बासु ॥१३॥
गुरु-संगति गुरु होइ सो, लघु-संगति लघु नाम ।
चार पदारथ में गनै, नरकद्वार हू काम ॥१४॥
होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम ।
होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम ॥१५॥
जो-जो जेहि-जेहि रस-मगन, तहँ सो मुदित मन मानि ।
रसगुन-दोष बिचारिबो, रसिक-रीति पहिचानि ॥१६॥
लोक वेदहू लौं दगो, नाम भले को पोच ।
धर्मराज जम, गाज पवि, कहत सकोच न सोच ॥१७॥
.प्रभु सनमुख भए नीच नर, निपट होत बिकराल ।
रबि-रुख लखि दरपन फटिक, उगलत ज्वाला-जाल ॥१८॥
बरषि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास ।
तुलसी दोष न जलद को, जो जल जरै जवास ॥१९॥
अमर दानि, जाचक मरहिं, मरि मरि फिरि फिरि लेहिं ।
तुलसी जाचक पातकी, दातहि दूषन देहिं ॥२०॥
राकापति षोड़स उवहिं, तारागन-समुदाइ ।
सकल गिरिन दव लाइए, बिनु रबि राति न जाइ ॥२१॥

१२—पति = प्रतिष्ठा । प्रापतिउ = प्राप्ति भी ।
१७—दगो = प्रसिद्ध । पोच = नीच, बुरा । पवि = बज्र ।
१८—फटिक = स्फटिक ।
१९—हरत अघ = स्नान से पापों का नाश कर देता है ।
२१—राकापति = चंद्रमा । दव=आग ।

सठ सहि साँसति पति लहत, सुजन कलेस न काय।
गढ़ि-गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडकि-सिला सुभाय ॥२२॥
बिनु प्रपंच छल भीख भलि, लहिय न दिए कलेस।
बावन बलिसों छल कियो, दियो उचित उपदेस ॥२३॥
जोंक सूधिमन कुटिलगति, खल बिपरीत बिचारु।
अनहित सोनित-सोष सो, सो हित सोषनहारु ॥२४॥
सारदूल को स्वाँग कर, कूकर की करतूति।
तुलसी तापर चाहिए, कीरति विजय विभूति ॥२५॥
देस-काल-करता-करम-बचन-बिचार-बिहीन।
ते सुरतरु-तर दारिदी, सुरसरि-तीर मलीन ॥२६॥
सहज सुहृद-गुरु-स्वामि-सिख जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित-हानि ॥२७॥
लोकरीति फूटी सहै, आँजी सहै न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहै, सो आँधरो न होइ ॥२८॥
कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच-गृह, जरत धनिक-धन-धाम ॥२९॥
कौरव पांडव जानिए, क्रोध छमा के सीम।
पाँचहिं मारि न सौ सके, सयो सँहारे भीम ॥३०॥

२२–साँसति = यातना, कष्ट। गंडकि-सिला = शालिग्राम। सुभाय = स्वभाव से ही।

२४–खल बिपरीत बिचारु = दुष्टों का मन कुटिल और ऊपरी गति सरल होती है। सो = (१) दुष्ट (२) जोंक।

२५–सारदूल = सिंह।

२६–मलीन = पातकी।

२९–कलह = लड़ाई। परिनाम = अंत, नतीजा।

३०–सीम = सीमा, हद्द, रूप। सयो = सौ को।

जो परि पायँ मनाइए, तासों रूठि बिचारि ।
तुलसी तहाँ न जीतिए, जहँ जीतेहु हारि ॥३१॥
जो मधु मरै न मारिये, माहुर देइ सो काउ ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ ॥३२॥
बैर-मूल-हर हित-बचन, प्रेममूल उपकार ।
दो 'हा' सुभ-संदोह सो, तुलसी किये बिचार ॥३३॥
रोष न रसना खोलिये, बरु खोलिय तरवारि ।
सुनत मधुर, परिनाम हित, बोलिय बचन बिचारि ॥३४॥
पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै ढेर ।
सुमति बिचारे बोलिये समुझि कुफेर-सुफेर ॥३५॥
राम लषन बिजयी भए, बनहु गरीबनिवाज ।
मुखर बालि रावन गए, घरही सहित समाज ॥३६॥
खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल ।
कुमति बालि दसकंठ घर, सुहृद बंधु कियो काल ॥३७॥
लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक ।
सदा बिचारहिं चारुमति, सुदिन-कुदिन दिन दूक ॥३८॥
तुलसी असमय के सखा, धीरज धरम बिबेक ।
साहित, साहस, सत्यब्रत, राम-भरोसो एक ॥३९॥

३२–माहुर = विष । परसुधर = परशुराम ।

३३–दो 'हा' = हा हा, अर्थात् विनय । संदोह = समूह ।

३६–गरीबनिवाज = दीनों पर कृपा करनेवाला । मुखर = बकवादी, अभिमानी ।

३७–नयपाल = नीति-पालक, न्यायी । दसकंठ = रावण । काल = मृत्यु का कारण ।

३८–चारुमति = पंडित । दूक = दोनों ।

३९–साहित = साहित्य । असमय = विपत्ति ।

तुलसी तीरहु के चले, समय पाइबी थाह ।
धाइ न जाइ थहाइबी, सर सरिता अवगाह ॥४०॥
कै जूझिबो कै बूझिबो, दान कि काय-कलेस ।
चारि चारु परलोक-पथ, जथाजोग उपदेस ॥४१॥
अपनो ऐपन निजहथा, तिय पूजहिं निज भीति ।
फलै सकल मनकामना, तुलसी प्रीति प्रतीति ॥४२॥
तुलसी सो समरथ, सुमति, सुकृती, साधु, सयान ।
जो बिचारि व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान ॥४३॥
तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि ।
तीय, तनय, सेवक, सखा, मन के कंटक चारि ॥४४॥
दीरघ रोगी, दारिदी, कटुबच लोलुप लोग ।
तुलसी प्रानसमान तउ, होहिं निरादर-जोग ॥४५॥
कूप खनत मंदिर जरत, आए धारि बबूर ।
बवहिं, नवहिं निज काज सिर, कुमति-सिरोमनि कूर ॥४६॥

४०–न थहाइबी = थाह न लेनी चाहिए ।

४१–जूझिबो = युद्ध । बूझिबो = ज्ञान । काय-कलेस = योगाभ्यास आदि ।

४२–ऐपन = भिगोये हुए कच्चे चावल तथा हल्दी दोनों को एक साथ पीसकर थापा देने के लिए बनाया जाता है। निजहथा=अपने हाथ का चिन्ह । प्रतीति=विश्वास ।

४३–व्यवहरइ = व्यवहार करता है । अनुमान = अनुसार ।

४४–तूठहिं = प्रसन्न होते हैं । रूठहिं = नाराज़ हो जाते हैं । कंटक = बाधक, दुःखदायी ।

४५–दीरघरोगी = बहुत दिनों का रोगी । कटुबच = कठोर बचन बोलनेवाला ।

४६–आये धारि बबूर बवहिं = कहावत है कि जब शत्रु ने किला घेर लिया, तब चले चारों तरफ रोक के लिए बबूल बोने ।

लोगन भलो मनाव जो, भलो होन की आस ।
करत गगन को गेंडुवा, सो सठ तुलसीदास ॥४७॥
तुलसी जुपै गुमान को, होतो कछू उपाउ ।
तौ कि जानकिहि जानि जिय, परिहरते रघुराउ ? ॥४८॥
ब्यालहु तें बिकराल बड़, ब्याल-फेन जिय जानु ।
वहि के खाए मरत है, वह खाये विनु प्रानु ॥४९॥
बड़ो गहे ते होत बड़, ज्यों बावन-कर-दंड ।
श्री प्रभु के सँगसों बढ़ो, गयो अखिल ब्रह्मंड ॥५०॥
सरनागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावँर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि ॥५१॥

[दोहावली]

——:o:——

४७–गेंडुवा = तकिया ।

४९–खाए मरत हैं = काटने पर मर जाता है ।

निज-निवेदन विन्दु

चौपाई

छमहहिं सज्जन मोरि ढिठाई । सुनिहहिं बाल-बचन मन लाई ॥
जौं बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥
निज कवित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर-भनिति सुनत हरषाहीं । ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥
भाषा-भनिति भोरि मति मोरी । हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥
कबि न होउँ नहिं बचन-प्रबीनू । सकल कला सब बिद्याहीनू ॥
कवित-विवेक एक नहिं मोरे । सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे ॥
जदपि कबित-रस एकउ नाहीं । राम-प्रताप प्रगट एहि माहीं ॥१॥

× × × × × × ×

जे जनमे कलिकाल कराला । करतब बायस बेष मराला ॥
चलत कुपंथ बेद-मग छाँड़े । कपट-कलेवर कलि-मल-भाँड़े ॥
बंचक भगत कहाइ राम के । किंकर कंचन कोह काम के ॥
तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी । धिग धरमध्वज धँधरकधोरी ॥
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ । बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ ॥
तातें मैं अति अलप बखाने । थोरे महँ जानिहहिं सयाने ॥
कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ । मति-अनुरूप रामगुन गाऊँ ॥२॥

[रा० च० मा०—बाल]

१—भनिति = रचना, कृति । खोरी = दोष । बचन-प्रवीन = सुयोग्य वक्ता ।

२—करतब बायस = कर्मों से कौए हैं । कपट-कलेवर = मूर्तिमान् कपट, महाकपटी । भाँड़े = पात्र, स्थान । बंचक = ठग । किंकर = दास । कोह = क्रोध । धँधरकधोरी = काम-धंधे में फँसे रहनेवाले । अलप = अल्प, थोड़ा ।

सवैया

मातु पिता जग जाय तज्यो, विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकर-टूकन लागि ललाई॥
राम-सुभाव सुन्यो तुलसी, प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई॥ ३॥

*

कवित्त

रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।
जानत जहान, मन मेरेहू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं॥
पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहिं आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबैहीं परि जानिहौं।
गढ़ि-गुढ़ि, छोलि-छालि, कुंद की सी भाईं बातें
जैसी मुख कहौं तैसी जीअ जब आनिहौं॥४॥

*

जायो कुलमंगन, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को॥

३-जाय = जन्म देकर। भाल = भाग्य। ललाई = लालच। बारक = एक बार।
पेट खलाई = पेट को खाली दिखाकर (कुछ मांगना)। खोरि = दोष।

४-कानि = लाज। परि = निश्चय रीति से। गढ़ि-गुढ़ि = बना-बनाकर। छोलि-छालि = काट-कूटकर। कुंद की सी भाईं = खराद पर चढ़ाई हुई सी। जीअ = मन।

५-मंगन = दरिद्र। बारे तें = बचपन से। ललात = ललचाता था। बिललात = विलखते हुए। चनक = चना।

तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच विधि हू गनक को।
नाम, राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृनतें तनक को ॥ ५ ॥

*

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहैं राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महाखल,
बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है॥
चहत न काहू सों, न कहत काहू की कछु,
सब की सहत उर अंतर न ऊब है।
तुलसी को भलो-पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है ॥ ६ ॥

*

मेरे जाति-पाँति, न चहौं काहू की जाति-पाँति,
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को।
लोक-परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को॥
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग,
'साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को' ॥

गनक = ज्योतिषी। तनक = हलका, तुच्छ। गुरु = भारी, प्रतिष्ठित।

६–कुसाज = बुरा काम। खरो खूब है = बड़ा ही सच्चा है। हबूब = झूठी-मूठी चर्चा; अफ़वाह। ऊब = घबराहट।

७–अयाने = अज्ञानी, मूर्ख। उपखानो = उपाख्यान, कहावत। गोत = गोत्र।

साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को ॥ ७ ॥

*

सुनिये कराल कलिकाल भूमिपाल ! तुम
जाहि घालो चाहिए कहौ धौं राखै ताहि को ?
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारों ढारो रावरो न,
मैं हू तै हूँ ताहि को सकल जग जाहि को ॥
काम कोह लाइकै देखाइयत आँखि मोहिं,
एतेमान अकस कीबे को आपु आहि को ?
साहिब सुजान जिन स्वान हू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम राम-साहि को ॥ ८ ॥

*

सवैया

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगिकै खैबो मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥ ९ ॥

*

का काहू के द्वार परो = क्या किसी के दरवाजे पर धरना दिये पड़ा हूँ।
८—घालो चाहिए = नष्ट करना चाहते हो। बिगारो ढारो = बिगाड़ा-गिराया। आँख दिखाइयत = डराते हो। एतेमान = इतना। अकस = विरोध। स्वान = अयोध्या के सुप्रसिद्ध कुत्ते से तात्पर्य है। पच्छ कियो = तरफ़दारी की।
९—अवधूत = भिखमंगा। सरनाम = प्रख्यात, नामी। ओऊ = वह भी। मसीत = मसज़िद। लैबेको......दोऊ = किसी से कोई मतलब नहीं।

कवित्त

जाति के सुजाति के, कुजाति के पेटागि बस;
खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो।
मानस बचन काय किए पाप सतिभाय;
रामको कहाय दास दगाबाज पुनी सो॥
राम नाम को प्रभाउ, पाउ महिमा-प्रताप;
तुलसी से जग मनियत महामुनी सो।
अतिही अभागो अनुरागत न राम-पद;
मूढ़ एतो बड़ो अचरज देखि-सुनी सो॥१०॥

[कवितावली]

कवित्त

जीवौं जग जानकी-जीवन को कहाइ जन,
मरिबे को बारानसी, बारि सुरसरि को।
तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाउँ,
जाके जिए मुए सोच करिहैं न लरिको॥
मोकों झूठो साँचो लोग राम को कहत सब,
मेरे मन मान है न हर को न हरि को।
भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत,
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि करि को॥११॥

[हनुमान-बाहुक]

१०—पेटागि=पेट की आग, भूख। दुनी=दुनिया। सतिभाय=सच्चे रूप से, निश्चय ही। पुनी=पुनः, फिर। पाउ=पाया।

११—बारानसी=काशी। दुहूँ हाथ मोदक है=दोनों ही प्रकार से भला है। लरिको=लड़का। मान=अभिमान, बल।

राग ललित

राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यौ राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।
रोटी लूगा नीकै राखै, आगेहू की बेद भाखै,
भलो ह्वैहै तेरो ताते आनँद लहत हौं॥
बाँध्यो हौं करम जड़ गरब गूढ़ निगड़,
सुनत दुसह हौं तौ साँसति सहत हौं।
आरत-अनाथ-नाथ कौसलपाल कृपाल,
लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं॥
बूझ्यौ ज्योंही, कह्यों मैं हूँ चेरो ह्वैहौं रावरो जू,
मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं।
मींजो गुरुपीठ अपनाइ गहि बाहँ बोलि,
सेवक-सुखद सदा बिरद बहत हौं॥
लोग कहैं पोच, सो न सोच न सँकोच मेरे,
ब्याह न बरेखी, जाति-पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज-काज रामही के रीझे-खीझे,
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं॥१२॥
[विनय-पत्रिका]

घर-घर माँगे टूक, पुनि भूपति पूजे पाय।
जे तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय॥ १३॥

दोहा

राम-नाम जसु बरनिकै, भयउ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबही तुलसी सोन॥ १४॥
[फुटकर]

१२—लूगा = कपड़ा। आगे की = परलोक का। निगड = बेड़ी। साँसति = यातना, कष्ट। दुरित=पाप। मींजो=ठोक दिया, साहस बँधाया। बिरद बहत हौं=बाना लिये रहता हूँ। पोच = नीच, तुच्छ। बरेखी = सगाई। खीझे = नाराज होने पर।
१४—कहते हैं, यह दोहा गोसाईंजीने शरीर-त्याग के कुछ पहले कहा था।

विविध सूक्ति-बिन्दु

कलियुग-वर्णन

चौपाई

सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप-परायन सब नरनारी ॥१॥

दोहा

भये लोग सब मोहबस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ज्ञाननिधि! कहउँ कछुक कलि-धर्म ॥ २ ॥

चौपाई

बरन-धरम नहिं आस्रमचारी। स्रुति-बिरोध-रत सब नरनारी ॥
द्विज स्रुति-बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम-अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
नारि-बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मरकट की नाईं ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
सब नर काम-लोभ-रत क्रोधी। बेद-बिप्र-गुरु-संत-बिरोधी ॥
गुनमंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि परपुरुष अभागी ॥
सौभागिनी बिभूषनहीना। बिधवन्ह के सृंगार नवीना ॥

१—उरगारि = सर्प-शत्रु गरुड़।

२—हरिजान = (हरियान) गरुड़

३—स्रुति-बेचक = वेद बेचनेवाले, वेदों के द्वारा पैसा कमानेवाले। प्रजासन = प्रजा को खा जानेवाले। निगम-अनुसासन = वेदों की आज्ञा। गाल बजावा = झूठी बकवाद करे। मरकट = बंदर। मेलि = पहनकर।

गुरु सिष बधिर अंध कर लेखा। एक न सुनहि एक नहिं देखा ॥
हरइ सिष्यधन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई ॥
मातु-पिता बालकन्ह बोलावहिं। उदर भरइ सोइ धरम सिखावहिं ॥
विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी ॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत दाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥
सब नर कलपित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥

दोहा

भये बरनसंकर सकल, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज सोक वियोग ॥ ४ ॥

तोमर छन्द

बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया रह लीन नहीं बिरती ॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ॥
कुलवंत निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ॥
सुत मानहिं मातु पिता तबलौं। अबला नहिं डीठि परी जबलौं ॥
ससुरारि पियारि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें ॥
नृप पाप-परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं ॥
धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विजचिन्ह जनेउ उघार तपी ॥
नहिं मान पुरानन्ह बेदहिं जो। हरिसेवक संत सही कलि सो ॥
कविवृन्द उदार दुनी न सुनी। गुनदूषन व्रात न कोपि गुनी ॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥५॥

सिष = शिष्य। बधिर = बहरा। लोलुप = लालची। वृषली = दुराचारिणी, नीच स्त्री। बरासन = ऊँचा आसन। कल्पित = मनगढ़ंत।

४—सेतु = मर्यादा। रुज = रोग।

५—जती = यति, संन्यासी। बिरती = वैराग्य। निबेरि गती = मर्यादा को भ्रष्ट करके। बिडंब = बिडंबना। उघार = उघाड़ा, नग्न। कवि = विद्वान्। दुनी = दुनिया। गुन-दूषन-व्रात = गुणों का दोष बतानेवालों का झुंड। कोपि = कोई भी।

दोहा

सुनु खगेस कलि कपट हठ, दंभ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि सब, ब्यापि रहे ब्रह्मंड ॥ ६ ॥
तामस धर्म करहिं सब, जपतप मख ब्रत दान।
देव न बरषहिं धरनि पर, बयें न जामहिं धान ॥ ७ ॥

तोमर छन्द

अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा ॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता। मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं ॥
लघु जीवन संबत पंचदसा। कलपांत न नास गुमान असा ॥
कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा ॥
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मँगता ॥
इरषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता ॥
सब लोग बियोग-बिसोक-हए। बरनाश्रम-धर्म-बिचार गए ॥
दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति-घनी ॥
तनपोषक नारि-नरा सगरे। परनिन्दक ते जग मों बगरे ॥८॥

६—मारादि = कामदेव आदि।

७—तामस = तमोगुण-संयुक्त। जामहिं = उगते हैं, उपजाते हैं।

८—कच भूषन = बाल ही भूषण हैं। भूरि = बहुत। धर्मरता = धर्मपर। संबत पंचदसा = पचास वर्ष। असा = ऐसा। अनुजा = बहन। तनुजा = लड़की। तोष = संतोष। परुषाच्छर = कड़ा बचन। समता बिगता = मित्रता नष्ट हो गई है। जानपनी = बुद्धिमानी, जानकारी। बंचनतातिघनी = ठग बहुत अधिक है। मों = में। बगरे = फैल गये हैं।

दोहा

सुनु ब्यालारि कराल कलि, मल-अवगुन-आगार ।
गुनउ बहुत कलिजुग कर, बिनु प्रयास निस्तार ॥ ९ ॥
कृत त्रेता द्वापर समय, पूजा मख अरु जोग ।
जो गति होइ सो कलि बिषै, नाम तें पावहिं लोग ॥१०॥

चौपाई

कलिजुग केवल हरि-गुन-गाहा । गावत नर पावहिं भवथाहा ॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना । एक अधार राम-गुन-गाना ॥११॥

दोहा

कलिजुग-सम जुग आन नहिं, जो नर कर बिस्वास ।
गाइ राम-गुन-गन बिमल, भवतर बिनहिं प्रयास ॥१२॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

दोहा

पात-पात कै सींचिबो, बरी-बरी कै लौन ।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु कौन ॥ १३ ॥

सोरठा

कलि पाखंड-प्रचार, प्रबल पाप पाँवर पतित ।
तुलसी उभय अधार, राम नाम, सुरसरि-सलिल ॥ १४ ॥

[दोहावली]

१०—कृत = सतयुग । मख = यज्ञ । नाम = राम-नाम ।

११—गाहा = गाथा । भव-थाहा = संसार का पार ।

१३—बरी-बरी कै लौन = एक-एक बरी में नमक मिलाना ।

सवैया

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल, नृपाल कृपाल न, राजसमाज बड़ोई छली है॥
बर्न-बिभाग न आस्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है।
स्वारथको परमारथको कलि रामको नाम-प्रताप बली है॥१५॥
[कवितावली]

काशी-कदर्थना

कवित्त

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें,
कोढ़ में की खाजु-सी सनीचरी है मीन की।
बेद धर्म दूरि गए, भूमिचोर भूप भए,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप-पीन की॥
दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दयाधाम!
रावरी ई गति बल-बिभव-बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा विराजमान विरुदहि,
महाराज आजु जौं न देत दादि दीन की॥१६॥

१५—बिहाई = छोडकर। दुनी = दुनिया। दोष = पाप। दली है = नष्ट कर दी है।

१६—सूलमूल = कष्टों का कारण; कष्टदायक। सनीचरी मीन की = मीन राशि पर शनैश्चर की स्थिति की दशा, जिसका फल राजा-प्रजा का नाश माना जाता है। यह योग संवत १६६९ के आरंभ से १६७१ के मध्य तक पड़ा था। सीद्यमान = दुःखी। पीन = पुष्ट, मोटा, बहुत बड़ा। द्वार = शरण। विरुद = यश। दादि = न्याय।

संकर-सहर सर, नर नारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगत, जल-थल मीचुमई है॥
देव न दयालु महिपाल न कृपालु चित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है ॥१७॥

सवैया

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर-कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो॥
कासी में कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइकै आपनो कीयो।
आजु, कि कालिह, परों, कि नरों, जड़ जाहिंगे चाटि दिवारीको दीयो१८

[कवितावली]

भारत-भक्ति

छन्द

यह भरत-खंड समीप सुरसरि, थल भलो, संगति भली।
तुव कुमति कायर कल्प-बल्ली चहति तहँ बिष-फल फली ॥१९॥

[विनय-पत्रिका]

१७—बारिचर = मछली इत्यादि। माँजा = एक रोग, जिससे मछलियाँ मर जाती हैं। मीचुमई = मृत्युमय। बारानसी = (बाराणसी) काशी।

१८—महीसुर=ब्राह्मण। दाम = धन। परीच्छित = निश्चित। कंटक=बाधक। ते गे = वे नष्ट हो गये। चाटि दिवारी को दीयो = प्रसिद्ध है, कि कीड़े-मकोड़े दीवाली का दिया चाटकर चले जाते हैं; सारांश यह, कि समय पर स्वयं नष्ट हो जायँगे।

गुरु

चौपाई

गुरु के बचन प्रतीति न जेहीं। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही २०

[रा० च० मा०—बाल]

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई ॥२१॥

× × × × × × ×

जे सठ गुरुसन इरषा करहीं। रौरव नरक कोटिजुग परहीं।
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जनम भरि पावहिं पीरा २२

(रा० च० मा०—उत्तर)

दोहा

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु, तुलसीदास ॥२३॥

[दोहावली]

वेद-महिमा

दोहा

बन्दउँ चारिउ बेद, भव-बारिधि-बोहित सरिस।
जिन्हहिं न सपनेहु खेद, बरनत रघुबर बिसद जस ॥२४॥

[रा० च० मा०—बाल]

२२—त्रिजग = तिर्यक्। अयुत = दस हज़ार। पीरा = पीड़ा।
२४—बोहित = जहाज़। खेद = श्रम, थकावट।

अतुलित महिमा बेद की, तुलसी किए विचार।
जो निंदत निंदित भयो, बिदित बुद्ध-अवतार ॥ २५ ॥

[दोहावली]

संतोष

चौपाई

करहु जाइ जा कहँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनम-फलु पावा॥२६॥

[रा० च० मा०-बाल]

सोरठा

कोउ बिस्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु ?
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचिपचि मरिय ? ॥२७॥

चौपाई

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं॥२८॥

[रा० च० मा०—उत्तर]

सवैया

आगम बेद पुरान बखानत, मारग कोटिन जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईस कहावत सिद्ध सयाने॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै तुलसी, हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने॥२९॥

[कवितावली]

२७—बिस्राम = शान्ति-सुख।

२८—काम = वासना। अछत = रहते हुए।

२९—आगम = शास्त्र। आपुहि..... कहाबत = अपने ही को 'सोऽहं' कहकर ब्रह्म मान बैठे हैं। पराने = भाग गये। हम......बिकाने = रामचन्द्रजी के अधीन हैं, अतः निश्चिंत हैं।

मूर्ति-पूजा

दोहा

तुलसी प्रतिमा-पूजिबो ज्यों गुड़ियन को खेल।
भई भेंट जब पीव सों दई टिपरिया मेल ॥ ३० ॥

[फुटकर]

सवैया

काढ़ि कृपान कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
'राम कहाँ?' सब ठाँउ है, 'खंभमें?' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे॥
बैरी बिदारि भए बिकराल, कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तब तें सब पाहन पूजन लागे ॥३१॥

(कवितावली)

निश्चिंत निद्रा

कवित्त

जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।
जागैं राजा राज-काज, सेवक समाज साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के॥

३०—पीव = पति; परमात्मा । टिपरिया = गुड़ियों की पिटारी । दई मेल = फेंक दी ।

३१—काढ़ि कृपान = म्यान से तलवार खींचकर । नृकेहरि = नृसिंह भगवान् । जागे = प्रकट हो गये । बैरी = हिरण्यकशिपु । पाहन = पत्थर ।

३२—जंगम = भ्रमण करनेवाले संन्यासी । जती = यति । जमाती = जमात के साथ रहनेवाले साधु । कोह = क्रोध । बाम = कुटिल ।

जागैं बुध विद्याहित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के।
जाग भोगी भोग ही, वियोगी रोगी सोगवस,
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के ॥ ३२ ॥
[कवितावली]

भक्त-विरोध

सवैया

वेद-बिरुद्ध, मही मुनि साधु ससोक किए, सुरलोक उजारो।
और कहा कहौं तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोप न धारो ॥
सेवक-छोह तें छाँड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो।
तौलौं न दाप दल्यो दसकंधर जौलौं बिभीषन लात न मारो ॥३३॥
[कवितावली]

गर्व-गंजन

सवैया

अवनीस अनेक भए अवनी जिन के डर तें सुर सोच सुखाहीं।
मानव-दानव-देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं ॥

सोग = शोक, दुःख।
३३-ससोक = दुखी। तीय = सीताजी। छोह = कृपा। दाप = दर्प, गर्व।
दल्यो = नष्ट किया।
३४-अवनीस = राजा। अवनी = पृथ्वी। घाटि रच्यो = बुराई करने का आयोजन किया।

ते मिलये धरि धूरि सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाहीं।
बेद पुरान कहै, जग जान, गुमान गोबिंदहिं भावत नाहीं ॥ ३४ ॥
[कवितावली]

आदर्श प्रेम

सवैया

आरतपालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नाम-प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े॥
सेवक एक-तें-एक अनेक भए तुलसी तिहुँ तापन-डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहिं को जिन पाहन तें परमेस्वर काढ़े ॥ ३५ ॥
[कवितावली]

द्रौपदी-साहाय्य

दोहा

सभा सभासद निरखि पट पकरि, उठायो हाथ।
तुलसी कियो इगारहों बसन-बेष जदुनाथ ॥ ३६ ॥

जे चलते ...... छाहीं = जिन पर सदा राज-छत्र की छाया रहती थी। गुमान = घमंड।

३५–जेही = जिसने भी। अकरे = खरे। तिहुँ तापन-डाढ़े = भौतिक, दैहिक और दैविक कष्टों से जले हुए; अत्यन्त दुखी। बदौं = प्रमाणिक मानता हूँ, शर्त लगाता हूँ। पाहन = पत्थर।

३६- कियो ...... जदुनाथ = यदुनाथ श्रीकृष्णने मानों वस्त्ररूपी ग्यारहवां अवतार धारण किया। दस अवतारों के अतिरिक्त ग्यारहवां वस्त्ररूप से अवतार लिया।

'त्राहि' तीन कह्यो द्रौपदी तुलसी राज-समाज ।
प्रथम बढ़े पट, बिय बिकल, चहत चकित निज काज ॥३७॥

[दोहावली]

भगवत्कृपा एवं अकृपा

चौपाई

गरल सुधा रिपु करइ मिताई । गोपद सिंधु, अनल सितलाई ॥
गरुअ सुमेरु रेनु सम ताही । राम कृपाकरि चितवा जाही ॥३८॥

[रा० च० मा०-सुन्दर]

दोहा

बिनही ऋतु तरुवर फरत, सिला द्रवति जल जोर ।
राम लषन सिय करि कृपा, जब चितवत जेहि ओर ॥ ३९ ॥
सिला सुतिय भई, गिरि तरे, मृतक जिए जगजान ।
राम-अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान ॥ ४० ॥

[दोहावली]

३७—त्राहि = रक्षा करो । बिय = दूसरा ।

३८—गरल = विष । गोपद = गाय का खुर । गरुअ = भारी । सुमेरु = देवताओं का पर्वत ।

३९—स्रवति = बहाती है ।

४०—सिला सुतिय भई = पाषाणी अहल्या हो गयी । तरे = उतराने लगे । मृतक जिए = रण में मारे गये बंदर फिर जीवित हो गये ।

राग बिलावल

जोपै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै ?
होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै ॥
तकै नीच जो मीच साधु की सोइ पामर तेहि मीच मरै ।
बेद-बिदित प्रहलाद-कथा सुनि को न भगति-पथ पाउँ धरै ?
गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन, ध्रुव अबिचल कबहूँ न टरै ।
अंबरीष की साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै ॥
सो न कहा जो कियो सुजोधन अबुध आपने मान जरै ।
प्रभु-प्रसाद सौभाग्य बिजय-जस पांडु-तनय बरियाइँ बरै ॥
जो-जो कूप खनैगो पर कहँ सो सठ फिरि तेहि कूप परै ।
सपनेहु सुख न संत-द्रोही कहँ, सुरतरु सोउ बिष-फरनि फरै ॥
हैं काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै ?
तुलसिदास, रघुबीर-बाहु-बल सदा अभय काहू न डरै ॥ ४१ ॥

[विनय-पत्रिका]

दोहा

बिंध न इंधन पाइए, सायर जुरै न नीर ।
परै उपास कुबेर-घर, जो बिपच्छ रघुबीर ॥ ४२ ॥

[दोहावली]

४१–सरै = पूरा पड़ सकता है । मीच = मौत । पामर = पापी, नीच । बरियाइँ = हठपूर्वक । खनैगो = खोदेगा । फरनि = फलों से । सीम = सीमा, हद ।
४२–बिंध = बिन्ध्याचल । सायर = सागर, समुद्र । उपास = उपवास, लंघन । बिपच्छ = प्रतिकूल ।

आरती

राग रामकली

ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन।
हरन दुख द्वन्द गोविन्द आनन्दघन ॥
अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै।
दीप निज बोध, गत क्रोध मद मोह तम, प्रौढ़ अभिमान-चितवृत्ति छीजै॥
भाव अतिसय बिसद प्रवर नैवेद्य सुभ श्रीरमन परम संतोषकारी।
प्रेम-तांबूल, गतसूल संसय सकल, बिपुल भवबासना-बीजहारी ॥
असुभ सुभकर्म घृतपूर्ण दसवर्तिका, त्याग पावक, सतोगुन-प्रकासं।
भगति-बैराग-विज्ञान-दीपावली अर्पि नीराजनं अग-निवासं ॥
बिमल हृदि-भवन कृत सांति-पर्यंक सुभ सयन बिश्राम श्रीरामराया।
छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका, यत्र हरि तत्र नहिं भेदमाया ॥
एहि आरती-निरत सनकादि श्रुतिसेषसिव देवऋषि अखिलमुनितत्त्वदर्शी
करै सोइ तरै, परिहरै कामादि मल, वदति इति अमलमति दासतुलसी४३

[विनय-पत्रिका]

४३-गोविन्द = इन्द्रियों के स्वामी; जितेन्द्रिय। निजबोध = आत्मज्ञान। कोह = क्रोध। छीजै = क्षीण होजाती है। बर्तिका = बाती। नीराजन = आरती। राया = राजा। पर्यंक = पलंग। प्रमुख = आदि। तत्र = वहाँ। परिचारिका = दासी। यत्र = जहाँ। तत्वदर्शी = आत्मानुभवी। वदति इति = ऐसा कहता है।

लवकुश-बालक्रीडा

राग सोरठ

बालक सीय के बिहरत मुदित मन दोउ भाइ।
नाम लवकुश राम-सिय अनुहरति सुंदरताइ॥
देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना ते लै धरत दुराइ।
खेल खेलत नृप-सिसुन्ह के बालबृन्द बोलाइ॥
भूप भूषन बसन बाहन राज-साज सजाइ।
बरम चरम कृपान सर धनु तून-लेत बनाइ॥
दुखी सिय पिय-बिरह तुलसी, सुखी सुत-सुख पाइ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ॥४४॥

[गीतावली]

भले को भला फल

सवैया

कंस करी ब्रजबासिन सों करतूति कुभाँति, चली न चलाई।
पांडु के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई॥

४४-लव कुस……सुंदरताइ = लव रामचन्द्रजी के समान और कुश सीताजी के समान सुंदर है। दुराइ = छिपाकर। वाहन = सवारी। वरम = कवच। चरम = ढाल। तून = तरकस। आँच……सकुचाइ = जैसे दूध जब आग पर रखा हुआ उफनाने लगता है तो लोग पानी के छींटों से उसे शांत कर देते हैं, वैसे ही सीताजी विरहाग्नि से जब व्याकुल हो जाती हैं तो संकोच के साथ दो-चार वात्सल्य स्नेहाश्रु बहा देती हैं। संकोच इसलिए, कि कोई देखकर आँसुओं का कारण न पूछ बैठे।

४५-सुजोधन = दुर्योधन। भो = हुआ। कलि-छोटो = कलिका छोटा भाई। छलाई = कपट में।

कीन्ह कृपालु बड़े नतपालु, गए खल खेचर खीस खलाई ।
ठीक प्रतीत कहैं तुलसी जग होइ भले को भलाई भलाई ॥ ४५ ॥

[कवितावली]

राम-विमुख

चौपाई

कमठ पीठि जामहिं बरु बारा । बंध्या-सुत बरु काहुहि मारा ॥
फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला । जीव न लह सुख हरि-प्रतिकूला ॥
तृषा जाइ बरु मृगजल-पाना । बरु जामहिं सस-सीस बिखाना ॥
अंधकार बरु ससिहि नसावइ । राम-बिमुख न जीव सुख पावइ ॥
हिमते अनल प्रगट बरु होई । बिमुख राम सुख पाव न कोई ४६

[रा० च० मा०—उत्तर]

कर्म-प्राधान्य

चौपाई

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईस देइ फल हृदय बिचारी ॥

× × × × × × ×

काहु न कोइ सुख दुख कर दाता । निजकृत करम भोग सब भ्राता ४८

× × × × × × ×

बवा सो लुनिय, लहिय सो दीना ॥ ४६ ॥

[रा० च० मा०—अयोध्या]

नतपाल = शरणागतवत्सल । खेचर = राक्षस । खीस गये = मिट गये ।
४६—कमठ = कछुवा । बारा = बाल । बरु = भलेही । बन्ध्या = बांझ । सस = खरहा ।
४९-बिखान = सींग । बवासो लुनिय = जो बोया वही काटना है ।

राम-भक्त की सर्वोत्कृष्टता

चौपाई

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म-ब्रत-धारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय-बिमुख बिराग-रत होई॥
कोटि बिरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहस्र महँ सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिज्ञानी॥
धर्मसील बिरक्त अरु ज्ञानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥
सब तें सो दुर्लभ सुरराया। राम-भगति-रत गत-मद-माया ५०

[रा० च० मा०—उत्तर]

स्त्री-स्वभाव के अवगुण

चौपाई

नारि-सुभाउ सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस, अनृत, चपलता, माया। भय, अविवेक, असौच, अदाया॥५१॥

(रा० च० मा०—लङ्का)

५०—पुरारी = पुर दैत्य के शत्रु शिवजी। विराग-रत = विरक्त। सम्यक् = सच्चा, यथार्थ। सकृत = कोई एक। ब्रह्मपर = ब्रह्मलीन। सुरराया = देवताओं के स्वामी, शिवजी। गत-मद-माया = अहंकार और माया से रहित।

५१—अनृत = झूठ। साहस = दुस्साहस से तात्पर्य है। असौच = अपवित्रता। अदाया = निर्दयता।

धर्मशीलको अनायास प्राप्ति

चौपाई

जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाये। धरमसील पहिं जाहिं सुभाये ५२

[रा० च० मा०—बाल]

तीन प्रबल शत्रु

दोहा

तात, तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विज्ञान-धाम मन, करहिं निमिष महुँ छोभ॥

[रा० च० मा०—अरण्य]

विरोधनीय नहीं

चौपाई

[तब मारीच हृदय अनुमाना]। नवहि विरोधे नहिं कल्याना॥
सस्त्री, मर्मी, प्रभु, सठ, धनी। वैद्य, बंदि, कबि, मानस गुनी॥५४॥

[रा० च० मा०-अरण्य]

५२–पहिं = पास। सुभाए = स्वयं ही।
५४–सस्त्री = हथियार लेनेवाला। मर्मी = भेदिया। बंदि = भाट। मानस गुनी = गुणी मनुष्य, अथवा मनकी बात जान लेनेवाला।

ज्योतिष-ज्ञान

दोहा

स्रुति-गुन कर-गुन, पु-जुग-मृग हय, रेवती, सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि धरु, गएहु न जाइहि काउ ॥५५॥

ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ मू गुनु साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो धन फिर चढ़ै न हाथ ॥ ५६ ॥

रबि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब-काज-नसावनी, होइ कुजोग बिचार ॥ ५७ ॥

५५—स्रुति-गुन = श्रवण से तीन नक्षत्र अर्थात् श्रवण, धनिष्ठा और शतभिक्। कर-गुन = हस्त से तीन नक्षत्र अर्थात् हस्त, चित्रा और स्वाति। पु-जुग = दोनों पु अर्थात् 'पु' से आरंभ होनेवाले पुष्य और पुनर्वसु। सखाउ = सखा अर्थात् अनुराधा भी। काउ = कभी। धरु = धरोहर।

५६—उ गुन = उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद। पू गुन = पूर्वा फाल्गनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद। वि = विशाखा। अज = रोहिणी। कृ = कृत्तिका। म = मघा। आ = आर्द्रा। भ = भरणी। अ = अश्लेषा। मू = मूल।

"तीक्ष्णामिश्रध्रुवोग्रैर्यत् द्रव्यं दत्तं निवेशितं।
प्रयुक्तं च, विनष्टं च, विष्ट्यांपाते च नाप्यते ॥"

फिर चढ़ै न हाथ = फिर मिलने का नहीं, गया सो गया।

५७—रवि = द्वादशी। हर = एकादशी। दिसि = दशमी। गुन = तीज। रस = षष्ठी। नयन = दूज। मुनि = सप्तमी—ये यदि क्रम से रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि को पड़ें तो कार्य सिद्ध नहीं होता। सारा किया कराया बिगड़ जाता है।

ससि सर नव दुइ छ दस गुन, मुनि फल बसु हर भानु ।
मेषादिक क्रमतें, गनहिं, घात चन्द्र जिय जानु ॥ ५८ ॥

नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाष ।
दसदिसि देखत सगुन सुभ, पूजहि मन अभिलाष ॥ ५९ ॥

(दोहावली)

५८–चंद्रमा को इन-इन स्थानों पर घातक समझो–मेष का १, वृष का ५, मिथुन का ९, कर्क का २, सिंहका ६, कन्या का १०, तुला का ३, वृश्चिक का ७, धन का ४, मकर का ९, कुंभ का ११, और मीन का १२ ।

५९–नकुल = नेवला । सुदरसन = मछली । दरसनी = आरसी । छेमकरी = एक चिड़िया । चक = चकवा । चाष = नीलकंठ पक्षी ।

(विशेष—५५, ५६, ५७, और ५८ वें दोहे पर, काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा-द्वारा प्रकाशित "तुलसी ग्रन्थावली (खंड २, पृष्ठ १४३) से उद्धृत करके टिप्पणियाँ दी गई हैं ।

॥ समाप्त ॥

गो० तुलसीदासजी कृत

विनय-पत्रिका

(टीकाकार--श्रीवियोगीहरि)

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदासजीका नाम भला कौन नहीं जानता ? गोस्वामीजीकी सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनय-पत्रिका है। विनय-पत्रिकाका-सा भक्ति-ज्ञानका दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। इसमें शिव, हनुमान, भरत, लक्ष्मण आदि पार्षदों-सहित जगदीश श्रीरामचन्द्रकी स्तुतिके बहाने वेदान्तके गूढ़ तत्त्वोंका समावेश किया गया है। वेद, पुराण, उपनिषद्, गीतादिमें वर्णित ज्ञानकी सभी बातें इसमें गागरमें सागरकी भाँति भर दी गयी हैं। इसकी टीका सम्मेलन-पत्रिकाके सम्पादक तथा साहित्य-विहार, भावना, अन्तर्नाद, ब्रजमाधुरीसार, संक्षिप्त सूरसागर आदि ग्रन्थोंके लेखक तथा संकलनकर्ता लब्ध-प्रतिष्ठ वियोगी हरिजीने की है। इस टीकामें शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ. प्रसंग, पदच्छेद आदि सब ही कुछ दिये गये हैं। भावार्थके नीचे टिप्पणीमें अन्तर्कथाएँ, अलंकार, शंकासमाधान आदिके साथ-ही-साथ समानार्थी हिन्दी तथा संस्कृत कवियोंके अवतरण भी दिये गये हैं। अर्थ तथा प्रसंगपुष्टिके लिए गीता, वाल्मीकि रामायण तथा भागवत् आदि पुराणोंके श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं। दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाये गये हैं। इन सब बातोंके कारण टीका अद्वितीय हुई है। पृष्ठ-संख्या लगभग ७०० । मूल्य २॥), सजिल्द, २॥।), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द ३)।

This book is sanctioned as a reference book for Hindi Teachers in High Schools of Central Provinces and Berar. —*Vide Order No. 6801, Dated 28-9-26*

अनुराग-वाटिका

वियोगीहरिजीसे हिन्दी-सात्यि-प्रेमीगण भलीभाँति परिचि
हैं। साहित्य-विहार, अन्तर्नाद, व्रजमाधुरीसार, कविकीर्तन, भावन
आदि ग्रंथोंके देखनेसे उनकी असाधारण प्रतिभाका परिचय मि
जाता है। इस पुस्तकामें इन्हीं वियोगी हरिजी-प्रणीत व्रजभाषाव
कविताओंका संग्रह है। कविताके एक-एक शब्द अमूल्य रत्न है
कवि-प्रतिभाके द्योतक हैं। अनुरागवाटिकाका कुछ अंश सम्मेलन
सरस्वतो आदि पत्रिकाओंमें निकल चुका है और साहित्य-रसिव
द्वारा सम्मानित भी हो चुका है। छपाई-सफाई सुन्दर। मूल्य।-)

भावना

यह एक आध्यात्मिक गद्यकाव्य है। इसकी रचना साहित्य
मर्मज्ञ, काव्य-कला-कुशल एवं मंगलाप्रसाद-परितोषिक-प्राप्त वियोग
हरिजीने की है। इसमें मानव-हृदयमें नित्य उठनेवाली नान
प्रकारकी भावनाओंका सजीव चित्रण है। विश्वप्रेमका विमल
श्रोत है। जिस प्रकार कबीर और सुरने समस्त संसारको प्रेममय
देखा, उन्हें उसीमें परमात्माकी झलक दिखाई दी, उसीको उन्हों
मुक्तिका मार्ग समझा, उसो प्रकार हरिजीने मनुष्यकी प्रत्येव
दैनिक क्रियाको विश्वप्रेमका रूप दिया है। सचमुचमें यह काव्
बड़ा सुन्दर हुआ है इसकी भाषा इतनी परिमार्जित, ललित औ
भावपूर्ण है कि देखते ही बनता है। जिस समय सांसारिक झंझटों
से आपका मन ऊब जाय, आपको सारा संसार नीरस दिखाई पड़े
आप इस पुस्तकको उठा लीजिए, फिर देखिए, आपमें एक नई
स्फूर्ति आजायगी, मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठेगा! इसमें सब
मिलाकर ५० निबन्ध है। प्रत्येक निबन्ध मुर्दोंको जिलानेके लिए
अमृत है। भगवद्भक्तोंके लिए इसमें बहुत काफी मसाला है। छपाई
सफाई भी पुस्तककी दर्शनीय है। मूल्य ॥=)